बच्चन : व्यक्तित्व और कवित्व

(बच्चन के व्यक्तित्व और कवित्व की सर्वप्रथम अभिनव समीक्षा)

जीवन प्रकाश जोशी

सन्मार्ग प्रकाशन,

१६, यू० बी० बैंग्लो रोड, दिल्ली—७

श्रद्धेय बच्चन जी को

सादर समर्पित

—जीवन

भूमिका

खड़ी बोली के कवि-वर्ग और काव्य-व्यूह की वर्तमान आलोचना के विपुल-विषम भंडार में कविवर बच्चन और उनके काव्य के विषय में आकार-प्रकार की दृष्टि से क्योंकि यह पहली पुस्तक है, इसलिए थोड़ा-सा इसके विषय में कहूँगा।—

पुस्तक के प्रथम तीन लेखों में मैंने बच्चन जी के व्यक्तित्व को उभारने का लक्ष्य रखा है। उनका व्यक्तित्व जगत-गति और जीवन के प्रति अटूट आसक्ति के परिणाम-स्वरूप निर्मित हुआ है। मैंने उनके व्यक्तित्व के विश्लेषण में इसका ध्यान रखा है। विषय एवं शिल्प-विधान की दृष्टि से बच्चन जी की बाईस काव्य-कृतियों की स्वतंत्र समीक्षा की गई है। मेरे समीक्षक की दृष्टि का आधार इन कृतियों का मनोवैज्ञानिक पक्ष रहा है। इसके साथ ही मैंने आलोच्य सृजन के साहित्यिक-ऐतिहासिक संदर्भों-मूल्यों-परिवेशों को भी पकड़ से परे नहीं रखा है। एक गीतकार कवि के रूप में बच्चन जी का काव्य-सृजन जितना महत्वपूर्ण है उतना ही महत्वपूर्ण खड़ी बोली कविता के विकास की ऐतिहासिक दृष्टि से भी है। स्व० माखनलाल चतुर्वेदी की रचनाओं में छायावादी काव्य-भाषा से अलग जो मुहावरा मुखर हुआ, स्व० नवीन जी की रचनाओं में जो भाव-स्वर लोक-भूमि की ओर अग्रसर हुआ, भगवतीचरण वर्मा के स्वर में जो मस्ती-मदिरा तथा मानववाद का राग जागा महादेवी वर्मा के गीतों में आत्म-परकता के अतल से जो पीड़न उमड़ा बच्चन ने सर्वप्रथम इस सबको पचाकर और भाव-शिल्प-स्वर की सभी पूर्व अतियों से सहसा पिंड छुड़ाकर एक ऐसा सहज, समाहार एवं समन्वयपूर्ण स्वर-साधा जिसके कारण गीत-काव्य के सृजन का विकास अपनी पूर्णता में जैसे थम गया। अतः यह सोचना सही है कि खड़ी बोली के गीतकार कवियों में बच्चन जी का उदय धूमकेतु की तरह हुआ और व्यक्तित्व ध्रुव की तरह अचल हो गया।

बच्चन-काव्य की समीक्षा करते समय मेरा ध्यान और ध्येय यहीं बना रहा कि कहीं श्रद्धा समीक्षा पर हावी न हो जाय, कि कहीं सत्य पर पूर्वाग्रह या दुराग्रह अपना दुष्ट साया न डाले। अर्थात्, बच्चन-काव्य की समीक्षा की शर्त सिर्फ ईमानदारी हो और उस पर कहीं दाग़ न लगे।

चूँकि प्रस्तुत समीक्षा मैंने कवि की मौलिक काव्य-कृतियों को आधार बनाकर की है अत: एक जागरूक पाठक की हैसियत से मैंने अपनी प्रतिक्रियाओं को प्रस्तुत किया है। जहाँ कहीं आवश्यक हुआ काव्य के सामान्य सिद्धाँतों को भी शामिल किया है। पर ऐसा अधिक नहीं है। एक जन-कवि और उसके काव्य पर शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धाँत अधिक प्रामाणिक सिद्ध नहीं होते। प्राध्यापकीय समीक्षा की बात और है।

बच्चन-काव्य व्यक्ति-जीवन की अनुभूतियों का अविकल अनुवाद है। इस कवि का काव्य केवल शब्दों का पुरस्कार नहीं है, जीवन का पुरस्कार है। अत: उसे समझने के लिए व्यक्ति जीवन के विकासवान सहज रूप को समझना अनिवार्य है। युग-आयु-काल के साथ बच्चन के कवि ने जिस प्रकृत जीवन को भोगा और जिया है उसके सत्य की यहाँ सूक्ष्म ध्वनि है। उसे अनिवार्यत: स्पष्ट करने के लिए मैंने कुछ तथ्य कई बार कहे हैं। कुछ बातें होती हैं जो दोहराकर ही महत्वपूर्ण सिद्ध होती हैं। हम जीवन का बहुताँश आवृत्तियों में भी जीते हैं।

इस पुस्तक के शेष लेखों में बच्चन-काव्य के मूल तत्वों का विश्लेषण किया गया है और तत्सम्बन्ध में जो भ्राँतियाँ फैली हुई हैं उनका यथा सम्भव निराकरण किया गया है। बच्चन-काव्य में ध्वनित दुखवाद, मधुवाद (हालावाद) तथा अस्तित्ववाद (व्यक्तिवाद) विषयों का भी समीचीन विश्लेषण किया गया है। बच्चन काव्य में ये विषय व्यक्ति-जीवन की अनेक मन: स्थितियों तथा मानसिक प्रतिक्रियाओं की अभि-व्यक्ति करते हैं। स्थल-स्थल पर इनके ध्वन्यार्थ पर प्रकाश डाला गया है।

खड़ी बोली काव्य-भाषा के निर्माण में बच्चन का महान योगदान है। अत: बच्चन की काव्य-भाषा और उसकी शक्ति का तात्विक विवेचन भी किया गया है।

अंत में 'प्रश्न पत्रोत्तर' द्वारा बच्चन जी के जीवन तथा रचना-साक्ष्य को प्रस्तुत किया गया है। इससे बच्चन जी के पाठकों तथा शोधकर्ताओं को निश्चय ही कुछ लाभ होगा।

पुस्तक के लेखन-प्रकाशन के समय मेरी पत्नी उषा जोशी द्वारा मुझे जो मनोबल मिलता रहा उसके लिए क्या कहूँ? नितांत अपने को धन्यवाद दिया जाना अपने को ही लज्जित करना है।

आकाशवाणी
नई दिल्ली।
१५-८-१९६८

—जीवनप्रकाश जोशी

विषय-सूची

फूल-सा कोमल : काँटे-सा तीखा
बच्चन का व्यक्तित्व

फूल-सा कोमल : काँटे-सा तीखा

बच्चन का व्यक्तित्व

सन् ४६ की एक शाम ! मुहल्ला सुदामापुरी, ज़िला अलीगढ़ के एक मकान की साधारण बैठक । तिल-चावली दाढ़ी वाले मुल्ला जी और बेत की तरह छरहरे, कानों को छूती हुई रोबीली मूँछे और गम्भीर मुख-मंडल से रिमझिमाते बादल की तरह मुसकान बिखेरते हुए स्व० पं० जमना प्रसाद जोशी, यानी मेरे पिता ! भवें चढ़ी हुई, शब्दों में आश्चर्य, लहजे में किसी अनहोनी-सी बात के लिए सराहना का भाव व्यक्त करते हुए मुल्ला जी से पिता जी कह रहे हैं—

क्या कहूँ खाँ साहब, कमाल ! सारी ज़िन्दगी मुशायरों की सनक में रही ! शायरों के अजीबोगरीब कलाम इन कानों ने रात-रात भर सुने ! ग़ालिब, मीर, इक़बाल की नज्मों के सहारे ज़िन्दगी के कड़वे-मीठे लमहों को मजे में बिताया । वाह, शायरी भी क्या है ! अरे हाँ, खां साहब, मैं आपको बताना चाहता था कि हिन्दी ज़ुबान में भी कमाल की शायरी हो सकती है। अभी हाल में एक कवि सम्मेलन में मुझे एक पंडित जी ले गये थे । और क्या बताऊँ खाँ साहब, उस शायर, मेरा मतलब है उस कवि की अदा और अन्दाज़ का । घुँघराले-से बाल, चमकता, खूबसूरत चेहरा और उसका एक ख़ास तरन्नुम ! शराब की कविता सुनाई थी उसने ।······

और पिता जी के यह शब्द मैं आँगन में पतंग जोड़ता चुपचाप सुन रहा था ।

मुल्ला जी ने अपनी दाढ़ी खुजाई;—कुछ गहरे सोचते हुए से उन्होंने पूछा—

शायर का नाम······तखल्लुस ?

कुछ याद करते हुए से पिता जी ने अचकचाकर कहा—लोग बचूआ···बचूआ कवि चिल्ला रहे थे । हाँ, उसकी शायरी का नाम मुझे ज़रूर याद है—मधुशाला! ...

× × ×

लगभग बाईस वर्ष पहले पिताजी और मुल्ला जी के बीच चली यह बातचीत कुछ ऐसी ही थी। हो सकता है शब्दों में हेर-फेर हो गया हो। वैसे मेरी स्मृति काफी सीधी है। तो इस प्रकार मेरे दिमाग में बचूआ कवि की यानि कवि बच्चन की एक बारीक रेखा नौजवानी में ही खिंच गई थी। बाप ने तारीफ़ की, बेटे के मन में उसका संस्कार-सा बन गया। बस इतना ही !

× × ×

मैट्रिक में आया। तुलसी, सूर तो पढ़ने ही थे। स्व० मैथिलीशरण गुप्त और 'दिनकर' जी का पाठ भी पढ़ा। यह सन् ४८ की बात है। मुझे तब कविता या साहित्य

जैसी चीज़ से कोई सीधा सरोकार न था । जैसा मैंने पहले कहा, संस्कार सन् ४६ में जम चुका था ।

बट्ठन बाबू की मुझे याद है । वह मेरा क्लास फैलो था और सच पूछा जाये तो वही मेरा पहला साहित्यिक रुचि का कमान्डर था । हम दोनों में खूब पटती थी । यह मेरा दुर्भाग्य ही है कि फिर कभी न बट्ठन मुझे मिला न मैं बट्ठन को मिला । हो सकता है उसे मेरी याद भी अब न हो । पर मैं उसे नहीं भूला हूँ । क्लास के घंटे होते तो वह मुझे मूंगफली या गजक-रेबड़ी का लालच दे-देकर क्लास से भगा ले जाता था और फिर सुनाता था प्रेमचन्द जी की कहानियाँ । एक दिन की बात है कि उसने मुझे एक कविता सुनाई । क्लास में मुझे 'दिनकर' जी की 'मेरे नगपति मेरे विशाल' कविता बहुत अच्छी लगती थी । लेकिन इस समय बट्ठन ने जो कविता सुनाई वह मुझे बहुत अच्छी लगी । यों ही मैंने बट्ठन से कहा—अबे, यह तो कवि 'दिनकर' की कविता है । है न ? वह बोला—अबे नहीं, यह तो कवि बच्चन की कविता है ।

बच्चन—हो न हो, यह वही नाम तो है जो सन् ४६ की एक शाम को पिता जी ने उन मुल्ला जी को बताया था । मैं बोला—अबे नहीं, ये बचूआ कवि की कविता होगी । पिता जी ने यही नाम लिया था । और इतने में घंटा बज गया । फौरन हम दोनों कविता की जगह से कूद कर क्लास के कमरे की ओर भागे ।

× × ×

अप्रेल सन् ४९ में पिता की चिता जलाकर मैं बिल्कुल अकेला हो गया । दिल्ली में कुछ दिन दीदी चन्द्रकला के यहां आकर ठहरा । दीदी चन्द्रकला के यहाँ साहित्यिक किताबें और पत्र-पत्रिकाएँ आती रहती थीं । वहीं पर मैंने एक पुस्तक "हिन्दी गीतिकाव्य का उद्भव और विकास" विषय पर पढ़ी । उसमें बच्चन जी की कविताओं के भी कुछ प्रसिद्ध अंश पढ़े । उन्हें पढ़कर मुझे अपने ही अभाव प्रत्यक्ष हो गये । मुझे ऐसा लगा कि बच्चन नाम का कोई कवि मेरे ही जीवन के दुख-दर्द के गीत गा रहा है । तब मुझमें बहुत भावुकता थी ।

दिल्ली कुछ दिन रहकर, भटकता हुआ देहरादून पहुँचा । पत्र-पत्रिकाओं में कवियों की कविताएं पहले से ही पढ़ाता था । देहरादून पहुँच कर मेरे जीवन की भीतरी और बाहरी यातनाओं ने मुझे बहुत तंग किया । वहां मैं अपने मामा-मामी के यहां कुछ दिन रहा । वातावरण और जीवन बहुत बोझिल लगता था । इस समय कविताएँ पढ़कर ही मैं अपना अधिक समय बिताता था । मैट्रिक पास था । गम्भीर कवि पंत, प्रसाद, निराला, महादेवी मुझे नहीं रास आते थे । इस बीच बच्चन की 'मिलन-यामिनी' की कविताएँ पत्र-पत्रिकाओं में प्राय: सचित्र भी छपा करती थीं । मैं उन्हें बड़े चाव से पढ़ता था । और एक दिन मेरा भाग्य कुछ मुस्कराया, । मुझे सहारनपुर में गन्ना सुसायटी में पिचासी रुपए महवार की क्लर्की मिल गई । पहली अगस्त सन् ४९ को मैं सहारनपुर आ गया । वहाँ कैलाशचन्द्र जोशी नामक एक काव्य-प्रेमी नवयुवक के साथ कुछ दिन रहा । उन्हीं के यहां पंत, महादेवी वर्मा और रामकुमार

वर्मा की 'आधुनिक कवि' में संकलित कविताएं पढ़ी। इधर पंजाब विश्वविद्यालय से प्रभाकर की परीक्षा की तैयारी की तो कोर्स-बुक में बच्चन जी की 'आत्म-परिचय' और 'पूर्व चलने के बटोही' कविताएँ मुझे बहुत अच्छी लगीं। यहाँ तक आकर मैं प्राचीन और आधुनिक कवियों की कविताओं का सामान्य अर्थ पकड़ने लगा था। लेकिन मैं कविता में जिस बात को चाहता था और आज भी चाहता हूँ वह है अनुभूति की सच्चाई। बच्चन की कविताओं में मुझे यह मिलती थी। अतः सन् ५०-५१ तक बच्चन के काव्य के प्रति मेरा आकर्षण तीव्र हो गया। मैं उनके काव्य-पाठन के प्रति शायद कुछ क्रेज़ी-सा हो गया था।

एक बार पहली तारीख को मुझे तनखा मिली। मैं बच्चन जी की सारी किताबें खरीद लाने के लिए उसी दिन सहारनपुर से मेरठ भागा। पुस्तक विक्रेता से केवल मधुशाला, मधुबाला, एकाँत संगीत, सतरंगिनी और निशा निमन्त्रण पुस्तकें मिलीं। पर 'मिलन यामिनी' न मिली। और उसके न मिलने की निराशा लेकर मैं कुछ इसी तरह लौटा जैसे कोई प्रेमी अपनी प्रेमिका के दरवाजे से यह जानकर लौटता है कि वह तो वहाँ से कहीं चली गई है।

× × ×

सन् '४६ में मैंने किन्ही सम्मानित नेता के देहरादून कालेज में पधारने के अवसर पर बोलने के लिये अपनी पहली कविता लिखी थी जिसकी अब मुझे पहली पंक्ति ही याद है—

भगवन, हम छात्रों की पुकार!—

और इस के बाद मैं बराबर कविताएँ लिखता रहा। बच्चन जी की शब्द-शैली और सरलता का मुझपर गहरा प्रभाव पड़ता गया। सन '५३ में मैंने रतजगे के रोग में डेढ़ सौ से ऊपर कविताएँ लिखीं। लेकिन इन कविताओं को सुन्दर अक्षरों में लिखकर संग्रह रूप में देने के लालच से मैंने गन्ना सोसायटी के एक कर्मचारी के हाथों संग्रह सौंपकर उसे गँवा दिया। उसके उपरांत मैंने सन् '५४ में प्रकाशित 'हृदयावेश' की कविताएँ लिखीं। खैर...

इस बीच बच्चन जी के विषय में बहुत् कुछ जानने के लिये मैं कितना उत्सुक रहा यह बता नहीं सकता। बच्चन जी का फ़ोटो मैंने पहली बार धर्मयुग में देखा था जबकि वे भारत से विदेश के लिये रवाना होने वाले थे। और यह जानकर मैं कितना खुश हुआ था कि बच्चन जी का एक काल्पनिक, सुन्दर-सा चित्र जो मेरे मन ने खींचा था वह धर्मयुग के प्रत्यक्ष चित्र से बहुत-कुछ मिलता-जुलता था। सोचता हूँ, आनुभूतिक कल्पना सच्चाई से दूर की चीज़ तो नहीं है!

× × ×

बच्चन जी के हस्ताक्षर बहुत प्रसिद्ध हैं। अंग्रेजी अक्षरों की दृष्टि से वे 'गुड'-से लगते हैं। कलात्मक दृष्टि से वे मोती की उस छोटी-सी लड़ी लगते हैं जिसका पहला दाना कुछ बड़ा हो। कुछ इसी प्रकार के आकर्षण की बात है कि बच्चन जी के हस्ताक्षर करने को जी चाहता है। मैंने बहुत-से लड़के-लड़कियों को उनके हस्ताक्षर बनाते भी देखा है।

एक दिन घर पर उनके हस्ताक्षर के बारे में उन से ही बातचीत चली। मैंने कहा—बच्चन जी, लोग आपके हस्ताक्षर पर बहुत लट्टू हैं !

वे बोले—'हूँ।'

मैंने बात को और शै दी—लोग आपके हस्ताक्षर बनाते भी हैं। वे तपाक से बोले—'चिंता नहीं, मैं चैक पर अंग्रेज़ी में दस्तख़त करता हूँ।'

मैंने कहा—मैं तो आपके हस्ताक्षर ज्यों के त्यों बनता हूँ। कहने लगे 'बनाओ...'

और मैंने फ़ौरन कलम लिया और "बच्चन" लिख दिया। फुर्ती से चश्मे की कमानी को ऊपर-नीचे कर बच्चन जी बोले—

'जोशी, तुम तो बड़े जालसाज़ मालूम होते हो।'

मैं भी चुप न रहा; नहले पर दहला दिया—आपके दस्तख़त बनाकर अपनी कविताएँ बेचूँगा। इस पर बड़े आत्म-विश्वास के साथ, हँसते हुए वे बोले—'जोशी, कविता के बल पर ही बच्चन के हस्ताक्षर मूल्य रखते हैं।'

× × ×

बच्चन जी से मेरा पत्र-व्यवहार, नवम्बर सन् १९५६ से शुरू हुआ था। वैसे उनका पहला पत्र मुझे 'वीणा' नामक सहारनपुर से प्रकाशित मासिक पत्रिका के सिलसिले में मिला था। इसके बाद उनका पत्र मैंने अपनी एक शिष्या शशिबाला जैन के पास भी देखा था। यह पत्र मेरी ही शरारत के कारण शशि को मिला था। इस पत्र को पढ़कर बच्चन के व्यक्तित्व के बारे में मेरे मन में दो प्रतिक्रियाएं हुईं—

पहली यह कि यह कवि स्वभाव का बहुत सरल है। दूसरी यह कि यह कवि रोमांटिक-रुचि का है। और आगे जब मैंने 'मिलन यामिनी' में इस कविता को ध्यान से पढ़ा कि—

'प्यार, जवानी, जीवन इनका
जादू मैंने सब दिन माना'—

तो मुझे अपनी इस प्रतिक्रिया की पुष्टि मिली की कवि बच्चन मूलतः धड़कते हुए हृदय का कवि है। और फिर कुछ समय में ही एक लम्बे पत्र व्यवहार से मुझे बच्चन जी के सहज व्यक्तित्व का बोध हुआ। (बच्चन जी के लगभग दो सौ महत्वपूर्ण पत्र मेरे पास सुरक्षित हैं)।

× × ×

पत्रों द्वारा जो बात चली वह तो चली ही पर बच्चन जी से मिलने की मेरे मन में जो बहुत दिनों से प्रबल इच्छा थी उसका अवसर आया दिसम्बर सन् '५६ के पहले पखवाड़े की किसी तरीख को। इससे पहले भाई संतोष कुमार जैन सहारनपुर से दिल्ली पहुँचे और बच्चन जी से मिले। दिल्ली से लौटकर जब वे आए तो उनसे मेरी बातचीत हुई। उन्होंने बताया कि वे बच्चन जी से टेलीफून करके मिले थे। उन्होंने कहा कि ज्यों ही नम्बर डायल किया कि एक गम्भीर-सी ध्वनि सुनाई दी—'बच्चन बोल रहा हूं।'

संतोष जी ने बताया कि उस ध्वनि में कवि होने का पता नहीं चलता था। कोई कठोर आफ़ीसर बोल रहा है, ऐसा लगता था। फिर वे समय लेकर बच्चन जी से मिले। मिलते ही बच्चन जी ने पहला प्रश्न किया, 'सहारनपुर में आप जोशी जी को जानते हैं ?'

सन्तोष जी ने कहा—'जी, खूब जानता हूँ। हम मित्र हैं।'

'आप क्या करते हैं ?······और इसी तरह की बच्चन जी ने बातें बड़ी साधारण कीं। सन्तोष जी ने अन्त में कहा—'कुल मिलाकर बच्चन जी मुझे रूखे-से लगे।'

और कुछ दिन बाद श्री ठाकुर दत्त शर्मा 'पथिक' दिल्ली गये तो मुझे बीच में डालकर वे भी बच्चन जी से मिले। उन दिनों पथिक जी मुझसे कुछ नाराज़ थे। नाराज़ी में तो जो कहा जाये कम। पथिक जी से मिलते ही बच्चन जी ने पूछा—

'आप सहारनपुर के हैं, जोशी जी को तो जानते होंगे ?'

पथिक जी ने कहा 'बच्चन जी, जोशी जी को मैं खूब जानता हूँ।' अपने आप ही बच्चन जी ने कहा—'हाँ, वे बिचारे संकट में हैं।' पथिक जी ने कहा—'संकट-वंकट तो कुछ नहीं बच्चन जी, अच्छी-खासी नौकरी कर रहे हैं। मगर वे ज़रा जल्दी बिगड़ जाते हैं। 'बास' की बर्दाश्त बिल्कुल नहीं करते।'

पथिक जी कुछ आगे और कहते कि बच्चन जी बोले, 'पथिक जी, वे बर्दाश्त कर ही नहीं सकते। प्रतिभा पराभूत होने के लिये नहीं होती।'

यह सब बातें सुलह हो जाने पर पथिक जी ने बड़े ढंग से मुझे बताई थीं। और जब मैंने यह सब कुछ जाना जो मुझे आगे बच्चन जी की 'दोस्ती के सदमे' कविता पढ़कर दोस्ती की कड़वी सच्चाई का अहसास हुआ।

सन्तोष जी और पथिक जी के बाद बच्चन जी से मिलने का मेरा नम्बर आया। दिसम्बर में दिल्ली में बेदर्द जाड़ा पड़ता है। अपना दकयानूसी बन्द गले का कोट और मोहरी सपाट पैंट पहनकर मैं दिल्ली आया। ठीक बारह बजे दोपहर स्टेशन पर उतरा। नम्बर मेरे पास था ही। बच्चन जी को फोन किया। एक भारी आवाज सुनी, 'बच्चन बोल रहा हूँ।'

मैंने काँपती-सी आवाज़ में कहा—सहारनपुर वाला जीवन प्रकाश जोशी...आपसे मिलने आया हूँ।

बच्चन जी ने खुशी जाहिर करते हुए कहा—'अच्छा, आप आ गये।' तो आ जाइये। और देखिये, सैंट्रल सक्रेट्रीएट की बस में बैठिये। नम्बर है १४। नार्थ-ब्लाक में दाहिनी तरफ के विंग में ऊपर की मंज़िल पर मेरा कमरा है। आप रिसेपशनिस्ट से मेरे बारे में कहिये। मैं उसे पास बनाने के लिये कह दूँगा।'...ठीक एक बजे, यानी लंच टाइम में मैंने बच्चन जी के कमरे का दरवाज़ा देखा। चपरासी ने भीतर मेरी चिट दी। भीतर घुसा तो मैंने देखा—मंझला कद, गेहूँआ रंग, तना अंग, घुंघराले, उठे-उठे-से बाल, दर्पण-सा माथा, ऐनक के अन्दर चमचमाती, छोटी मछलियों सी आँखें, चिकना चेहरा, खुशनुमा होठ—यह बच्चन जी थे। वे मुझे देखते ही एकदम उठ बैठे और

कुछ झुककर मेरी तरफ़ उन्होंने अपना हाथ बढ़ा दिया। मैंने सकुचाकर हाथ मिलाया। उन्होंने मुस्कराते हुए कहा, 'अरे, मैं तो सोचता था आप कम्यूनिस्ट टाइप के रूखे-उलझे बालों वाले चिढ़-चिढ़े-से व्यक्ति होंगे। लेकिन आप तो बड़े अच्छे नवयुवक हैं। मैं अपनी कल्पना की झुठाई पर क्या कहूँ ?'

मैंने विनम्रतापूर्वक कहा—लेकिन बच्चन जी, मैंने जो आपके व्यक्तित्व के बारे में कल्पना की थी आप तो मुझे उससे अधिक अच्छे लगे। और उस समय बच्चन जी में मैंने देखी एक बालसुलभ भावुकता। और मैंने सोचा, अपमे बाल-सुलभ गुण के अनुरूप इनका नाम ठीक ही तो है—बच्चन ! तभी बच्चन जी ने दराज़ में से एक सेब निकाला, छीला, काटा और मेरी तरफ बढ़ा दिया। पूछा, 'आप काफ़ी पियेंगे या चाय ?'

काफ़ी पीने की मुझमें अभी हिम्मत नहीं थी। एकदम कह दिया—चाय ! बच्चन जी ने तुरन्त टेलीफ़ोन किया। तुरन्त बैरा चाय और बिस्कट की ट्रे रख गया। बच्चन जी ने चाय बनाई और प्याला मेरी ओर बढ़ा दिया। बिस्कुट खाते, चाय पीते बात-चीत चली ! बच्चन जी ने पूछा, 'आप पहाड़ी हैं न ? घर में कौन-कौन हैं ? सहारन-पुर में कब से हैं ? नौकरी कितने समय से कर रहें हैं ? शादी हो गई है या'······? प्रश्न सभी घरेलू थे। काव्य-साहित्य के बारे में बच्चन जी ने अपनी तरफ़ से कोई बात नहीं की। मैं समझ गया कि बच्चन जी साधारण जीवन की बातों में ही सारा समय लगा देगें। और मुझे थी साहित्य चर्चा चलाने की धुन। नई मुसलमानी अल्ला अल्ला पुकारे। मैं नया, नवयुवक साहित्यकार बना था। इसलिये मेरी प्रलब इच्छा थी कि बच्चन जी जैसे प्रतिष्ठित कवि से कुछ साहित्यिक बातें करूँ और फिर दोस्तों में ढींगे मारूँ। मैंने अपनी तरफ़ से ही कहा—'आप के बारे 'मंजूषा' में मैंने एक लेख लिखा है। 'ग्रन्थ' भी साथ लाया हूं। सुनेंगे ?

बच्चन जी चुटकी भी खूब लेना जानते हैं। मेरी बात को वे झट ताड़ गये। कुछ शरारती मुद्रा बनाकर बोले, 'हाँ, हाँ' ज़रूर सुनूँगा। अपने बारे में लिखे लेख को क्यों नहीं सुनूंगा।' तुलसीदास जी की पंक्ति में विनोदपूर्वक कुछ परिवर्तन करते हुए वे बोले, 'निज प्रशस्ति केहि लाग न नीका ? यह तो मेरा सौभाग्य है। हां सुनाइये।'

और मैंने पहले से ही निबंध के लिये पुस्तक में एक अँगुली लगा रखी थी। बस, मैं तूफान मेल की रफ्तार से लेख पढ़ने लगा। बच्चन जी एकदम गम्भीर होकर ध्यान से लेख सुनने लगे। लेख समाप्त हुआ। मैंने सांस लेकर पूछा—बच्चन जी, कैसा लगा ? मुक्त भाव से वे बोले,—'जिस जीवन-धरातल पर खड़े होकर मैंने अपने गीत लिखे हैं तुमने वहाँ पहुंचनें की सफल कोशिश की है। मैंने कविता को जीवन की सच्चाई से अलग कभी नहीं देखा।' यह कहकर उनकी मुखमुद्रा पर एक अजीव छाया-प्रकाश का आभास होने लगा। कुछ देर चुप रहकर मैंने उन्हें 'मंजूषा' की एक प्रति भेंट की। फ़ौरन बच्चन जी उठे और अल्मारी से एक पुस्तक निकालकर लाये। उस पर मेरा नाम लिखा, प्रथम उपहार अंकित किया और वह पुस्तक मुझे दे दी। यह उनकी लोक-प्रसिद्ध कृति 'मधुशाला' थी जो आज भी मेरे और बच्चन जी के प्रथम मिलन की

मधुर स्मृति संजोये है ।

× × ×

यों-पिछले बारह वर्षों से बराबर मैं बच्चन जी के सीधे सम्पर्क में रहा हूँ । बारह वर्ष किसी विशेष प्रकार के व्यक्ति को समझने के लिये कम नहीं होते । और उस अवस्था में जबकि सम्पर्क कुछ भाव और विचारमय भी हो । वैसे व्यक्ति विशेष को बाहर-भीतर से पूर्णतः समझ लेने का दावा तो शायद कोई नहीं कर सकता । स्वयं व्यक्ति ही अपने को ईमानदारी से कितना समझता है ? पर इस नासमझी में वह महान रचना भी करता है और आविष्कार भी । समझने का प्रयास भी पूर्णतः समझ लेने के झूठे दावे से कहीं अच्छा कहा जाना चाहिये । मैंने बच्चन जी को इन बारह वर्षों में स्वाभाव-संस्कार की दृष्टि से जैसा देखा-समझा है वही बता रहा हूँ—न कम न अधिक !

× × ×

बच्चन जी के व्यक्तित्व में मैंने महानता नाम की कोई चीज नहीं देखी । मैंने तो उनमें उसी प्रकार के भाव-स्वभाव-संस्कार के लक्षणों-उपलक्षणों को दबते-उभरते देखा है जिनको मैं अपने निकट के व्यवहारिक व्यक्तियों में देखता हूं । और हो सकता है लोग मुझमें भी उन्हें पाते हों; आप में, सबमें भी ! लेकिन बच्चन जी के व्यक्तित्व की एक ख़ासियत मैंने यह देखी है कि वहां कहीं ऐसा कुछ नहीं है जो असलियत के पीछे खूँखार बनावट को शै दे रहा हो ।

यह बिल्कुल सच है कि बच्चन का व्यक्तित्व नम्रता और अक्खड़ता के ताने-बाने से निर्मित है । उनके स्वभाव में स्वाभिमान इतने ऊँचे क़द का नज़र आता है कि उनसे मिलकर कुछ की यह भी धारणा होती है, हो सकती है, कि उन्हें बहुत अहंकार है । इसके साथ ही जो उनके निकट और निकटतर आते चले जाते हैं वे यह भी महसूस करते जाते हैं कि उनमें सरलता भी इतनी है कि जो केवल स्नेह के दो आखरों के मोल पर आसानी से उपलब्ध हो सकती है—

···तुम हृदय का द्वार खोलो,
और जिह्वा, कंठ, तालू के नहीं
तुम प्राण के दो बोल बोलो ;

(आरती और अंगारे गीत ७२)

बच्चन बहुत अक्खड़ हैं । वे टूट सकते हैं । पर झुक नहीं सकते—

झुकी हुई अभिमानी गर्दन,
बंधे हाथ, नत-निष्प्रभ लोचन !
यह मनुष्य का चित्र नहीं हैं,
पशु का है, रे कायर !
प्रार्थना मतकर, मतकर, मतकर ! (एकांत संगीत:गीत ६३)

या— **स्वर्ग भी मुझको अस्वीकार,**

जहां कुंठित हो मेरा मान!
या— मैं वहां झुककर जहां झुकना गलत है
स्वर्ग ले सकता नहीं हूं।
(आरती और अंगारे गीत ८५)

मुझे लगा है कि बच्चन जी ने इन पंक्तियों की रचना में अपने अक्खड़ स्वभाव का ज्वलंत संकेत दे दिया है। कवित्व में व्यक्ति के जीवन-चरित्र का सांकेतिक परिचय जिस व्यापकता और सत्यता से बच्चन ने दिया है वह कम-से-कम खड़ी बोली काव्य के लिये नया है। उनके काव्य से मैं इस तरह के अनेक उदाहरण दे सकता हूँ। लेकिन यहाँ एक सच्ची घटना याद आ गई। लालकिले के उस कवि सम्मेलन के बारे में बहुत से लोग जानते होंगे जब कि कविवर महबूब को काव्य पाठ करने से रोक देने के लिये बच्चन जी ने हज़ारों की संख्या में इकट्ठे लोगों का तीव्र विरोध पूरे आध घण्टे तक धैर्यपूर्वक सहा और अन्त तक उन्होंने महबूब को यह कहते हुए कविता पाठ नहीं करने दिया कि—'आपका बनाया अध्यक्ष होने के नाते इस समय मैं महबूब साहब को कविता पाठ नहीं करने दूँगा।' अन्त में बच्चन जी की बात ही जनता ने मानी। श्री मेघराज 'मुकुल' ने कविता पाठ किया। उस समय जनता का विरोध इतना प्रबल था कि कुछ भी अनहोना हो सकता था। लेकिन बच्चन जी की अक्खड़ता वहां देखने की चीज़ थी।

बात यह है कि जग-जीवन से जूझने वाला और सैल्फ-मेड व्यक्तित्व कभी साधारण नहीं हुआ करता। उसमें एक सहज अक्खड़ता आ जाती है जो आलोचना की चीज नहीं बल्कि जीवन में घटाने की चीज़ है। जो आलोचक व्यक्ति की इस अक्खड़ता को निन्दनीय कहते हैं वे या तो अन्याय करते हैं या अपनी ही कुँठा और हीनता से ग्रस्त होते हैं। बच्चन की अक्खड़ता के बारे में अधिकांश आलोचनाएँ इसी सत्य को सिद्ध करती जान पड़ती हैं। मेरे विचार से हमें किसी व्यक्ति के बारे में सत्याभास को महत्व न देकर सत्य को महत्व देने की सहृदयता और शक्ति दिखलानी चाहिए। सत्य, जो जीवन सापेक्ष हो, जो राग-द्वेष से मुक्त हो।

इस अक्खड़ता के साथ ही बच्चन के व्यक्तित्व में मैंने सहज विनम्रता भी देखी हैं। और मेरा मत है कि बच्चन का सहज स्वभाव विनम्रता से ही अधिक पोषित है। अक्खड़ता तो उसकी ऊपरी सतह है—कठोर, जैसे मगरमच्छ की पीठ। बच्चन का कवि मन की निष्कपटता को जिस प्रकार व्यक्त करता है उसे पढ़कर कौन होगा जो गद्गद न होगा?—'आरती और अँगारे' के ९३वें गीत को अनेक बार पढ़कर मुझे मन को समझने-परखने की शक्ति मिली है—

'दे मन का उपहार सभी को ले चल मन का भार अकेले
लहराया है दिल तो ललका जा मधुबन में, मैदानों में
बहुत बड़े वरदान छिपे हैं तान, तरानों, मुसकानों में
घबराया है जी तो मुड़ जा सूने मरु, नीरव घाटी में
दे मन का उपहार सभी को, ले चल मन का भार अकेले।

उनकी अनेक कविताओं में उनके विनम्र और अक्खड़ व्यक्तित्व की स्पष्ट झांकी मिलती है। यहाँ व्यंजना व्यापक है। यह व्यंजना व्यक्तित्व की सही पहचान है, जिसे समझकर और उसे व्यक्तित्व में अनुभव करके किसे अपने पर नाज़ न होगा ?—

वज्र बनाई छाती मैंने
चोट करे तो घन शरमाए,
भीतर-भीतर जान रहा हूं
जहां कुसुम लेकर तुम आए
और दिया रख उसके ऊपर
टूक-टूक हो बिखर पड़ेगी···!

और ये भी कि—

हो सभी के हेतु सुखकर,
हो अगर मेरा उदय भी !

× × ×

बच्चन कठिनाई के समय अपनी शक्ति भर काम आते हैं। मुझे याद है कि श्री शिवदत्त तिवारी के नाती धर्मेश की पढ़ाई के लिए कई हज़ार के सरकारी ऋण-पत्र पर एक ज़ामिन के रूप में बच्चन जी ने इस तरह दस्तख़त कर दिये थे जैसे वह कर्ज अपने ही लिये ले रहे हों। किसी का संकट दूर करने के लिये वे टेलीफ़ोन से लेकर पैदल चलने तक कुछ करने-कहने से मुँह नहीं मोड़ते। यह दूसरी बात है कि तिकड़म के अभाव में सफलता न मिले। बच्चन उखाड़-पछाड़ और तोड़-फोड़ की शक्ति से वंचित हैं। यहाँ वे हार जाते हैं।

बच्चन के व्यक्तित्व में कहीं पर कुछ विरोधाभासवत् भी अनुभव होता है। लेकित मूलतः वह जीवन की परिवर्तित होती हुई आयु और स्थितियों का परिणाम कहा जा सकता है। अब बच्चन के स्वभाव में शैशव का सारल्य है, यौवन की तरलता-तपिश-तुर्शी भी है और बुढ़ापे की गुरुता-गम्भीरता तो है ही। बच्चन के संस्कारों में रूढ़ियों के प्रति विद्रोह है, नवीनता के प्रति आस्था और आकर्षण भी। और इस सबके ऊपर उनमें प्राचीन, पावन संस्कारों के प्रति एक ऐसी सूक्ष्म आस्था भी है जो भारतीयता की रीढ़ है और जो उन्हें 'सियराममय' दुहराते रहने को उकसाती है।

बच्चन को सुरुचि से सहज लगाव है। उन्हें गांधी जी की वह लँगोटी भी सुरुचि या डेकरमयुक्त लगती है जो एकदम घुली-चिट्टी रहती थी। मैं जानता हूँ अगर उन्हें नेहरू जी की सुरुचि अनुकरणीय लगती है तो शास्त्री जी की सरलता भी प्यारी है। बच्चन सुरुचि और सरलता को जीवन और व्यक्तित्व में साथ-साथ बनाये रखने के हिमायती हैं। जिसमें इन दोनो में से केवल एक है और दूसरी का अभाव है, निश्चय ही बच्चन जी उसके आलोचक हो सकते हैं—फिर चाहे वह नेहरू जी हों या शास्त्रीजी।

और कुल मिलाकर बच्चन का व्यक्तित्व एक वृत्त है जिसे हम यदि जीवन की

सहज दृष्टि से देखें तभी उसे सही-सही जान-समझ सकते हैं । व्यक्तित्व का वृत्त रेखागणित का वृत्त नहीं है, यह हमें नहीं भूलना चाहिये । न केवल बच्चन के बल्कि किसी भी विशिष्ट व्यक्ति के विश्लेषण के व्यक्तित्व के लिये हमें जीवन की व्यापक व सहज दृष्टि रखना अनिवार्य हो जाता है ।

बच्चन के स्वभाव-संस्कार के बारे में—उनके व्यक्तित्व के बारे में—इससे अधिक मुझे कुछ नहीं कहना है । फिर कहूं कि बच्चन के व्यक्तित्व में महानता नाम की कोई चीज़ नहीं है । उनके व्यक्तित्व की विशेषता है, उनकी सरलता । वही बच्चन के काव्य, उनके कर्म और उनके स्वभाव की यानी सम्पूर्ण जीवन की निधि है । बच्चन जी की इस सरलता को मैं मानवीयता की बहुत बड़ी निधि मानता हूँ । आप अभी छः पैसे का कार्ड लिखकर उन्हें भेज देखिये । कल-परसों जब आपको उनका हस्तलिखित पत्र मिल जाय तो मुझे याद ही कर लीजियेगा ।

●

बच्चन : निकट से

बच्चन : निकट से

२०-२५ वर्ष पुराना एक बक्स खोला। बक्स में पिताजी (स्व० जमना प्रसाद जोशी) की एक मैली-सी डायरी मिली। इस डायरी में उर्दू, अंग्रेज़ी, ब्रज तथा खड़ी-बोली की कविताओं के कुछ अंश लिखे मिले। उनमें से एक यह कि—

'सब मिट जाएं बना रहेगा सुन्दर साक़ी, यम काला
सूखें सब रस, बने रहेंगे किन्तु, हलाहल औ' हाला
धूमधाम औ' चहल-पहल के स्थान सभी सुनसान बने
जगा करेगा अविरल मरघट जगा करेगी मधुशाला'

बच्चन जी के प्रेमी उनकी 'मधुशाला' से खूब परिचित हैं। यह अंश उसी का है। (संख्या २२)। याद आया, पिताजी की डायरी के इस अंश को पढ़कर आज से कोई २० वर्ष पहले मैंने मधुशाला कहीं से तलाश-मांग कर पढ़ी थी। और सन् '५६ में जब मैं अपनी दीदी (चन्द्रकला पाण्डे) के साथ बच्चन जी से दूसरी बार मिला था तब मैंने उनसे कहा था—आपकी मधुशाला में "हाला" के साथ "हलाहल" भी जुड़ा है, तो वे तुरन्त बोले—'हाँ, इसी तरह जैसे मेरी अनुमति में कल्पना और जीवन में मरण भी सम्मिलित है।' बताने की आवश्यकता नहीं कि यह बात बच्चन जी की हर पुस्तक के 'लेखक परिचय' में छपी रहती। पर मैं सोच रहा हूं कि छापे के शब्दों को पढ़कर हम उनकी तह में छिपे सत्य को कितना समझते हैं, फ़ील करते हैं? लेकिन बच्चन जी के काव्य-जीवन में शब्द कितने विराट् सत्य के जीवन्त प्रतीक बनकर प्रतिध्वनित हुए हैं! और तब तो कहूं कि निश्चय ही 'बच्चन जी हिन्दी के उन थोड़े-से कवियों में हैं जिनका जीवन और साहित्य बहुत दूर तक समानान्तर चलता रहा है।' 'प्रारम्भिक रचनाएँ' से लेकर 'बहुत दिन बीते' कृतियों के बीच का पथ युग-जीवन से संघर्ष करते चलते हुए उस कवि-व्यक्ति के पदचिन्हों से पूरित है जिस पथ पर हम सब को भी चलना होता है, चलते आ रहे हैं, चल रहे हैं और चलते जाएँगे। उम्र के रथ के सारथी को अपने इशारे पर चलाने का दावा भला कौन करेगा?

तो पहला प्रसंग :

विदेश मन्त्रालय के आफ़िस में बच्चन जी कुर्सी पर जमे बैठे हैं। कुछ घुंघराले से बाल, चश्मे के शीशों के भीतर चमचमाती मछली-सी आँखें, भावुक-सा चेहरा—और मैं ज्योंही परदा उठाकर कमरे में घुसा हूँ तो देखी पहले उनके चेहरे पर कुछ शरारत-सी, फिर कुछ करुणा-सी और फिर एकदम कठोरता-सी। क्षण भर में उनके चेहरे पर मानसिक भावों के इतने रंग उभरे-उतरे और फिर गर्दन ऊंची करके बोले-

'जोशी, तुम्हारी मनःस्थिति को मैं जानता हूँ। पर तुम्हें—

यह गुरुभार उठाना होगा, इस पथ से ही जाना होगा—

मैं तुम्हारा भविष्य इसी में देखता हूँ। एम० ए० करो, डाक्टर बनो—और तुम बनोगे भी। तुम आज से ही यूनिवर्सिटी जाना शुरू कर दो। दुनिया तुम्हें यूनिवर्सिटी छोड़ने के लिए कह दे, पर मैं तुम्हें कभी नहीं कहूंगा। समझे बच्चा! और तुम यह बिल्कुल भूल जाओ कि तुमने इतने मोटे-मोटे पोथे लिखे हैं। मैं तुम्हें बताऊँ कि मैंने भी तुम्हारी ही तरह एम० ए० किया था। पर तब मैं तुमसे अधिक प्रसिद्ध था। तुम यह सोचो कि मैं अब एक विद्यार्थी हूं। अपने शिक्षकों की बात ध्यान से सुनो। अपने आत्मसम्मान को उनके आगे बिछा दो। वे समझदार होंगे तो खुद ही तुम में हीनता न आने देंगे।' बच्चन जी के यह कहने से मुझमें एक नया उत्साह आ गया। मन की गांठ-सी खुल गई। सच बात तो यह है कि मैं हीनता का शिकार हो गया था। १५-२० दिन से यूनिवर्सिटी जाना छोड़ दिया था। और अपने एक मित्र कैलाशभास्कर को डर के मारे सिखा-पढ़ाकर बच्चन जी के पास भेजा था कि वे मुझे यूनिवर्सिटी छोड़ने पर राजी हो जाँय। पर यहाँ तो पासा ही पलट गया। और ऐसा पलटा कि अब शायद में जल्द ही 'डाक्टर' भी बन जाऊँ।

× × ×

डाक्टरेट लेने के प्रसंग में एक घटना और याद आई। हिन्दी के एक मूर्धन्य कवि को किसी विश्वविद्यालय ने सम्मानार्थ 'डाक्टर' की उपाधि से अलंकृत किया। बच्चन जी जब घरेलू 'मूड' में बात करते हैं तब वे बहुत ही सहज और सरल लगते हैं। तब तो यह भी ध्यान रखना मुश्किल होता है कि वे इतने महान कवि हैं। पर मैं आदमी से मिलते वक्त, उसकी बातों से उसके भीतरी कनेक्शनों को छूने के प्रति भी ज़रा सजग रहता हूं। जब कभी बच्चन जी से मिलता हूं तो बहुत ही सजग होता हूं। क्योंकि मैं जानता हूं कि तब उनका कवि उनके व्यक्ति के पीछे छिप जाता है। पर वह उनकी जुबान पर अपनी जादू की चुटकी भी डालता रहता है। हाँ, तो बात उन कवि-डाक्टर महोदय की चल रही थी। तब बच्चन जी इंगलैंड की भूमि पर बैठकर येट्स पर डाक्टरेट लेकर आये थे। बड़ी बात थी। दिल में नया जोश था, दिमाग में नया दब-दबा था। व्यक्ति के लिए ऐसा स्वाभाविक है। मेरी बात पर बोले—'जोशी, श्रम से सम्मान मिले, तभी मुझे वरदान लगता है। दान से मिला सम्मान मुझे तो नहीं सुहाता।' यह कहकर एक क्षण वे कुछ एंठे-अँकड़े और दूसरे ही क्षण कुछ-ऊँची आवाज़ में बोले—

'मिला नहीं जो स्वेद बहाकर, निज लोहू से भीग-नहाकर,
वर्जित उसको, जिसे ध्यान है, जग में कहलाए नर,
प्रार्थना मतकर, मतकर, मतकर। (एकान्त संगीत)

× × ×

बच्चन जी से मिलकर लोगों को प्रायः शिकायत करते भी मैंने सुना है। बात यह

है कि बच्चन जी स्वभाव और शब्दों में बिल्कुल निश्च्छल हैं—एकदम साफ़ और सपाट ! उनकी आवाज़ अभिधा, है । व्यवहार में लक्षणा-व्यंजना से तो उन्हें वैसे भी सख्त नफ़रत है । राजनीति के हथकंडे वे नहीं जानते—कहूं कि उनसे प्रायः वे हार जाते हैं । मेरे पास इसके अनेक सबूत हैं, पर अभी नहीं बताऊँगा । वे 'राजसभा' के सदस्य हैं । पर कौन नहीं जानता यह सदस्यता राजनीति ने नहीं उनके साहित्य ने उन्हें भेंट कराई है । राजनीति का 'रंग' उन पर मुश्किल से चढ़ता है । चढ़ता भी है तो व्यंग के व्याज से वह उसे कीचड़ समझ कर उतार देते हैं । 'बुद्ध और नाचघर' और उसके बाद की कृतियों में ऐसा ही कुछ है ।

सूत्र रूप में बच्चन जी के कवि और व्यक्ति को एक करके देखने का मतलब है उनके व्यक्तित्व को एकदम सही समझना । उनके व्यक्तित्व को सही-सही समझने का मतलब है मध्यवर्गीय जीवन-मानस के घात-प्रतिघातों की प्रतिध्वनियों का सहभोक्ता होना । यही उनके व्यक्तित्व और कवित्व की 'मास्टर की' है ।

× × ×

२७ नवम्बर ६७ की बात है । मैं उनकी षष्ठिपूर्ति पर सवेरे ही सबेरे उनके घर पहुँच गया । उन्होंने पत्र देकर बुलाया भी था । वहां अज्ञेय, नरेन्द्रशर्मा, श्रीकांत वर्मा अजित कुमार, रमानाथ अवस्थी और बहुत से अतिथि आए हुए थे । इस अवसर पर छपी अपनी नई कृति 'बहुत दिन बीते' को वह मुझे सस्नेह देना चाहते थे । स्मृति और मौके की बात से चूकते हुए बच्चन जी को मैंने कभी नहीं देखा । इस विषय में मैंने और स्थलों पर भी रोशनी डाली है । खैर ! भीड़भाड़ बहुत थी । मैंने सोचा, आज पुस्तक देने वाली बात टली । आज बच्चन जी को भला कहाँ याद होगा कि मुझे भी पुस्तक देनी है । फिर, इतने लोग सामने ? यह सोचकर ज्यों ही मैं चलने को हुआ कि बच्चन जी तुरन्त बोले—'जोशी, ठहरो !' झट से अपनी पुस्तकों वाले कमरे में गए और एक पुस्तक यह लिखकर 'प्रिय उषा और जीवन प्रकाश को सस्नेह—बच्चन, २७-११-६७' मुझे दे दी ।

मैं उस समय किन भावों-विचारों में डूबता-उतराता चला गया, इसे बताने की ज़रूरत नहीं है ।

× × ×

ऐसी अनेक घटनाएँ हैं जिनको याद करते वक्त मेरी आँखों में और हृदय में बच्चनजी का स्नेहमय, सरल (और कभी-कभी कठोर भी) व्यक्तित्व उभर उठता है । पर पिछले १२ वर्षों की घटनाओं को यहां दुहराने का न मेरे पास समय है, न क्षमता है, न स्थान है । पर मैं समझता हूं कि बच्चन जी के व्यक्ति और कवि को समझने के लिए उनकी प्रत्येक रचना उनकी प्रतिध्वनित एक तस्वीर जैसी है । मैंने तो जीवन में संघर्ष-पथ पर आगे बढ़ने के लिए उनके काव्य-जीवन से जितनी प्रेरणा और शक्ति पाई है शायद उतनी मुझे कहीं किसी भी मूल्य पर न मिलती, कितनी भी आत्मीयता से न मिलती । मेरा विश्वास है कि जीवन का मूल्य देने वाले उसके महत्व को पाने से वंचित भी नहीं

रहते ।

और अन्त में मैं सोचता हूँ कि बच्चन जी जैसा स्वाभिमानी, संघर्षशील और यशस्वी कोई कवि-व्यक्ति क्या कभी अपने बारे में ऐसा भी सहज रूप में सोच और लिख सकता है ?—

नाम से भी धन्य ध्वनिकर—
मैं लिए मधु-पात्र, मधु-मानव विशेषण—
अल्प, अतिलघु—
नाम अति-परिचय—अवज्ञापूर्ण बच्चन !' (दो चट्टानें)

और इस दृष्टि से मैं समझता हूँ कि अंततः कवि की महानता अकड़न में नहीं, उसके व्यक्तित्व के विघटन-विसर्जन में है, अहम् के टूटन में है। बच्चन जी का कवि उमर के इकसठवें पड़ाव पर पहुँचकर अपने महाप्राण व्यक्तित्व का सहज विसर्जन कर रहा है। उम्र का जब, जैसा तकाज़ा रहा, इस कवि ने उसे सहज भाव से, सहज स्वर में पूरा किया। यह एक बड़ी साधना है, एक पृथक उपलब्धि है। कवि की 'यात्रांत' ('बहुत दिन बीते' संग्रह की अन्तिम कविता) कविता की ध्वनि में, मैं जानना चाहता हूँ कि हममे से किस व्यक्ति की जीवन-यात्रा की अपरिहार्य संघर्ष-ध्वनि समाहित नहीं है ? इस सच्चाई से हममें से कौन बेख़बर है—

'कुछ नहीं सामान मेरे साथ
खाली हाथ
सांसों की लगामें।
कौन आशा
कौन-सा विश्वास
पागल कौन-सी ज़िद
खींचती लाई यहाँ तक
जानता बिल्कुल नहीं मैं।'

(बहुत दिन बीते)

वैसे 'जानकर अनजान बनना' (बुद्ध और नाचघर) भी कम महत्वपूर्ण नहीं। पर मैं यह भी जानता हूं कि बच्चन जी के काव्य में जीवन की इस 'अज्ञेयता' को जानने का मूल्यवान मसाला है। आप चाहें तो उनके काव्य को इस परिप्रेक्ष्य में आज ही पढ़कर देखें।

बच्चन : कुछ संस्मरण

क्रमः

जब बच्चन जी ने झाड़ू लगाई

पहली बार जब बच्चन जी मेरी दीदी चन्द्रकला पांडे के घर आए तो आने के कुछ देर बाद ही उनकी इच्छा छत देखने की हुई। लेकिन ज्यों-ज्यों हम लोगों ने उन्हें छत दिखाने की बात पर टालमटोल की त्यों-त्यों वे उसे देखने के लिए उतावले हो उठे। नौबत यहाँ तक आ गई कि खुद जीना तलाश करने के उतावलेपन में एक बार वे पाकशाला का मुआयना कर आए और एक बार शौचगृह की भी सैर कर आए। तब मिला जीना।

पीछे-पीछे मैं और घर के बच्चे नीता, नीरजा, यामिनी और मिम्मी लगे हुए थे। छत पर पहुँचते ही बच्चन जी ने ठिठक कर नाक-भौं सिकोड़ी और बोले, 'इतनी गन्दी छत ! झाड़ू क्यों नहीं लगाते ?' फिर इधर-उधर देखा तो कोने में कोई घिसी-पिटी झाड़ू दीख पड़ी। बच्चों से बोले—'बच्चों, छत की झाड़ अभी मेरे सामने लगाओ।' उनकी बात सुनकर नटखट बच्चे शरमाते-इठलाते वहाँ से भाग लिये। यह देखकर बच्चन जी फुर्ती से चले और कोने में से झाड़ू उठाकर छत साफ करने लगे। झाड़ वे इस कमाल से लगा रहे थे कि मुझे बेहद आश्चर्य हो रहा था। मैं हक्का-बक्का-सा खड़ा था। थोड़ी देर में छत इतनी साफ़ हो गई कि कहीं एक तिनका भी नजर नहीं आ रहा था। जब वे झाड़ू लगा कर खड़े हुए तो मैंने कहा—बच्चन जी, मैंने तो आपकी यही पंक्ति पढ़ी थी कि 'मैं कलम और बन्दूक चलाता हूँ दोनों' पर—

तपाक से बच्चन जी ने कहा—'कवि को सब काम करने चाहिये।'

बंटी भैया और मैं

उन दिनों बच्चन जी बहुत बीमार पड़े थे। 'प्लूरिसी' से परेशानी बेहद बढ़ गई थी। रोज सवेरे इन्जेक्शन लगते थे।

उस दिन सवेरे डाक्टर उन्हें इन्जेक्शन देकर गया था। मैं उनके पास ही बैठा था। पास ही बंटी भैया भी खड़े थे। बच्चन जी पूरी आस्तीन की कमीज पहने थे जिसे इन्जेक्शन लगाने के लिए ऊपर तक चढ़ाया गया था।

इन्जेक्शन लगने के बाद मेरी हार्दिक इच्छा यह थी कि मैं आस्तीन के बटन लगा देता। लेकिन ज्यों ही मैं बटन लगाने को हुआ कि सभ्यता के नाते बंटी भैया ने लपक कर काज में बटन लगाना शुरू किया। मैं रह गया। तभी बच्चन जी ने एक दम अपना हाथ मेरी तरफ बढ़ाते हुए कहा—'बंटी, तुम नहीं, बटन जीवन लगाएगा।'

और उस वक्त मेरे मन को जो महसूस हुआ इसे बताने वाले शब्द अब तक मुझे नहीं मिले।

बस की अड़

तेजी जी की कड़ी हिदायत थी कि मैं बच्चन जी को बस से न ले जाकर टैक्सी से ले जाऊँ। लेकिन बच्चन जी बस से ही जाना चाहते थे।

तेजी जी की कड़ी हिदायत पर बच्चन जी ने किसी देश के प्रधानमन्त्री की मिसाल देकर कहा 'अगर मैं बस से जाऊँगा तो कौन विचित्र बात होगी?' इस पर तेजी जी ने नहले पर दहला दिया—'जिस दिन भारत का प्रधानमन्त्री (मतलब नेहरू जी से था) बस से चलने लगेगा उस दिन बच्चन को भी बस से जाने के लिए मैं नहीं रोकूँगी।' इस पर बच्चन जी हँस दिये और मैं भी।

हम दोनों ज्यों ही बस स्टेण्ड तक आए कि एक दम ठिठक कर बच्चन जी बोले—'जोशी, तुम्हें जाना है तो तुम टैक्सी से जा सकते हो। मैं तो बस में बैठकर ही चलूँगा।' मैंने आनाकानी की तो वे व्यंग से बोले, 'जोशी मालदार आदमी हैं। पर मैं टैक्सी में पैसे फिजूल खर्च करना नहीं चाहता।' मैंने ज़ोर देकर कहा—पर तेजी जी ने जो कहा है उसका क्या होगा? वे बोले, 'मेरी पत्नी शाही तबियत वाली है। पर मैं तो गरीब रहा हूं। स्वभाव-संस्कार से मैं अब भी गरीब हूं। जोशी, पैसा जहाँ तक हो बचाना चाहिये।' लेकिन मैं फिर भी बस में बैठने का अनुरोध कर रहा था। इतने में ही नौ नम्बर की बस आई। बच्चन जी फुर्ती से उसमें घुस गए। लेकिन बस में चढ़ते समय तेजी जी के डर से मेरा मन धुकुर-पुकुर कर रहा था।

मियाँ बीबी राजी......

फरवरी सन् १९६३ की बात है। एक दिन श्रीमान हरिदामोदर धुलेकर, श्री के० डी० गोयल और कुमारी ऊषा धुलेकर आकाशवाणी दिल्ली पर मुझसे आकर मिले। मेरे विवाह-सम्बन्ध की बात चली। लड़की के पिता जी ने कहा—'जोशी जी, ये कन्या है। रिश्ता मंजूर कर लें तो हम पर कृपा होगी।' कन्या मुझे जंची। लेकिन विवाह की जैसी सीधी स्वीकृति देने की मुझमें हिम्मत न हुई। जीवन भर के संग का गम्भीर प्रश्न था। मैंने कहा—आप ऐसा करिये कि बच्चन जी से मिलिये। वे जैसा कहेंगे उसी के अनुसार कुछ विचार हो सकेगा। चाहें तो आप उनका टेलीफून नम्बर लेकर पहले उनसे बात-चीत करने के लिए समय ले लें।

श्री धुलेकर जी ने उसी समय बच्चन जी को डायल किया। बात चलते ही बच्चन जी ने कहा—'लड़की को मैं पहले देखना चाहूंगा। आप लोग शाम को दफ्तर के बाद घर पर आएं। जोशी जी को साथ जरूर लेते आएं।'

शाम को हम लोग बच्चन जी के घर पहुँचे। श्रीमान धुलेकर जी, उनकी कन्या कुमारी उषा, श्रीगोयल, श्री बृजराजकिशन सिन्हा, श्रीमती रमासिन्हा, श्री रमेशचन्द्र पाँडे (मेरे बहनोई), और मैं भी साथ था। बच्चन जी ने बड़े उत्साह से सभी का स्वागत किया। फिर बात चलने से पहले एक बार बच्चन जी ने कुमारी उषा को अनुभवी निगाह से जमकर देखा और बोले—कहिये, ये जोशी हैं, तुम्हें पसन्द हैं ? उषा ने कह ही तो दिया—'हाँ मुझे पसन्द हैं।' बच्चन जी ने चुटकी ली—'सेलेक्शन के मामले में लड़की को ऐसा ही होना चाहिये। और जोशी, तुम ?' मैंने कहा—ठीक है। बच्चन जी तपाक से बोले—'मियां-बीबी राजी तो क्या करेगा काज़ी ?' इस पर सभी का ठहाका गूँजा। फिर कुछ रुककर बच्चन जी ने कहा—'लेकिन शादी मन्त्र-मण्डप द्वारा होगी। कहिये ?' धुलेकर जी ने कहा—'जैसी आपकी इच्छा होगी वही होगा।' बच्चन जी बोले—'चाहे कुछ भी हो, मुझे मन्त्र-मण्डप द्वारा सम्पन्न हुए विवाह पर बड़ी आस्था है। संस्कारों की पवित्रता के बिना कोई बड़ा काम नहीं होता।'

इसके बाद टीके और विवाह की तारीखें तै हो गईं। बच्चन जी टीके और विवाह के दिन सवेरे ही हमारे यहां आ गए और दिन भर कार्रवाई का संचालन उत्साह और सूझ-बूझ से करते रहे। और मुझे फेरों के समय यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि मन्त्रों के उच्चारण और संस्कार-विधि में बच्चन जी ने इस तरह भाग लिया कि उस समय वे सभी को कवि से अधिक पण्डित प्रतीत हो रहे थे। असल पण्डित जी तो उन्हें दबी-दबी नजर से देखे जा रहे थे।

कवियों में बदनाम कवि

एक दिन काव्य-चर्चा करते-करते बच्चन जी बहुत 'मूड' में आ गये थे। मैंने मौका पाकर कहा—

बच्चन जी, आपने भी छायावादी मंच पर उतर कर ऐसी धूम माचायी कि जनता में धाक ही जमा दी।

'हूं !' और यह कहकर पहले बच्चन जी ने कुछ शरारती मुद्रा बनायी और फिर हंसकर कहने लगे—'छल्लेदार बाल बनाए, बनठन कर जब छायावादी कवि मंच पर नाज़-नखरे से अपनी कविताएँ सुनाते थे तो मुझे भी तुकबंदी करने की शरारत सूझती थी।

तुम जानते हो, ज्यादा बदनाम आदमी भी लोगों में मशहूर हो जाता है। ऐसे ही मैं भी कवियों में बदनाम कवि बनकर मशहूर हो गया।

पंत जी और जनगीता

दिल्ली में श्री रामचंद्र टंडन के यहाँ पंत जी ठहरे हुए थे । पंथ जी के दर्शनों के लिए मैं बच्चन जी के साथ पहुँचा । सवेरे का समय था । चाय-नाश्ते के लिये टेबिल तैयार थी । सब बैठकर चाय-नाश्ता करने लगे तो पंत जी ने बात चलाई—

'बच्चन, तुम्हारी जनगीता के बारे में तो लोग तरह-तरह की बातें करते हैं ।' चौंक कर बच्चन जी ने पूछा—'क्या ?'

पंत जी ने कहा—'यही कि जनगीता में भाषा सम्बन्धी अनेक भूलें हैं ।'

बच्चन जी बोले—'वे मूर्ख हैं ।' पंत जी ने बात को और बल देकर कहा—'वे मूर्ख नहीं, विद्वान लोग हैं ।'

"बच्चन जी बोले, 'इससे क्या फ़र्क पड़ता है ? पंत जी, आज तक मेरे प्रति न्याय कब हुआ ? लेकिन मेरा काम, काम किये जाना है । फैसला कुछ भी दिया जाय ।'

इस पर पंत जी ने ज़रा गम्भीरता से कहा—'जगगीता तो मैंने भी पढ़ी है'—और इससे आगे पंत जी कुछ कहें-कहें कि बच्चन जी बोले—

'पंत जी, आप अवधी के अधिकारी विद्वान तो नहीं हैं । अवधी मेरी भाषा है । जो कुछ कहते हैं वे मुझ से बात करके देखें ।'

सौम्य मुद्रा में पंत जी ने कहा—'बच्चन, मुझ पर नराज़ क्यों होते हो ? जो लोगों ने कहा वही मैंने तुमसे कह दिया । अच्छा, मुझे वह गीत सुनाओ—साथी, सो न कर कुछ बात । सच, बड़ी मधुर रचना है ।' और बच्चन जी मधुर-मधुर लय में धीरे-धीरे गीत गुनगुनाने लगे । जैसे अभी कोई ज्वार आया हो और गया हो । और पीछे गीत की कोई मधुर लय छोड़ गया हो ।

दोस्ती का अधिकार

'प्रणय पत्रिका' कृति पर दिनकर जी ने आकाशवाणी से आलोचना प्रसारित की जिसमें 'प्रणयपत्रिका' के कवि की प्रणय सम्बंधी कुछ तीखी आलोचना थी ।

इधर बच्चन जी ने एक लेख लिखा जिसमें दिनकर जी के राष्ट्रीय काव्य की सराहना की गई थी और उनकी प्रसिद्ध "हिमालय" शीर्षक कविता की 'पद-दलित इसे करना पीछे पहले ले मेरा सिर उतार'—पंक्तियां देकर कवि की प्रशस्ति की थी । यह निबंध "नये-पुराने झरोखे" पुस्तक में संग्रहीत है ।

इसे लेकर कोई आलोचक बच्चन जी से कहने लगा—बच्चन जी, दिनकर ने तो 'प्रणय-पत्रिका' की इतनी कटु आलोचना की और आप हैं कि उनकी कविता की

प्रशंसा के पुल बाँधते हैं।'

इस पर बच्चन जी ने कहा—'भाई, दिनकर मेरा दोस्त है। दोस्त-दोस्त के लिये जो चाहे कह सकता है। लेकिन मुझे ये अच्छा नहीं लगता कि कोई पीठ पीछे किसी की चुगली या आलोचना करे। मैं किसी की बुराई सुनने या करने के पक्ष में नहीं हूं। समझ गए आप ?'

वाइस चांसलर की नाराजगी

बच्चन जी का आदेश कि मैं पी० एच० डी करूं। लेकिन आकाशवाणी की नौकरी करते हुए कौन विश्वविद्यालय उसका अवसर देगा, यह प्रश्न हमेशा आड़े आता रहा।

दिनकर जी भागलपुर विश्वविद्यालय के उपकुलपति बने तो आशा बंधी कि चलो शायद अब पी० एच० डी० करने का मौका मिल जाय।

इत्तफाक की बात कि एक दिन शाम के वक्त जब बच्चन जी के साथ मैं लान पर बैठा हुआ था कि अक्समात दिनकर जी पधारे। मैंने मौका पाकर बच्चन जी से पूछा—अपने बारे में बात करूं ?

बच्चन जी बोले—'क्या हर्ज है, करलो ?'

इन्हीं दिनों मेरा एक निबन्ध-संग्रह प्रकाशित हुआ था जिसे मैंने पंत जी और दिनकर जी को समर्पित किया है। निबंध-संग्रह के समपर्ण के बारे में मैंने दिनकर जी से चर्चा की तो (शायद) मूड में आकर वे बोले—'जोशी, आकाशवाणी पर ही जमे हो ?' मैंने कहा, हां दिनकर जी, जमा क्या हूं, जमा रहा हूं अपने को। पर अब पी० एच० डी० करना चाहता हूं। अगर आप अपने विश्वविद्यालय से कुछ सुविधा दिला दें तो बड़ी कृपा होगी।

वे बोले—'विषय ?'

'छायावाद के उत्तरार्ध के गीतकार कवियों का विषय और शिल्पविधान'—मैंने कहा। इस विषय पर दिनकर जी ने मुझ से कुछ इस तरह के प्रश्न पूछे जिनका उत्तर हो सकता है मैंने उनकी धारणा के अनुकूल न दिया हो। तभी एकदम ऊँची आवाज में वे बोले—

'अरे, जानता है रिसर्च किसे कहते हैं ?'

पता नहीं किस झक में मेरे मुँह से निकल गया—दिनकर जी, मै बी० ए० पास नहीं हूं। मैंने दिल्ली विश्वविद्यालय से उच्च द्वितीय श्रेणी लेकर एम० ए० पास किया है।...

शायद बात कुछ और होती कि सहसा बच्चन जी ने कहा—'जोशी, तुमसे एक वाइसचाँसलर नाराज़ हो गया है। अब तुम उसके विश्वविद्यालय से पी० एच० डी० नहीं कर सकते। बच्चा, कहीं और कोशिश कर सकते हो।

काला फ्राक

बिटिया 'शुभा' के जन्म के बाद पहली बार मैं और उषा जब बच्चन जी से आशीर्वाद लेने उनके घर गए तो शुभा को देखते ही बच्चन जी गदगद् हो गए। पर हम पर बरस पड़े। बोले, 'शुभा को काला फ्राक क्यों पहनाया है ?' मैंने देखा, बच्चन जी मेरी तरफ ज़रा कड़ी नज़र से देख रहे हैं। मैंने धीरे से कहा—उषा ने पहनाया है। अब उन्होंने उषा की तरफ देखा। फिर बोले, 'इसे काला फ्राक आगे कभी मत पहनाना। हमारे यहां इसे अशुभ मानते हैं। इसे तो फूलोंवाले कपड़े पहनाया करो।' यह कहकर उन्होंने तेजी जी की तरफ कुछ रहस्यभरी दृष्टि डाली। मैं उसका अर्थ न समझ सका। फिर बोले—'तेजी, देखो, कोई फूलवाला कपड़ा हो तो शुभा को दो।' लेकिन कुछ सोचकर तेजी जी ने कुछ न कहा। बच्चन जी भी चुप हो गए।

जाते समय तेजी जी ने ग्यारह रुपये शुभा के हाथ से छुलाकर उषा को दे दिये। तभी बच्चन जी बोले—'उषा, अब कभी काला फ्राक मत पहनाना, समझीं।' तेजी जी ने स्नेह से कहा—'लड़की बड़ी सुन्दर मिली है तुम्हें।' बच्चन जी बोले—'लड़की नहीं कन्या।'

फिर मैं बच्चन जी से मिलता तो प्रायः वे पूछ लिया करते थे—'शुभा को उषा काला फ्राक तो नहीं पहनाती ?

पूर्व जन्म का कर्ज

एक दिन मैंने कुछ दुखी होकर कहा—बच्चन जी, मैं जब भी आपसे मिलता हूँ कुछ न कुछ लेने की बात ही करता हूँ। इस कर्ज को कैसे चुकता करूँगा ? यह सुनकर बच्चन जी ने स्नेह से मेरे कंधों पर अपनी हथेलियाँ रख दीं और कहा—

'किसे पता है पूर्व जन्म में मैंने तुमसे कोई कर्ज लिया हो जो मुझे अब चुकता करना पड़ रहा है। जोशी, हम जिसके लिये जो कुछ कर सकते हैं हमें कर देना चाहिये।'

चरण स्पर्श वर्जित

बच्चन जी का हार्निया का ऑपरेशन हो चुका था। वे घर आ चुके थे। हम लोग (मैं, उषा जोशी श्रीमती रमा सिन्हा, और श्री सिन्हा) उन्हें देखने गये थे। हमसे पहले वहाँ श्री रमानाथ अवस्थी मौजूद थे।

जाते वक्त बच्चन जी के चरण स्पर्श करने को ज्यों अवस्थी जी जरा झुके कि झटके के साथ पैर सिकोड़ते हुए बच्चन जी बोले—

'अवस्थी, सोते हुए के पैर छूना हमारे यहाँ शास्त्र-वर्जित है। समझे बच्चा! जाओ, अब ऐसी भूल मत करना।'

बनवारी और मोजे

एक दिन मैं और उमाशंकर सतीश बड़े सबेरे बच्चन जी से मिलने उनके घर पहुँचे गये। तब वे डिप्लोमेटिक इन्क्लेव में रहते थे।

घर पर पहुँच कर पता चला कि बच्चन जी अभी शेव बनाने में लगे हैं। हम दोनों बाहर के कमरे में बैठकर इन्तज़ार करने लगे। नौ बजे के करीब नौकर हमारे लिये चाय-बिस्कुट लाया और चलते-चलते कह गया—'साहब कोई १०-१५ मिनट में आ रहे हैं।'

चन्द मिनटों में हमारी उत्सुकता को कुछ थपकी-सी मिली जब भीतर से सुनने में आया—'अरे, साहब के लिये फ़ौरन मोजे निकालो'। यह तेजी जी का स्वर था। फिर एक झिड़की सुनाई दी—

'बनवारी, हमने तुम से कितनी बार कहा है कि साहब को······रंग के मौजे दिया करो।'

तभी बच्चन जी की गम्भीर आवाज़ आई—'तेजी, तुमने छोटों पर हमेशा नाराज़ ही होना सीखा है। नहीं, हम वही मोजें, पहनेंगे। बनवारी वही मोजे ले आओ।'

थाली की जूठन

एक दिन बच्चन जी और मैंने साथ-साथ खाना खाया। बच्चन जी ने थाली बिल्कुल साफ़ कर दी। मैं थाली में जूठन छोड़ कर ज्यों ही उठने लगा कि झपट कर उन्होंने मेरी बाँह पकड़ ली और बिठलाते हुए कहा, 'ये क्या? थाली में जो है उसे खाओ। और आगे के लिये ख्याल रखना कि थाली में जूठन कभी न रहे। जोशी, अन्न की उपेक्षा कभी नहीं होनी चाहिये।

बावर्ची की छुट्टी

एक दिन हमारे घर बच्चन जी खाना खा रहे थे। खाना साधारण था। लेकिन बच्चन जी को बहुत स्वादिष्ट लग रहा था। उसके लिये वे श्रीमती रमा सिन्हा की प्रशंसा कर रहे थे। तभी रमा जी ने मेरी ओर इशारा करते हुए कहा—'बच्चन जी, जोशी जी के हाथों में बड़ा रस है। आप इनका बनाया हुआ खाना खायेंगे तो मेरी तारीफ़ करना बिल्कुल भूल जायेंगे।'

फौरन बच्चन जी बोले 'हूं!' अच्छी बात है तो किसी दिन जोशी मेरे यहाँ आकर खाना बनाये। उस दिन मैं बावर्ची की छुट्टी कर दूंगा।

नाम की मंज़ूरी

टेलीफोन पर किसी ने बच्चन जी से इस बात की मंज़ूरी माँगी कि वे उनका नाम किसी समारोह की अध्यक्षता के लिये छापें।

तुरन्त बच्चन जी बोले, 'हां-हां, मुझे कोई आपत्ति नहीं है। सुनिये, आप हर अच्छी बात के लिये मेरा नाम मेरी मंज़ूरी के बिना ही छाप सकते हैं। लेकिन देखिये, कहीं ऐसी जगह मेरा नाम न छपे जिससे आपको और मुझे कोई परेशानी पैदा हो जाये। समझ गये?'

जीवन-यात्रा का मधुमय-विषमय पथ
'तेरा हार' से 'बहुत दिन बीते' तक

जीवन-यात्रा का मधुमय-विषमय पथ 'तेरा हार' से 'बहुत दिन बीते' तक

गीतों के पथ पर चलते हुए जिसने रुदन में अट्टहास किया है, नयनों से विरह के, दर्द के तथा अभावों के परवश आंसुओं के निर्भर बहाये हैं, जीवन में सुख-सपनों का अनन्य अनुराग, प्राणों में निष्ठुर जग की धधकती हुई आग और तृषित कंठ में असीम अतृप्ति के विफल राग की स्पष्ट अनुभूति को जिसने 'कवि का सत्य' समझ कर मोहक प्रकृति के मधुवन में, सूने मरघट की ठंडी राख में, धुँधले अतीत के मौन खण्डहरों में, कठोर वर्तमान के भीषण दुर्ग में और स्वप्निल भविष्य के कल्पित भवन में अपनी सरल अभिव्यक्तियों को यथार्थ की तूलिका से चित्रांकित किया है, जिसने यौवन-वासना की फेनिल मदिरा के नशे में काल-जीवन का हलाहल इठलाते पी लिया है, स्थूल प्यार की एकटक मनुहार में जिसने जड़ प्रकृति के अंग-प्रत्यंग की मांसल शोभा को रागात्मक बना दिया है और एक कुशल चित्रकार की भांति जिसने काव्य की कला को जनरुचि की गीत-संवेदना में साकार करने का मानो संकल्प ही ले लिया है, व्यष्टि की रक्षा के लिए जिसकी आत्मा ने सतत संघर्ष के नारे बुलन्द किए हैं, उपेक्षित मानवता के समर्थन में समाज की दुष्ट आलोचनाओं, उसके क्रूर नीति-नियमों और अनुशासनों की शृंखलाएँ तोड़ने की चुनौती जगाई है, जिसने अपने व्यक्तित्व और कविकर्म का आदर्श ही यह स्थापित किया कि—

बन कर आग नहीं पैठा जो, कब उसको स्वीकार किया है,
बन कर राग नहीं निकला जो कब उसका इजहार किया है—

वह है अंग्रेज़ी-साहित्य का मर्मज्ञ, पारंगत विद्वान और हिन्दी का प्राणवंत गीतिकार डा० हरिवंशराय बच्चन !

चेहरे पर भावुकता, वेशभूषा में सुरुचि और सादगी और स्वभाव में एक साधारण, सभ्य नागरिक की छाप, 'बच्चन' का अपना व्यक्तित्व है। एक बड़े कवि या विद्वान होने का अभिमान जैसा प्रायः आज के कवियों या लेखकों में देखने को मिलता है बच्चन में नहीं है। फिर यह कि एक पोस्टकार्ड में बच्चन की हार्दिक भावनाएँ आप घर बैठे खरीद लीजिए। यही उसके सीधे-सादे व्यक्तित्व और सरल स्वभाव की बड़ी विशेषता है।

× × ×

पिछले तीन-चार दशकों में काव्य के वादों का जितना उतार-चढ़ाव हम देखते हैं उतना पिछले हज़ार वर्ष के काव्य में देखने को नहीं मिलता। खड़ी बोली कविता के

विगत साढ़े तीन दशक, सच कहा जाय तो, मूल्यांकन-पुर्नमूल्यांकन-अवमूल्यांकन में ही हवा हो गये। हाँ, इसमें अधिकाधिक लाभ 'कोर्स' के कवियों और उन प्राध्यापकों को हुआ जो वर्तमान आलोचना क्षेत्र में अपने को भरत-भामह की कोटि में समझते हैं। छायावाद, रहस्यवाद, राष्ट्रीयतावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, 'नई कविता'-वाद और कल न जाने 'कौन-सा वाद' ?...आदि की टुकड़ियों में इन साढ़े तीन दशकों का काव्य बँटा हुआ है। उनके 'कवि-नेताओं' एवं 'आलोचक-नेताओं' का नाम देना क्या ज़रूरी है? पर विचारणीय यह है कि 'बच्चन' नाम के साठ वर्षीय कवि को, जिसका सृजन भी इन साढ़े तीन दशकों के सृजन के साथ कंधे से कंधा मिलाये रहा है, इन सब वादों में कहाँ फ़िट किया जाय? इन वादों का कोई भी महाकवि या आलोचक तो उसे अपनी बिरादरी में शरीक नहीं करता। और लीजिये 'हालावाद' का खंडन मैं करता हूँ। (देखें लेख मधुकाव्य) फिर? मगर 'फ़िट' कोई क्या करेगा? फ़िट तो वह अपने आप ही होता आया है, हो गया है। यों कहें कि वादों का कोई भी खूँटा इस कवि को बाँधने में असमर्थ रहा है। इस कवि ने इन साढ़े तीन दशकों में जो लिखा है वह वस्तुत: इहलोक, युग-जीवन और आयु के गुणात्मक परिवर्तन के तत्वों को आत्मसात करके लिखा है। अत: इन तत्वों को हम काव्य के किसी एक वाद में सीमित कर ही नहीं सकते। उनका महत्व तो तभी समझा जा सकता है जब कि हम 'वादों' से ऊपर, काव्य को जीवन की दृष्टि से देखें। बच्चन का काव्य और कवि इसी जीवन की इहिलोकोन्मुखी दृष्टि का स्वागत करता है। मैं इसी तत्व की ओर फिर-फिर इंगित करता रहा हूँ।

बच्चन सच्चे अर्थों में गीतकार हैं। मधुशाला की रूबाइयाँ जिस तन्मयता के साथ वह मधुर कंठ से गाते हैं और जिस भाव-विभोर दशा में उसे रसिक-जन सुनते हैं इस कारण वे कवि सम्मेलनों में जनता के 'अपने कवि' के रूप में लगने लगते हैं। वास्तव में बच्चन की लोकप्रियता का मूल कारण उनके भाव, वाणी, कंठ और व्यक्तित्व के अटूट समन्वय में कूट-कूट कर भरा है।

× × ×

बच्चन के काव्य के प्रति अब तक हिन्दी के तथाकथित आलोचकों की उपेक्षा बनी रही है। और जहाँ कहीं यदि उन आलोचकों ने बच्चन के काव्य की आलोचना की भी है तो वहाँ या तो बच्चन को हालावादी तथा भौतिकवादी कवि बतला कर उनके काव्य को क्षणिक उत्तेजना से पूर्ण माना है या फिर अंग्रेजी या खैयाम के काव्य से प्रभावित गीतकार। परन्तु ऐसी आलोचना बच्चन के अब तक के भाव-भाषागत काव्य-विकास के प्रति न्यायोचित फैसला देने में समर्थ नहीं कही जा सकती। यह कहना सोलह आने सत्य होगा कि खड़ी बोली गीति-काव्य को बच्चन की देन बहुत मूल्यवान है। बच्चन ने जिस समय गीत-क्षेत्र में क़दम उठाये थे उस काल की काव्य-धारा भौतिक जीवन के आकर्षण के संसार से परे किसी छायालोक के लिए वेगवान थी, जिसका पर्यवसान हो रहा था रहस्यवाद के अनन्त सागर के तल में, जहाँ न इस जीवन का सौंदर्याकर्षण था, न दुःख-सुख की आंखमिचौनी और न ही जीवन

में जीते रहने की संघर्षमयी ज्वाला। पन्तजी की 'ग्रन्थि' तथा प्रसाद जी की 'आँसू' जैसी भौतिक भोग से पराजित हुई भावनाओं को काव्य में व्यक्त करने वाली कृतियाँ तत्कालीन तरुण एवं उदीयमान रसिकों तथा कवियों को जीवन के संघर्षमय वातावरण से पलायन कर जाने का मर्सिया सुना रही थीं। सच कहा जाये तो छायावादी और रहस्यवादी काव्य-धारा में जीवन की घोर संघर्षमयी उस भूख की सर्वथा उपेक्षा है जो यथार्थ जीवन की स्वाभाविक वस्तु कही जा सकती है। मानव अपने ऐहिक जीवन की सब माँगों को संतुष्ट करके ही अशरीरी सौन्दर्य की ओर दौड़ लगा सकता है। परन्तु नित्य प्रति के घात-प्रतिघातों की सृष्टि में बसने वाले मानव को तो पहले ऐन्द्रिय सन्तुष्टि एवं भौतिक सुख-भोग की आकांक्षा ही प्रधान बनी रहती है। इस सुख-भोग की भावना को आदर्श, संस्कृति, धर्म तथा पावन पूजात्मक संस्कारों की नकाब में छिपाकर कुछ और भले ही बतलाया जाय परन्तु प्रत्यक्ष जीवन से उसकी सर्वथा उपेक्षा करना कदापि सम्भव नहीं है। 'बच्चन' ने छायावादी-रहस्यवादी काव्यधारा की प्रतिक्रिया में भौतिक सौंदर्याकर्षण और जैविक सुखभोग की लालसा को अपने काव्य की मूल अनुभूति में पचाकर उसे सरल भाषा एवं यथार्थ अर्थों में प्रकट किया। 'बच्चन' की कविता ने अपने युग की छायावादी और रहस्यवादी काव्यधारा में बहने वाले काव्य-रसिकों के हृदय को सहसा रोककर और उन्हें जीवन-सरोवर के निकट लाकर संगीत की वीणा पर सुमधुर गीत गाने को विवश किया। रहस्यवाद और छायावाद के सूक्ष्म कहे जाने वाले काव्य-धरातल पर जो कवि उस समय अपने निजी प्रणय-मिलन की आँखमिचौनी खेल रहे थे 'बच्चन' ने उनकी ओर से जनरुचि का ध्यान खींच कर सीधे, सच्चे और सरल काव्य की 'संवेदना' पर आकर्षित किया। यहाँ जैसे सन्त कवि का युग-प्रतिनिधित्व शृंगारिक कवि ने ले लिया। निःसन्देह ऐसा करने में बच्चन ने रूढ़ि-मर्यादाओं को तोड़ा, भारतीय संस्कृति को झकझोरा एवं नग्न यथार्थ का चित्रण भी किया। परन्तु यह सब तत्कालीन युगाकाँक्षा की दृष्टि से एकदम अवांछनीय भी नहीं कहा जा सकता। क्योंकि बच्चन ने हिन्दी गीत-काव्य में इस ढंग से एक नई क्रांति उपस्थित की—वह क्रांति थी परोक्ष से प्रत्यक्ष की क्रांति, रहस्य से स्पष्ट की क्रांति, अज्ञात करुणा से ज्ञात संवेदना की क्रांति एवं अस्पष्ट गीतों से स्पष्ट गीतों की क्रांति। कुछ ही समय में इस क्रांति का जनव्यापी प्रभाव पड़े बिना न रह सका। फलस्वरूप जहाँ एक ओर रहस्यवादी और छायावादी कवियों की अंगुली पर गिनी जाने वाली संख्या रह गई वहाँ जन-जीवन की आशा-निराशा, रूप सौंदर्य, वासना-उन्माद सम्बन्धी गीतकारों की फसल-सी उग आई। आधुनिक युग के अधिकांश गीतिकारों की भावनाओं एवं अभिव्यंजनाओं में बच्चन की स्वर-साधना, शब्द-साधना, अनुभूति-संवेदना एवं अभिव्यक्ति कौशल का प्रभाव है—यह बात निर्विवाद कही जा सकती है। संक्षेप में बच्चन की काव्य-कीर्ति कठमुल्ले आलोचकों की निगाहों में अवश्य खटकती रही परन्तु उनकी जीवनमय काव्य-धारा का प्रवाह अपनी अल्हड़ गति से बराबर बना रहा। एक लम्बी काव्य-अवधि पारकर भी 'बच्चन' के गीत जीवन के यथार्थ, दुःख-सुख मिश्रित संवेदना के स्वरों से विशृंखल नहीं हुए; यह असाधारण साहस, प्रतिभा और साधना

की बात कही जाएगी। 'बच्चन' ने कभी जग की कटु उपेक्षा और प्रवाद की चिन्ता भी नहीं की। कवि के ही शब्दों में—

'जग दे मुझ पर फ़ैसला उसे जैसा भाये
लेकिन मैं तो बेरोक सफ़र में जीवन के
इस एक और पहलू से होकर निकल चला।'

× × ×

बच्चन के कवि ने मुख्यत: काल-क्रम की दो ऐतिहासिक स्थितियों को लिया है। कहूँ कि उसने उनसे दाँत किटकिटा कर संघर्ष किया है। और यह भी कि वहीं कुछ क्षण-कण ऐसे भी भोगे हैं जिन पर उसका एकान्त अधिकार रहा है। जहाँ वह अभिसार प्यार के राग-रस-रति-रंग में डूबा-उतराया है। पहली स्थिति तो वह थी जब वह एक नवयुवक था। और चेतना की आँखें खुलते ही उसने देखा था कि जग जैसा वह चाहता है वैसा तो नहीं है। वहाँ वर्जनाएँ हैं, पाखण्ड हैं, पारलौकिक पचड़े हैं, आडम्बर है, मुक्ति पाने के प्रति यंत्रणा और यातना है, झूठे आदर्श हैं, निरर्थक आन्दोलन हैं और मन्दिर-मस्जिद की दीवारें हैं। शासन की गुलामी, मध्यकाल की धार्मिक-सामाजिक विषमताएँ और राजनैतिक-साम्प्रदायिक कशमकश, जीवन की निराशा, साहित्य में छायावादी (रूमानी) सम्मोहन और हाड़मांस के अनुभूति-संकुल पिंड की एकदम उपेक्षा है। स्वतन्त्रता से पूर्व बच्चन-काव्य में कालक्रम की मुख्यत: इन्हीं ऐतिहासिक स्थितियों के प्रति प्रतिक्रिया जन्य प्रतिध्वनियाँ सुनाई पड़ती हैं। पर अपनी शक्ति-सीमा के कारण निश्चय ही यह कवि अपने सृजन का कोई महान पक्ष उद्‌घाटित नहीं कर सका। किन्तु अनिवार्यत: इतिहास के निर्माण में अथवा क्रान्तियों के कारनामों में केवल 'महान' का ही तो महत्व नहीं होता। उनका भी होता है जो ईमानदारी से अपनी व्यक्ति-शक्ति को समकालीनता के लिये लगाकर सदा जनता-जनार्दन के साथ जीते हैं। जनता उनसे किसी-न-किसी रूप में मनोबल या उत्साह पाती है। फिर यही लोग तो एक दिन कार्य पूरा होने पर 'महान' की कोटि में माने जाते हैं। क्या ईसा, गाँधी, तुलसी और ग़ालिब ऐसे नहीं थे? काल की कसोटी अद्‌भुत होती हैं? खैर!

स्वतन्त्रता के उपरान्त बच्चन-काव्य में इतिहास की दूसरी स्थिति व्यक्त हुई है। इसकी अभिव्यंजना कवि ने तब की है जब वह प्रौढ़ है, बृद्ध है। राजनीति, समाज एवं विश्व-जीवनगत मूल्यों-संदर्भों में एक विराट् परिवर्तन-सा आ चला है। विज्ञान ने कला-बोध, युग-बोध और आत्म-बोध में ऑणविक क्राँति फूँक दी है। विज्ञान ने शताब्दियों के प्रतिबिम्बों-प्रतिमानों को झुठलाकर नयों की खोज सामने रख दी है, सौदर्यात्मक चेतना के अधिकाधिक मूल्य बदलते जा रहे हैं······चाँद का आकर्षण और से और हो गया है। भौतिक विज्ञान से अभिभूत इस ऐतिहासिक स्थिति और परिप्रेक्ष्य में बच्चन का कवि जागरूक होकर जी रहा है जिसकी अभिव्यक्ति उसके इतर काव्य में हुई है। पर हमें यह नहीं सोचना चाहिए कि बच्चन का कवि इन ऐतिहासिक परिस्थितियों; संदर्भों और परिप्रेक्ष्यों का दास बनकर जिया है या जी रहा है। वह सदा सजग

रहा है। स्थल-स्थल पर उसने व्यक्ति की आत्मरक्षा के लिये युगीन ऐतिहासिक विषम संदर्भों, परिवेशों एवं परिस्थितियों पर वाणी के भीषण प्रहार किये हैं और जीव की इहलोक-उन्मुख पिपासा की हिमायत ली है। कलाकार को उसने सदा बड़ा माना है। कला-प्रतिभा को उसने समस्त सामयिक, राजनीतिक एवं ऐतिहासिक मूल्यों से ऊँचा ठहराया है। और यहीं वह अपने युग के साथ होकर भी उससे आगे जीता जा रहा है जिसका सम्यक और स्वस्थ विश्लेषण तथा मूल्यांकन-महत्वांकन अभी होना है। बच्चन की सारी रचनाओं में उनके व्यक्तित्व की छाप है। अतः उनकी 'जग दे मुझ पर फैसला उसे जैसा भाए' गर्वोक्ति अर्थपूर्ण है।

× × ×

जो लोग बच्चन को हालावादी कवि कहने-समझने का भ्रम अब भी लादे हुए हैं उन्हें स्मरण रखना चाहिए कि हालावादी काव्य का प्रचार करना बच्चन का लक्ष्य कभी नहीं रहा। इस विषय में मैं 'मधुकाव्य' शीर्षक लेख में यथासंभव कहूँगा।

प्रारम्भिक रचनाएँ (भाग १-२)

कवि की आरम्भिक रचनाओं से ही प्रकृति-सौदर्य एवं भौतिक सुख-दुख के उद्‌गारों में एक सूक्ष्म सामंजस्य स्थापित हुआ प्रतीत होता है। 'गीतविहग' (भाग दो) कविता का प्रस्तुत पदांश इसी ओर इंगित कर रहा है कि—

> **हृदय के प्रांगण में सुविशाल भावना-तरु की फैली डाल,**
> **उसी के प्रणय-नीड़ में पाल रहा मैं सुविहग बाल!**
> **आज ही मैं जीवन का सार मूर्ख लेते कल का आधार,**
> **जगत के कितने सजग विचार खा गया कल का काल**

यहाँ महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि प्रारम्भिक रचनाओं से ही कवि के स्वरों में छायावादी कल्पनिकता दम तोड़ती जाती है और जीवन का स्वर प्रबल होता जाता है। बदली वाणी की भंगिमा इन अंशों में देखें—

> **जीवन का तो चिन्ह यही है सोकर फिर जग जाना**
> **क्या अनंत निद्रा में सोना नहीं मृत्यु का आना**

× × ×

> **किसको जीवन अच्छा लगता किसको प्रिय न मरण होता**
> **यदि न जगत में सबका कोई अपना आकर्षण होता**

बच्चन की प्रारम्भिक रचनाओं का मूल स्वर प्रकृत है। वह प्रकत काव्य (रीयलिस्टिक प्रोयट्री) है। यद्यपि यहाँ अनेक कविताएं ऐसी भी है जिन्हें आदर्शात्मिक अथवा कलात्मक काव्य (आइडियेलिस्टिक-आर्टिस्टिक पोयट्री) के खाने में रखा जा सकता

है। लेकिन इन कविताओं का मूल्य घटता हुआ है।

'प्रारम्भिक रचनाएँ' (प्रथम भाग) की कविताओं को पढ़कर ऐसा प्रतीत होता है कि कवि प्रेम, प्रकृति, यौवन, जीवन और जगत विषयक अभिव्यक्ति करने के लिये लालायित है—

प्यार किसी को करना लेकिन कहकर उसे बताना क्या
देकर हृदय हृदय पाने की आशा व्यर्थ लगाना क्या

(आदर्श प्रेम)

× × ×

याद नहीं है मुझे तुझे देखा पहले या प्यार किया

(मधुर स्मृति)

बच्चन के काव्य-विकास के परिप्रेक्ष्य में यह विशेष तथ्य हाथ आता है कि जग-जीवन के हास-रुदन या सुख-दुख के प्रति इस कवि का दृष्टिकोण अत्यधिक सहज भाव-स्वर में व्यक्त हुआ है—यथा,

मैं हँसता पर मेरे हँसने में क्या आकर्षण होता
अगर न उस हँसने से पहले फूट-फूट कर मैं रोता

('यदि' कविता)

विषय और शिल्प की सूक्ष्मता को जाँचने-परखने की दृष्टि से ज्ञात होता है कि प्रारम्भिक रचनाओं में छायावादी संसार की रूमानियत के रंग हल्के पड़ते जाते हैं, उड़ते जाते हैं। उत्तरार्ध का यह कवि कविता सम्मत अपना सजग दृष्टिकोण व्यक्त करता है—

मुझ से अलग न मेरा गान, वह सौरभ में पुष्प समान
टूट न पाए इस लगाव का कभी सुकोमल तार

और इस आदर्श को ध्यान में रखकर ही वह प्रकृति, मानवीय प्रेम, नियति, तथा जग-जीवन की सीधी, सरल अभिव्यंजना का पथ पकड़ लेता है। जिस काव्य-भाषा का यहाँ प्रयोग किया गया है वह जैसे कवि की आगे विकसित काव्य-भाषा की 'सीड-नर्सरी' है।

प्रारम्भिक रचनाएँ (दूसरा भाग) की अधिकांश कविताएँ बच्चन के भावी काव्य-विकास (भाव-शिल्प की दृष्टि से) की सभी दिशाओं को दर्शाने वाली दूरबीनें हैं।

इस संग्रह की प्रथम कविता को पढ़ते ही गांधी जी के प्रति प्रेम व्यक्त होता है। यह प्रेम आगे 'सूत की माला' और 'खादी के फूल' में संग्रहीत कविताओं में प्रतिफलित हुआ लगता है। 'रज-तम' शीर्षक कविता को पढ़कर प्रसाद जी के 'आँसू' की याद आ जाती है। 'गीत-विहग' और 'गान-बाल' कविताओं में पंत जी की भावशैली का स्मरण हो आता है। 'मातृ-मन्दिर' और 'पाँचजन्य' आदि कविताओं में कवि का राष्ट्र-प्रेम शिशु-स्वरों में किलकारता है जो गुप्त जी की राष्ट्रीय भावना का ही तुतलाता-सा स्वर प्रतीत होता है। आगे वही समर्थ होकर 'धार के इधर-उधर' तथा अन्य संग्रहों

की कुछ कविताओं में ध्वनित हुआ है। उसकी प्रौढ़ व परिपक्व ध्वनि 'जब नारी के बालों को खींचा जाता है' 'चेतावनी' शीर्षक कविता में सुनाई पड़ती है। लेकिन बच्चन का यह स्वर जन-मन में अधिक नहीं गूँजा। 'दिनकर' का स्वर अधिक बुलंद रहा। यों बच्चन के भाव-शिल्प विकास की दृष्टि से प्रारम्भिक रचनाएँ बहुत महत्व-पूर्ण हैं।

× × ×

आगे मधुशाला और मधुबाला कृतियाँ वस्तुतः हालावादी काव्य की उपज कही जा सकती हैं, यद्यपि इनमें भी जीवन के भोगवादी पक्ष की चरम आसक्ति का भाव ही प्रधान है। खैयाम की क्षणिक आसक्ति में घोर विरक्ति वाली व्यंजना स्फुट रूप में ही इतस्ततः हुई है।—यथा,

कितनी आई और गई पी इस मदिरालय में हाला
अब तक टूट चुकी है कितने मादक प्यालों की माला
कितने साक़ी अपना-अपना काम खतम कर दूर गए
कितने पीने वाले आए किन्तु वही है मधुशाला

× × ×

जितनी दिल की गहराई हो उतना गहरा है प्याला
जितनी मन की मादकता हो उतनी मादक है हाला···
जितना ही जो रसिक उसे है उतनी रसमय मधुशाला

इस विषय में मैंने अपने 'मंजूषा' वाले लेख में आज से कोई १२ वर्ष पहले बच्चन के पाठकों का ध्यान आकर्षित किया था।

× × ×

·········और मधुकलश तथा हलाहल में हालावाद प्रधान नहीं है। वहाँ तो कवि का (मूलतः व्यक्ति का) सामाजिक विषमताओं के परिवेश में आत्म-संघर्ष, उसके अस्तित्व का अटूटत्व और भौतिक सुखवाद का सबल स्वर ही मूलतः मुखरित हुआ है। उदाहरण के लिये—

तीर पर कैसे रुकूँ मैं आज लहरों में निमन्त्रण···
हों युवक डूबे भले ही है कभी डूबा न यौवन

या— (मधुकलश)

क्या किया मैंने नहीं जो कर चुका संसार अब तक
वृद्ध जग को क्यों अखरती है क्षणिक मेरी जवानी

या— (मधुकलश)

झेलने को इस बड़े तूफान के झौंके-झकोरे
मानवी सम्पूर्ण साहस वक्ष बीच सजो रहा है

या— (मधुकलश)

पहुँच तेरे अधरों के पास हलाहल कांप रहा है देख
मृत्यु के मुख के ऊपर दौड़ गई है सहसा भय की रेख

मरण था भय के अन्दर व्याप्त हुआ निर्भय तो विष निस्तत्व
स्वयं हो जाने को है सिद्ध हलाहल से तेरा अमरत्व······

आदि उद्गार इस सत्य को पुष्ट करते हैं।

'मधुकलश 'और' हलाहल' सम्बन्धी लेख में आगे इसकी स्वतन्त्र समीक्षा की गई है। अतः यहाँ अधिक कहना असंगत होगा।

दूसरा मोड़

मधुशाला और मधुबाला के गीतों के सृजन से बच्चन की मानसिक-यात्रा का एक दूसरा मोड़ प्रारम्भ होता है। मधु की एक नई मस्तीयुक्त भाव-भूमि पर पाँव रखकर बच्चन ने अपने गीतों में भावना, कल्पना, प्रकृति-चित्रण तथा मानवीय सुख-दुख संवेदित रागात्मक अनुभूतियों को व्यक्त किया।—

यह चांद उदित होकर नभ में कुछ ताप मिटाता जीवन का
लहरा लहरा यह शाखाएँ कुछ शोक भुला देती मन का
कल मुर्झाने वाली कलियां हंस कर कहती हैं मग्न रहो
बुलबुल तरु की फुनगी पर से सन्देश सुनाती यौवन का
तुम देकर मदिरा के प्याले मेरा मन बहला देती हो
उस पार मुझे बहलाने का उपचार न जाने क्या होगा
इस पार प्रिये मधु है, तुम हो उस पार न जाने क्या होगा

यहीं से बच्चन के गीतों का व्यष्टिपरक स्वर जन-जन के मन को उद्वेलित करता है—

Cursed be the social wants that sin against the strength of youth. Cursed be the social· lies that wraper from living truth.

अर्थात्—धिक्कार है समाज की उस संकुचितता को जो हमारे यौवन को मिटाने का पाप करती है। धिक्कार है समाज के उस मिथ्यात्व को जो हमें जीवित सत्य से अलग करता है।

बच्चन ने अपने गीतों में यौवन के उन्माद एवं उसकी आशा-निराशा को इसी यथार्थ स्थिति के अनुसार व्यक्त किया है। उनके काव्य का "जीवित सत्य" उनके हर गीत में वाणी पाता है। अतः यहाँ समष्टि से व्यष्टि का घोर संघर्ष प्रकट होता है और काव्य की लोक-कल्याण भावना का उसमें किंचित आभास नहीं होता। परन्तु प्रत्येक देश के काव्य-साहित्य में, और इतना ही नहीं प्रत्येक कवि की अधिकांश रचनाओं में यह संघर्ष प्रधानता से प्रकट होता है। मेरा विचार है कि

गीति-काव्य व्यष्टि के अन्तर-बाह्य संघर्षों के कारण मुखर हुआ एक हार्दिक विस्फोट ही है। जब कवि को बाहरी संसार में अपनी वासना की संतुष्टि नहीं हो पाती तो संभवतः उसके संवेदनशील और स्वाभिमानी हृदय में उसे पाने की एक होड़ की ज्वाला-सी जाग जाती । उस स्थिति में वह अपने दृष्य अभाव के विभिन्न मनोभावों, कल्पनाओं और अभिव्यक्तियों में साकार करने की अनवरत चेष्टा में जुट जाता है। इस 'जुट जाने' में उसकी सम्पूर्ण गीत-साधना की सफलता और हार्दिकता की सृष्टि बनती है। साधारण व्यक्ति और एक कवि में यही सूक्ष्म अन्तर है कि साधारण व्यक्ति अपनी इच्छा की सन्तुष्टि या असन्तुष्टि का भाव अन्तर्भूत नहीं कर सकता। इसलिए उसका राग और विराग व्यष्टिगत है, साधारणीकृत नहीं। और एक कवि वैसा करने में पूर्णतः सफल हो जाता है। अतः एक दृष्य सौन्दर्य से अधिक रोमांचकारी और एक दीन भिखारी से अधिक करुणामयी सजीव अवस्था का चित्रण हम कवि की कृति में सहज ही पा लेते हैं और उससे अपने हृदय का रागात्मक सम्बन्ध जुड़ा हुआ पाते है। अतः कवि की व्यष्टिमयी अनुभूतियों में भी एक अन्तरव्यापकता होती है जो अन्य हृदयों में अपनापन लेकर विचरती है। यही भेद है कि 'बच्चन' की रचनाओं में ऐसी बात हम आधुनिक सभी कवियों से अधिक मात्रा में पाते हैं। देखिए—

'सृष्टि के आरम्भ में मैंने उषा के गाल चूमे,
तरल रवि के भाग्य वाले दीप्त भाल विशाल चूमे,
प्रथम सन्ध्या के अरुण दृग चूमकर मैंने सुलाए,
तारिका कलि से सुसज्जित नव निशा के बाल चूमे।
वायु के रसमय अधर पहले सके छू होंठ मेरे,
मृत्तिका की पुतलियों से आज क्या अभिसार मेरा।
कह रहा जग वासनामय तो हो रहा उद्गार मेरा।'

(मधुकलश)

स्वभावतः कवि को ऐसी दशा में बाह्य मिथ्या आदर्श और जर्जर मर्यादायें भी सहन नहीं हो पातीं—

कल छिड़ी होगी खतम कल प्रेम की मेरी कहानी,
कौन हूँ मैं जो रहेगी विश्व में मेरी निशानी,
क्या किया मैंने नहीं जो कर चुका संसार अबतक
वृद्ध जग को क्यों अखरती है क्षणिक मेरी जवानी ?
मैं छिपाना जानता तो जग मुझे साधू समझता
शत्रु मेरा बन गया है छल रहित व्यवहार मेरा।

ऐसी उद्भावनाओं से यह साफ़ प्रकट होता है कि बच्चन ने सीधे-सादे ढंग से अपने गीतों की दिशा पकड़ी है जिनमें गूढ़ प्रतीक व्यंजना, रहस्याकर्षण और असीम रूप-सौंदर्य के पान की पिपासा न होकर इसी संसार की आशा-निराशा, प्रेम-घृणा और

प्यास-तृप्ति की अनूठी 'अभिधामूलक अभिव्यंजना' है।

कविवर पंत ने बच्चन को अपनी 'मधुज्वाल' कृति समर्पित करते हुए लिखा है—

> "घुमड़ रहा था ऊपर गरज जगत संघर्षण
> उमड़ रहा था नीचे जीवन-वारिधि क्रन्दन
> अमृत हृदय में, गरल कंठ में, मधु अधरों में ले
> आए तुम वीणाधर कर में जन-मन-मादन
> मधुर-तिक्त जीवन का मधुकर पान निरन्तर
> मथ डाला हर्षोद्वेगों से मानव अंतर।
> तुमने भावों लहरियों पर जादू के स्वर से
> स्वर्गिक स्वप्नों की रहस्य ज्वाला सुलगाकर ?"

पंत जी की इन पंक्तियों में बच्चन के सुख-नीड़ों में गाते गीतों के विहगों का कलरव, मधु-मोहक स्वर-लहरी, यौवन का इन्द्रधनुषी आकर्षण, सुख-दुख की तीखी संवेदना, क्रूर जग के निर्मम घात-प्रतिघात तथा कवि के अमृत-गरलमय जीवन तथा व्यक्तित्व का सूक्ष्म परिचय मिलता है।

और अब तक, जब कि कवि ने अनेक भाव-बोधमई नई कृतियों की रचना कर डाली है उसे हालावादी कवि कहना-समझना उसके काव्य या आत्मदान के प्रति हठ-धर्मी की बात कही जायगी। बच्चन ने काव्य के क्षेत्र में जिन नवीन भंगिमाओं की सृष्टि की है अपने ढंग की वह निराली है। इस पर भी विशेषता यह है कि जहां निराला और पंत जैसे श्रेष्ठ कवि प्रायः आध्यात्म या प्रकृति के भावक्षेत्र से युग-प्रगति का मोड़ लेते समय अपने काव्य-लक्ष्य से कुछ दूर से हो गये हैं (इस सम्बन्ध में में पंत जी की 'ग्राम्या' और निराला जी की 'कुकुरमुत्ता' कृति विशेषतः पठनीय है) वहां बच्चन ने अपने व्यक्तित्व को कभी नहीं भुलाया। हां, वह मोड़ों को प्रायः भूलते गये (जो बीत गई सो बात गई !) जिसके कारण उनके काव्य में मनोभावों को प्रायः एक ही तरह बार-बार दोहराने की भूल हुई कही जा सकती है। इस सम्बध में एक ओर निशा निमंत्रण, एकांत संगीत और आकुल अंतर के गीत लिए जा सकते हैं दूसरी ओर मिलन यामिनी और प्रणय पत्रिका के गीत लिये जा सकते हैं। और सतरंगिनी इनकी बीच की कड़ी है। इन कृतियों के बहुत से गीतों में भाव-साम्य है। परंतु यह निश्चय है कि बच्चन कभी हालावादी कवि नहीं रहे। उनका मूल स्वर हालावादी न होकर स्वच्छंदतावादी है जो व्यष्टि के सुख-दुख से प्रेरित है।

बच्चन जी के सम्पूर्ण काव्य को बहुत संतुलित दृष्टि से पढ़कर मेरी धारणा हैं कि उनका काव्य व्यापक दृष्टि से व्यक्ति-जीवन के आयु-कालों में बाँटा जा सकता है—विशेषतः यौवन काल और प्रौढ़ काल में! बच्चन जी का कवि आयु के अनुसार अभिव्यक्त हुआ है। उनकी प्रत्येक रचना जैसे खुद बोलती है कि उसका कवि कितना बड़ा है, कि उसकी सहज मनः स्थिति कैसी है। १४ नवम्बर सन् ६५ के धर्मयुग में मैंने जब बच्चन जी की "क्यों जीता हूं" कविता पढ़ी तो मुझे

अपनी स्थापना पर सन्तोष होना स्वाभाविक है—

आधे से ज्यादा जीवन
जी चुकने पर मैं सोच रहा हूं—
क्यों जीता हूं ?
लेकिन एक सवाल अह
इससे भी ज्यादा,
क्यों मैं ऐसा सोच रहा हूँ ?
सम्भवतः इसलिये
कि जीवन कर्म नहीं है अब
चिन्तन है,
काव्य नहीं है अब
दर्शन है।
जबकि परीक्षाएँ देनी थीं
विजय प्राप्त करनी थी
अजया के मन-तन पर,
सुन्दरता की ओर ललकना
और ढलकना
स्वाभाविक था,
जबकि शत्रु की चुनौतियां
बढ़कर लेनी थीं,
जबकि हृदय के बाढ़-बवंडर
औ' दिमाग के बड़वानल को
शब्द-बद्ध करना था,
छंदों में गाना था,
तब तो मैंने कभी न सोचा
क्यों जीता हूँ ?
क्यों पागल-सा
जीवन का कटु-मधु पीता हूं ?
आज दब गया है बड़वानल,
और बवण्डर शांत हो गया,
बाढ़ हट गयी,
उम्र कट गयी,
सपने-सा लगता बीता है
आज बड़ा रीता-रीता है
कल शायद इससे ज्यादा हो,

अब तकिये के तले
उमर ख़ैयाम नहीं है
जन-गीता है ।

क्या ये कविता एक कम साठ वर्ष की आयु के कवि की नहीं लगती ? अतः कुल मिलाकर बच्चन के कवि द्वारा छोटे मुँह से बड़े बोल नहीं निकले और न बड़े मुँह से छोटे बोल ही निकले हैं ।

× × ×

यह धारणा सच कही जा सकती है कि बच्चन के काव्य में कुछ विदेशी कवियों की प्रतिध्वनियाँ सुनाई पड़ती हैं । उदाहरण के लिये मिलन-यामिनी के एक गीत में आया है—

'आहें उठती, आंसू झड़ते,
सपने पीले पड़ते लेकिन
जीवन में पतझर आने से
जीवन का अंत नहीं होता ?

और तुलना के लिये महाकवि गेटे का यह कथन पठनीय है—

"सिद्धान्त पीले पड़ जाते हैं पर जीवन-वृक्ष सदा हरा-भरा बना रहता है"

इस प्रकार के अनेक उदाहरण दिये जा सकतें हैं ।

पर काव्य के क्षेत्र में प्रभाव बुरा नहीं कहा जा सकता । नकल घातक है । बच्चन ने स्वयं येट्स कवि के प्रभाव की चर्चा की है । 'आरती और अंगारे' कृति की आरतीपरक कविताओं में इस प्रभाव वाले तथ्य की व्यापक पुष्टि मिलती है । पर इसका आशय यह नहीं कि किसी कलाकार में यह प्रभाव वाली बात मिलना उसके काव्य की उपेक्षा या मूल्यहीनता का प्रमाण है । यों तो प्रत्येक साहित्यकार अपने पूर्ववर्ती अथवा समकालीन विशिष्ट-वरिष्ठ साहित्यकार से अपनी मनोरुचि के अनुसार प्रभावित होता ही है । बाल्मीकि कितने होते हैं ? महाकवि तुलसी भी अपने पूर्ववर्ती 'निगमागम सम्मत' वाले प्रभाव से प्रभावित थे । प्रभाव बड़े कवियों की रचनाओं में कहीं न कहीं कुछ प्रतिध्वनित हो ही जाता है । पर कला का मूल्य है मौलिकता में, चुनाव में, अभिव्यक्ति की नवीनता में । 'बच्चन' के गीतों में अनुभूति उनकी सर्वथा अपनी है, शुद्ध है । इंग्लैंड प्रवासकाल में लिखे गये एक गीत की यह पंक्तियां देखिये—

"बौरे आमों पर बौराये भौंर न आये
कैसे समझूँ मधुऋतु आई ! **(प्रणयपत्रिका)**

तथा ऐसे ही अन्य कई गीतों में अपने देश (भारत) का प्राकृतिक प्रेम तथा अनुराग का भाव मौलिक व रुचिकर ढंग से अभिव्यंजित हुआ है ।

× × ×

कवि की पूर्व रचित 'सूत की माला', 'खादी के फूल' तथा 'बंगाल का काल' नामक तीनों कृतियों में कहीं-कहीं सच्ची क्रांतिकारी और मानवतावादी विचारधारा का प्रकाशन हुआ है—

घोषित कर दो दिकदिगंत में
भूख नहीं है भीख चाहती,
भूख नहीं है भीख मांगती,
भीख मांगते केवल कादर,
केवल काहिल
केवल बुज़दिल.........
भूख नहीं दुर्बल, निर्बल है,
वह अन्याय चबा जाती हैं
अन्यायी को खा जाती हैं
और निगल जाती है पल में
आततायियों का दुःशासन
हड़प चुकी अब तक कितने ही
अत्याचारी सम्राटों के
छत्र, किरीट, दंड, सिंहासन !

(बंगाल का काल)

लेकिन वास्तविकता यह है कि बच्चन का राष्ट्रीयतावादी अथवा गांधीवादी काव्य-सृजन बहुत सतही है। उसमें गुप्त जी के काव्य जैसा न इतिवृत्त-वैशिष्ट्य है, न पन्त जी के काव्य जैसा लोकमंगलत्व है न निराला जी के काव्य जैसा उदात्त तत्व है और न दिनकर के काव्य जैसा दबता-उभरता ओज तत्व है। वहाँ सब कुछ 'धार के इधर उधर'-सा ही प्रतीत होता है। भावशिल्प की दृष्टि से वहाँ बिखराव है। करंट कहीं-कहीं महसूस होता है।

त्रिभंगिमा की 'चेतावनी' जैसी ओज प्रधान कविता बच्चन ने पूर्व नहीं लिखी। वस्तुतः बच्चन की राष्ट्रीय तथा साँस्कृतिक चेतना की अभिव्यक्ति करने वाली यह अकेली ऐसी कविता है जो भविष्य के भारत की गौरववान, क्राँतिकारी पीढ़ियों के लिए सदैव प्रेरणाप्रद बनी रहेगी। और शुद्ध मानवतावादी भाव जहाँ भी बच्चन जी ने प्रकट किया है वहीं उनका स्वर महान हो गया है।

इस क्रम में 'बंगाल का काल' कृति इस दृष्टि से ध्यान आकर्षित करती है कि वह मुक्तछंद में लिखी (तब) बच्चन की न केवल इतनी लम्बी देश-दुर्भिक्ष सम्बन्धी कविता है बल्कि इससे पूर्व मुक्तछंद की इतनी लम्बी और नयी शैली-शब्दावली में लिखी गई कोई कविता सम्भवतः नहीं थी। मैं कह सकता हूं कि आगामी मुक्तछंद के काव्य की यह कविता जैसे पूर्व-पीठिका है। बच्चन के काव्य का 'बंगाल का काल' से अब तक अपना स्वाभाविक विकास हुआ है जिसमें कवि की आयु के साथ ही साथ देश-काल युग-जीवन और सृजन के नये-नये सन्दर्भ भी जुड़े हैं। यहाँ न पुराना नये का प्रतिद्वन्द्वी है और न

नया पुराने का । असल मे बच्चन के काव्य का उत्तरोत्तर विकास हुआ है जिसे हम युग-जीवन और व्यक्ति-वय के क्रम से काटकर नही समझ सकते । इस दृष्टि से बच्चन की काव्य साधना का मानचित्र इतना विशाल है कि उसमे शिल्प क्षण-शोध-बोध युग-यथार्थ एव व्यक्तिनिष्ठता देखना-समझना बुद्धि का निष्फल प्रयास सिद्ध होगा । 'नयी कविता' की प्रज्ञा और उसके प्रतिमानो का तो उस परम्परा से व्यापक विरोध है जो व्यक्ति वश, व्यक्ति समाज और जग-जीवन को चिरजीवी बनाए रखती है और जिसे हम रुढि या पुरातनता का निर्मोक कह कर कभी झुठला नही सकते क्योकि उससे मानवीय इतिहासो के ज्वलत सत्यो का अटूट नाता है तथा राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धो तथा सघर्षो की चेतना आज भी इस परम्परा के प्राणो मे चिंगारी सी सुलगी हुई है । अत बच्चन के मुक्तछदी काव्य को आलोचकीय पूर्वाग्रह अथवा वक्तव्यो अथवा दुराग्रहो की आड लेकर घिसे-पिटे या घटे हुए मूल्यो की कविता कहना-समझना या तो अन्याय होगा या अनाडीपन । वैसे इस युग मे जो हो जाय सो थोडा ! लेकिन समथ सृजन पर इसका कोई प्रभाव नही पडा करता ।

× × ×

कवि की 'सूत की माला' तथा 'खादी के फूल' मे सग्रहीत गाँधी जी के बारे मे श्रद्धाजलिपरक कविताओ मे (कुछो को छोडकर) मुझे अधिकाश कविताए इतनी दुबल लगती है कि बच्चन की मानने मे भी हिचक होती है । क्योकि इनमे एकदम तुकबन्दी है, बिखराव है और शब्द 'ऐरे-गैरे नत्थू खैरे'-से नजर आते है । इन दोनो कृतियो के गीतो को पढते हुए सबसे अधिक अखरने वाली बात है तुकबन्दियो के लिए अति अनगढ, अकाव्यात्मक शब्दो का प्रयोग । ऐसा लगता है कि 'गाँधी जी की निर्मम हत्या पर' कवि कविताए लिखकर जल्दी से जल्दी प्रकाशित कराने की फिक्र मे है । एक महापुरुष की मृत्यु पर कवि की महात्वाकाँक्षा उसके सृजन पर किस कदर हावी हो जाती है—आलोच्य कृतियो को पढकर कुछ ऐसा ही लगता है । वैसे इन गीतो मे अभिव्यजना का सौन्दय कही-कही व्यग और उसके वैचित्र्य के द्वारा उभरा है । गाधी जी के महाप्राणतत्व पर आस्था की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है—

अवनी गौरव से अकित हो नभ के लेखे,
क्या लिए देवताओ ने ही यश के ठेके,
अवतार स्वर्ग का ही पृथ्वी ने जाना है,
पृथ्वी का अभ्युत्थान स्वर्ग भी तो देखे !

किन्तु कुल मिलाकर समर्थ कवियो मे बच्चन के गाधी जी की हत्या पर लिखे गीत प्रथम कोटि के नही है ।

× × ×

वैसे तो बच्चन के सभी गीतो मे सहजता और सवेद्यता है, पर श्रेष्ठतम गीत उनकी मधुबाला, मधुकलश, निशा-निमत्रण, एकान्त सगीत, सतरगिनी, मिलन-यामिनी और प्रणय-पत्रिका कृतियो मे सग्रहीत है । सश्लिष्टल इन कृतियो के गीतो की इन

विशेषताओं को ध्यान में रख लेना आवश्यक है—

१. **प्राकृतिक वातावरण का चित्रण**—बच्चन के गीतों में अनुभूति प्रधान है, कल्पना कम। किन्तु अनुभूति प्रकृति के सहज दृश्यों से युक्त वातावरण में विचरकर अधिक मनोरम बन गयी है। यद्यपि अलंकरण विधान की दृष्टि से बच्चन का प्रकृति चित्रण किसी विशिष्टता का आभास नहीं देता किन्तु पृष्ठभूमि के रूप में प्रकृति ने बच्चन की माँसल अनुभूति को अभिव्यक्ति के नूतन आयाम प्रदान किये हैं।

२. **अंतजगत का यथार्थ चित्रण**—व्यक्ति के मानसिक उल्लास-विषाद की अकृत्रिम अभिव्यंजना बच्चन के गीतों की अपनी विशेषता है। अतः वहाँ कुंठा और विकृतियों को व्यक्त करने का ऐसा भावावेग नहीं है, जैसा विशेषतः अंचल के गीतों में देखने को मिलता है गो यह ठीक है कि शृंगारवर्णन में अंचल के गीत अधिक मार्मिक एवं तरल हैं।

३. **भाषा-शैली**—बच्चन के पास विशाल शब्दसमूह है। अपने गीतों में उन्होंने कई जनपदीप बोलियों के शब्दों का समाहार किया है। उर्दू-हिन्दी मिश्रित पदावली का सफल प्रयोग करने वाले मात्र वही हिन्दी के समर्थ कवि हैं। इतस्ततः उन्होंने अंग्रेज़ी के प्रचलित शब्दों का प्रयोग भी किया है। कविता में मुहावरों का जितना सफल प्रयोग बच्चन ने किया है सम्भवतः खड़ी बोली के किसी दूसरे कवि ने नहीं किया। इसी कारण उनके अनलंकृत गीत भी अलंकृत गीतों की अपेक्षा अधिक मर्मस्पर्शी लगते हैं।

और इन विशेषताओं की पुष्टि बच्चन जी के इस कथन से होती है—

'मेरी समझ में कविता ऐसी होनी चाहिए जो न तो अपने गुण-शक्ति से पाठक को दबा दे और न ऐसा ही हो कि उसे कवि की प्रशंसा में उछाल दे। जहाँ वह ऐसी है वहाँ उसमें न दैवी विदग्धता है और न दानवी उच्छृंखलता, उसमें वहाँ मानवी सुख-दुख जनित भावमयता भर है। कविता सचमुच पाठक और कवि के हृदय को जोड़ने वाला साधन है—या एक मानव हृदय को दूसरे मानव हृदय के साथ। जहां वह इससे कम या ज़्यादा है वहाँ वह अपनी सीमा से बाहर है और उतनी ही कम कविता है।

('सोपान' संकलन)

और इस परिप्रेक्ष्य में यदि बच्चन की सम्पूर्ण गीत-कृतियों को पढ़ा जाय तो उनमें शायद ही कहीं कुछ असंगत अथवा 'धार के इधर-उधर' होगा। 'आकुल अन्तर' की इन दो पंक्तियों में कवि ने गीत-सृजन का जैसे रहस्य खोल दिया है—

× × ×

भावनाओं का मधुर आधार सांसों से विनिर्मित
गीत कवि उर का नहीं उपहार उसकी विकलता है।

निशा-निमंत्रण

खड़ी बोली के गीत-संग्रहों में 'निशा-निमंत्रण' गीत-संग्रह का अपना एक अलग अस्तित्व और महत्व है। अस्तित्व है इस बात में कि वह सांझ से लेकर विरह-विषाद भरी एक भयंकर काली रात का सवेरे होने तक का १०० गीतों वाला महागीत है। अपनी प्रथम पत्नी श्यामा के मरणोपरान्त कवि ने इस कृति के गीतों की रचना की। निशा-निमंत्रण के पीछे नियति की निर्ममता का भयंकर प्रहार और उसके कारण उठा मर्मभेदी चीत्कार ध्वनित होता है। पत्नी के प्रति विरह-विषाद के यथार्थ को गीतों में रूपायित करने में कवि ने अनूठी सफलता पाई है। कई कारणों से मैं 'निशा-निमंत्रण' के गीतों को रूमानी प्रणय-गीतों की कोटि से पृथक मानता हूं। इन गीतों में न 'आँसू' का 'प्लेटोनिक प्रणय' है, न महादेवी के गीतों जैसा 'रहस्यमय प्रणय' है और न अंचल, नरेन्द्र शर्मा तथा के. नेपाली गीतों का जैसा उद्दाम आवेग-प्रवेगों से आलोड़ित तथा अतृप्ति की आग से झुलसा क्षयग्रस्त-सा प्रणयराग है। 'निशा-निमंत्रण' के गीतों में पत्नी के प्रति विरह-वेदना के मुखरण में कवि ने नियति, प्रकृति, जग-जीवन, मरण तथा इन सबके ऊपर मानवतावाद का राग मुखरित किया है जिससे इस कृति का रोमांस मात्र रोमांस न रहकर जीवन के जिए जाने वाले सन्दर्भों का साक्ष्य प्रस्तुत करता है। निशा-निमंत्रण मात्र विरह-विषाद के गीतों का संग्रह ही नहीं है अपितु एक असहाय, अकेले, विधुर मानव की मानसिक प्रतिक्रिया के फल-स्वरूप उतरे शब्द-चित्रों का सजीव एलबम है। निशा-निमंत्रण के कई गीतों में शुद्ध मानवतावादी स्वर है। किन्तु विशेषता यह है कि यह स्वर कल्पना और आदर्श पोषित या प्रेरित न होकर यथार्थ पोषित या प्रेरित है। भाव एवं शिल्प के समन्वय एवं रूप-विधान की दृष्टि से मैं निशा-निमंत्रण के अधिकांश गीतों को अमर मानता हूं। निशा-निमंत्रण के गीतों में स्थल-स्थल पर ऐसी मार्मिक उक्तियाँ आती हैं कि मन में तिरछी होकर गड़ जाती हैं—यथा,

अतुल प्यार का अतुल घृणा में मैंने परिवर्तन देखा है,

× × ×

है चिता की राख कर में माँगती सिन्दूर दुनिया,

× × ×

मरूथल में मृगजल के पीछे दौड़ मिटी सब तेरी आशा
छोटे-से जीवन से की है तूने बड़ी-बड़ी प्रत्याशा

× × ×

चिता निकट भी पहुँच सकूं मैं अपने पैरों-पैरों चलकर

× × ×

जैसे जग रहता आया है उसी तरह से रहना होगा।

प्रकारांतर से कहें तो निशा-निमंत्रण एक ऐसे व्यक्ति या मानव की भावमय सृष्टि है जिसने अपने जीवन के सबसे सुन्दर और सुखद् सपने का शव न चाहते हुए भी चिता

पर रख कर फूँक दिया। दुर्भाग्य और नियति ने उसके साथ इतनी बड़ी साजिश की। पर वह शिकायत किससे करे? और कवि की शिकायत भी क्या हो सकती है? उसके पास तो वेदना है। बस, पत्नी की मृत्यु ने कवि बच्चन की वेदना की ज्वाला को भड़का दिया। एक चिता बाहर जली, एक चिता अन्तर में भी धधक उठी। कवि सिहरा, नयन डबडबाये और नेत्र उठाए तो उसने देखी अपनी निराश ज़िन्दगी की पहली, एक उदास शाम······फिर देखा उस में दिन भर के थके-हारे पखेरुओं का अपने सुखद् बसेरे की ओर उत्सुकता से लौटते जाना—

दिन जल्दी-जल्दी ढलता है,
हो जाय न पथ में रात कहीं, मंज़िल भी तो है दूर नहीं,
यह सोच थका दिन का पंथी भी जल्दी-जल्दी चलता है!
बच्चे प्रत्याशा में होंगे, नीड़ों से झाँक रहे होंगे,
यह ध्यान परों में चिड़ियों के भरता कितनी चंचलता है।

किन्तु बेचारा एकाकी, उदास कवि क्या करे—

मुझसे मिलने को कौन विकल, मैं होऊँ किसके हित चंचल?
यह प्रश्न शिथिल करता पद को, भरता उर में विह्वलता है!

ढलती हुई साँझ में थके पंथी की मंज़िल पर पहुँचने के लिए तेज़ चाल, नीड़ों से झाँकते पक्षि-शावकों की स्मृति में उड़ती चिड़ियों के परों में अकथनीय चंचलता परन्तु अन्त में इस उत्सुकतामय नैसर्गिक वातावरण में कवि के मानस में किसी को भी अपना न जानकर उसके पैरों से उलझती हुई विकलता! उक्त गीत में यह सब कुछ एक सजीव चित्र की भांति पाठक के मानसिक-पटल पर उतर आता है। इस प्रकार मानसिक स्थिति एवं प्रकृति के वातावरण के संयोगात्मक अनेक मार्मिक-मांसल चित्रों की सृष्टि निशा-निमंत्रण के सौ गीतों में दृष्टव्य है। इस सन्दर्भ में यह कहना संगत होगा कि बच्चन के श्रेष्ठ गीतों में जहां भावों की अन्विति कहीं खंडित नहीं होती वहीं उनके गीतों के अंतरों की 'टेक' की पंक्तियों का भाव-शिल्पगत सौन्दर्य भी अनूठा होता है। जिस प्रकार रुबाई की अंतिम पंक्ति जान होती है उसी प्रकार बच्चन के गीतों के अंतरों की अंतिम पंक्तियाँ होती हैं। बच्चन की ध्रुवपंक्ति अनायास मन के किसी उद्गार को एक विशेष 'मूड' में रुपायित करती है जिसमें सहज स्वरों की संगति और भावानुरूप लय-ताल की स्थापना होती है। आगे के तीन-चार अन्तरों में उसी भाव को सबके लिये मर्मस्पर्शी या मर्मभेदी बनाने के निमित्त प्रकृति के सहज दृष्यों को सरल पदावली में अंकित किया जाता है। एक आत्म-तल्लीनता, एक आंतरिक स्थिति का विवर्त (रूपान्तर) इन गीतों में कहीं धुंधला नहीं पड़ता। इन समस्त विशेषताओं का पूर्णतः समाहार निशा-निमंत्रण के गीतों में हुआ है। आगे मिलन-यामिनी तथा प्रणय-पत्रिका के गीत भी भाव-शिल्प की इस ऊँची उपलब्धि के शिखर कहे जा सकते हैं।

निसन्देह प्रकृति के नित्य अनुभूत होने वाले संमोहक वातावरण में कवि की अनुभूति तथा वेदना, सहवेदना एवं संवेदना का जितना हृदयस्पर्शी चित्रण निशा-निमंत्रण के गीतों में मिलता है उतना खड़ी बोली के किसी एक गीत-संग्रह के गीतों में देखने को

नहीं मिलता। उदाहरण के लिए एक विरही के दिल और नीरभरे बादल की स्थिति का साम्य और वैषम्य इन पंक्तियों में देखिये—

आज मुझसे बोल, बादल !
तम भरा तू, तम भरा मैं, गम-भरा तू, गम-भरा मैं,
आज तू अपने हृदय से हृदय मेरा तोल, बादल !......
आग तुझमें, आग मुझमें, राग तुझमें, राग मुझमें ।

पर, इस साम्यता के साथ ही एक विरही के दुखी दिल और बरसने वाले बादल में कितना दुःखद् वैषम्य भी है—

क्षार, जल मैं, तू मधुर-जल,
व्यर्थ मेरे अश्रु, तेरी बूँद है अनमोल, बादल !

तात्पर्य यह है कि निशा-निमन्त्रण के प्रकृति-चित्रण में छायावादी वायवी मानवीकरण न होकर मांसल मानवीकरण है। यह विशेषता बच्चन के गीतों को रूमानियत और यथार्थ की संधि पर गूंजने का पूर्ण अवकाश प्रदान करती है । अतएव इन गीतों को पढ़ते हुए पाठक अपने ही जीवन के सुख-दुख की संधि से उठते हुए स्वरों का स्वाद लेने लगता है।

और हाँ, अतीत के मधुर हास-रास-रूप-रंग-रस की याद तथा वर्तमान की कटुतम निर्मम स्थिति, नियति तथा इस जग की व्यक्ति के प्रति क्रूरता किस संवेदनशील हृदय को नहीं सताती ? और तब कवि के जीवन की यथार्थ अभिव्यंजना की कड़वी हिचकी का स्वाद यों फूटा—

स्वप्नों ही ने मुझको लूटा, स्वप्नों का, हा, मोह न छूटा,

पर अतीत कब लौटता है ? जो मिट गया सो मिट गया। पर याद की हिचकियों का नाद न गूंजे, क्या यह जीवन के प्रति बेइमानी नहीं है ? जीवन के प्रति प्रतिबद्धता का अर्थ यह भी है कि कठिन अतीत की याद और उसके वर्तमान विषाद की अभिव्यक्ति करना और भविष्य की मंगलाशा की ध्वनि खोजना—

बीते दिन कब आने वाले !
मेरी वाणी का मधुमय स्वर विश्व सुनेगा कान लगाकर,
दूर गए पर मेरे उर की धड़कन को सुनपानेवाले !
विश्व करेगा मेरा आदर हाथ बढ़ाकर, शीश नवाकर,
पर न खुलेंगे नेत्र प्रतीक्षा में जो रहते थे मतवाले !
मुझमें है देवत्व जहाँ पर झुक जायेगा लोक वहाँ पर
पर न मिलेंगे मेरी दुर्बलता को अब दुलराने वाले ?

और इस प्रकार की व्यक्तिवादी असन्तोष तथा निराशामयी ध्वनियां भी अधिकांश गीतों में गूंजती हैं—

जहां प्यार बरसा था तुझपर, वहां दया की भिक्षा लेकर
जीने की लज्जा को कैसे सहता है, मानी मन तेरा !
मधुप, नहीं अब मधुबन तेरा !

सम्भवतः यह सही है कि कवि की इस निराशा के प्रति समाज की उदासीनता रही हो। किन्तु सभी गीतों के लिए ऐसी बात सच नहीं कही जा सकती। सच तो यह है कि ऐसे गीतों में कवि-व्यक्ति जीवन की दुर्दमनीय पीड़ा को तथा मन में सोडे के पानी की तरह उबलते हुए सत्य को मुखरित करके कुछ राहत पाता है—

राग सदा ऊपर को उठता, आंसू नीचे झर जाते हैं।

× × ×

रो तू अक्षर अक्षर में ही, रो तू गीतों के स्वर में ही,
शांत किसी दुखिया का मन हो जिनको सूनेपन में गाकर !
क्यों रोता है जड़ तकियों पर !

एक सन्देह उठता है कि क्या इस प्रकार के व्यक्तिवादी गीतों से पाठकों का आंतरिक संम्बन्ध जुड़ सकता है ? मेरे विचार से सुख-दुख की अनुभूति समान होती है। उसे हम खंडो में या व्यक्तियों की इकाइयों में नहीं बाँट सकते। व्यक्ति-व्यक्ति के जीवन की घटनाएँ, उसके संघर्ष, उसकी जय-पराजय, आशा-निराशा, प्राप्ति-अप्राप्ति और प्रेम-घृणा के दायरे अलग हो सकते हैं, किन्तु उनकी मानसिक प्रतिक्रिया से प्रसूत सुख-दुख की अनुभूति समान होती है। बच्चन के गीत निश्चय ही व्यक्तिवादी स्वरों से युक्त हैं। किन्तु उनमें बच्चन के जीवन की स्थूल घटनाएँ व्यक्ति के मूल सुख-दुख की सहज अभिव्यक्ति में रूपायित हो गई हैं। अतः उन पर तो अब स्वयं कवि बच्चन तक का अधिकार नहीं है। वह तो व्यक्ति का विश्व को दिया गया अंतिम उपहार है, आत्मदान है—

लें तृषित जग होठ तेरे लोचनों का नीर मेरे !
मिल न पाया प्यार जिनको आज उनको प्यार मेरा !
विश्व को उपहार मेरा !

यहाँ कहाँ है व्यक्ति का ऐसा व्यक्तिवाद जिसे हेय कहा जा सकता है ?

संक्षेप में, निशा निमन्त्रण के गीतों में एक व्यक्ति को केन्द्र मानकर उसके जीवन-साथी के असमय, अशुभ अवसान का रागमय चित्रण किया गया है। पर इस राग का आधार मांसल प्रणय की रूमानियत न होकर जीवन के सुख-दुख के भिन्न-भिन्न पहलू हैं। और इन पहलुओं में जिये जाने वाले जीवन का जो जड़ सत्य है उसे अनुभूति के ताप से तरल बनाकर मुखरित किया गया है। कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं—

साथी, साथ न देगा दुख भी !
काल छीनने दुख आता है, जब दुख भी प्रिय हो जाता है,
नहीं चाहते जब हम दुख के बदले में लेना चिर सुख भी !...
जिस परवशता का कर अनुभव, अश्रु बहाना पड़ता नीरव,
उसी विवशता से दुनिया में होना पड़ता है हँसमुख भी...
भिन्न दुखों से, भिन्न सुखों से होता है जीवन का रुख भी !

और यह भी कि—

साथी हमें अलग होना है !
भार उठाते सब अपने बल, संवेदना प्रथा है केवल,
अपने सुख-दुख के बोझे को सबको अलग-अलग ढोना है !

खंडित प्रणय के संदर्भ में जीवन के यथार्थ सुख-दुख के विभिन्न भावावेगों को सहज स्वरों में व्यक्त करना ज़रा टेढ़ी खीर है। पर निशा निमन्त्रण के कवि ने ऐसा करने में सफलता पाई है।

× × ×

बच्चन की शब्द-सृष्टि सबसे पृथक पहचानी जाती है। इस दृष्टि से निशा निमंत्रण के गीतों की शब्द-रचना में कवि ने आशातीत सफलता पाई है। सौ गीतों में एक भी गीत ऐसा नहीं है जिसमें क्लिष्ट शब्दावली हो, समास हों, सन्धियां हों, या न्यूनपदत्व हो। उर्दू के शब्दों तथा प्रचलित मुहावरों का प्रयोग इन गीतों के भावप्रसार को और भी गति प्रदान करता है। यथा,

याद सुखों की आंसू लाती, दुख की, दिल भारी कर जाती,
दोष किसे दूं जब अपने से अपने दिन बर्बाद करूं मैं !
क्या भूलूं, क्या याद करूं मैं !

इन गीतों में लक्षणा-व्यंजना तथा प्रतीक-पदावली की कमी होते हुए भी लयात्मकता और सजीव चित्रात्मकता हृदय को आकर्षित करती जाती है। एक उदाहरण देखिये—

साथी, सो न, कर कुछ बात !
बोलते उडगण परस्पर, तरू दलों में मंद 'मरमर'
बात करतीं सरि-लहरियां कूल से जलस्नात !

निशा निमन्त्रण के गीतों में भाव-भाषा का, यथार्थ-कल्पना का तथा वातावरण के चित्रण का परस्पर अटूट सम्बन्ध है। प्रत्येक गीत प्रायः मर्म के मंथन से शुरू होता है और प्रकृति के पथ के छाया-प्रकाश में गूँजता हुआ जग-जीवन के स्वर में घुल-मिल जाता है।

निशा निमन्त्रण के १०० गीतों को पढ़ने के उपरान्त एक प्रश्न उभरता है कि उनमें भला ऐसा क्या है जिससे उन्हें उच्च कोटि के गीतों की कोटि में रखा जाये ? लेकिन अगर गीत कवि के उर का उपहार है, उसका आत्मदान है, तो उसकी महत्ता इस बात में है कि उसे पढ़कर मानव का 'आकुल अन्तर' कुछ शान्त हो, कि वह गीत व्यक्ति का 'एकान्त संगीत' बनकर सदा गूँजता रहे। निशा निमन्त्रण गीत-संग्रह वस्तुतः कवि के उर का उपहार है, उसका आत्मदान है, कि जो मानव के 'आकुल अन्तर' को ध्वनित-प्रतिध्वनित करता है, कि जो उसके एकान्त को गुँजायमान रखता है। इस प्रकार निशा निमन्त्रण आगामी 'एकान्त संगीत' और 'आकुल अन्तर' गीत-संग्रहों का जैसे प्राक्कथन है। इन गीतों में एक सन्तप्त मन का निश्छल रोदन-गायन है। यहाँ एक ऐसा नीरव रोदन है जिससे दुखियों का विशाल समाज अपने हर दुखिया कोनिजी दुख के दायरे में अकेला नहीं छोड़ता। और इस संदर्भ में निशा-निमन्त्रण के गीत की यह पंक्तियाँ फिर अनायास उभरती है—

रो तू अक्षर-अक्षर में ही, रो तू गीतों के स्वर में ही,
शांत किसी दुखिया का मन हो जिनको सूनेपन में गाकर !

वस्तुतः निशा निमन्त्रण के गीत दर्द-भरे दुखी दिल के गीत हैं। अतः उन्हें दर्द-भरे दुखी दिलों की ही दरकार है। ये गीत दुखियों के शुभाशीष हैं। किन्तु निश्चय ही सुखियों के लिए निशा निमन्त्रण के गीत नहीं हैं।

और यह सत्य है कि अनुभूति, कल्पना और रागतत्व का सहज-शिल्प-सम्मत समन्वय जैसा निशा निमन्त्रण के गीतों में हुआ है वैसा अन्यत्र देखने को नहीं मिलता। यहाँ एक मर्मवेधी सत्य है, यथार्थ संगत कल्पना है, यथा—

अतुल प्यार का अतुल घृणा में मैंने परिवर्तन देखा है !

(गीत ६३)

और यह भी—

कहता एक बूँद आँसू झर पलक पांखुरी से पल्लव पर—
नहीं मेह के लहरे का ही, मेरा भी अस्तित्व यहां है।

(गीत ७८)

एकान्त संगीत : आकुल अन्तर

निशा निमन्त्रण के गीतों का मुखरित विषाद 'एकांत संगीत' और 'आकुल अन्तर' के गीतों में एकदम अन्तर्मुख हो गया है। जैसे वह किसी की साँसों में समा गया हो, मन में घुमड़ गया हो। जैसे जग, जीवन, समाज, नियति, प्रकृति, प्रेम ने व्यक्ति का कुछ मूल्यतम लूट कर उसे अपने संविधान से बहिष्कृत और निष्कासित कर दिया हो। उफ ! कितना अकेलापन, कितना अभिषाप और कितना पीड़न है—

कितना अकेला आज मैं !
संघर्ष से टूटा हुआ, दुर्भाग्य से लूटा हुआ,
परिवार से छूटा हुआ, कितना अकेला आज मैं !

(एकान्त संगीत, अन्तिम गीत)

× × ×

पंथी चलते-चलते थक कर, बैठ किसी पथ के पत्थर पर,
जब अपने ही थकित करों से अपना विथकित पाँव दबाता,
त्राहि, त्राहि कर उठता जीवन !

(५७वां गीत)

× × ×

मरना तो होगा ही मुझको जब मरना था तब मर न सका !
मैं जीवन में कुछ कर न सका !

(२१वां गीत)

पर यह अकेलापन, यह अभिषाप, यह क्रन्दन और यह पीड़न क्या किसी अकेले कंठ

की पुकार हो सकती है? भारत-विभाजन के समय अस्त-व्यस्त जैसे हर असहाय व्यक्ति इन पंक्तियों का साझीदार था। आज भी नयी पीढ़ी के सामने यह संकट और संत्रास मौजूद है। हर व्यक्ति कभी न कभी, कहीं न कहीं अकेलेपन की अनुभूति अभिषाप और आकुल अंतर के संताप से ग्रस्त होता है और उससे वह आज़ाद भी होना चाहता है। तब उसे भीषण आत्म-संघर्ष करना होता है। तब उसमें न जाने कितने संकल्प, साहस, और जय-पराजय के भावों-अभावों का द्वन्द चलता है। इन गीतों में कवि-व्यक्ति का मानसिक भावद्वन्द थोथे आवेशों से कम और अदम्य संकल्प तथा साहस के इरादों से अधिक परिचालित हुआ है। इसीलिए आत्म-केन्द्रित 'एकान्त-संगीत' आगे 'आकुल- अन्तर' में तिरोहित हो जाता है—

यदि न सके दे ऐसे गायन, बहले जिनको गा मानव-मन,
शब्द करे ऐसे उच्चारण,
जिनके अन्दर से इस जग के शापित मानव का स्वर बोले।
जब-जब मेरी जिव्हा डोले।

(गीत ६६, आकुल अंतर)

इस प्रकार 'एकाँत संगीत' के गीत अगर एक आत्मकेन्द्रित व्यक्ति के कठिन विषाद के तीव्र हाहाकार को ध्वनित-प्रतिध्वनित करते हैं तो 'आकुल अंतर' के गीत इस हाहाकार को हटाकर जगत-गति में अपने को लीन कर देने के लक्ष्य को इंगित करते हैं।

'एकांत संगीत' में जैसे एक बौराये, विक्षिप्त-से व्यक्ति का तीखा स्वर है। वहाँ अभाव-अवसाद का नाद तीव्र है। मानसिक तनावों एवं भावों की तीव्रता का चित्रण एकांत संगीत के गीतों में अद्भुत प्रतीत होता है। यथा—

जब जग पड़ी तृष्णा अमर दृग में फिरी विद्युत लहर
आतुर हुए ऐसे अधर—
पीलें अतुल मधु सिन्धु को तुमने कहा मदिरा खतम!
सोचा हुआ परिणाम क्या?

× × × (गीत ३१)

मेरे पूजन आराधन को मेरे सम्पूर्ण समर्पण को
जब मेरी कमजोरी कहकर मेरा पूजित पाषाण हँसा
तब रोक न पाया मैं आंसू!

× × × (गीत ४६)

तुमने अपने कर फैलाए, लेकिन देर बड़ी कर आए,
कंचन तो लुट चुका पथिक, अब लूटो राख लुटाता हूँ मैं!
अग्नि देश से आता हूँ मैं! (गीत ७६)

'एकांत संगीत' के गीतों में कवि के यौवन की असफलता, प्रणयासक्ति एवं अभाव-ग्रस्त जीवन की निराशा के प्रति आक्रोश का स्वर भी उभरता है—

झुकी हुई अभिमानी गर्दन, बंधे हाथ, नत निष्प्रभ लोचन,

यह मनुष्य का चित्र नहीं है, पशु का है, रे कायर !
प्रार्थना मत कर, मत कर, मत कर ! (गीत ६२)

संक्षेप में, एकांत संगीत के १०० गीतों में मध्यवर्गी व्यक्ति के जीवन-संघर्ष की कठिन और करुण-गाथा है। उसका स्थूल पक्ष निराशापरक है। पर उसका सूक्ष्म या मूल स्वर संघर्षपरक ही है। एकांत संगीत को पढ़ते हुए व्यक्ति को अभावों और अभिषापों में जीने का जितना साहस व संकल्प मिलता है उसे व्यवहारतः उपार्जित करने के लिये जीवन में बहुत कुछ खपना और खोना पड़ता है। व्यक्ति की वाणी में ऐसा ओज जीवन का गम्भीर मूल्य अदा करने पर ही आना सम्भव हो सकता है—

गरल पान करके तू बैठा, फेर पुतलियां, कर-पग ऐंठा
यह कोई कर सकता, मुर्दे, तुझको अब उठ गान होगा,
विष का स्वाद बताना होगा !

(गीत ८७वां)

× × ×

गज भर की छाती वाला ही विष को अपनाता है।
कोई बिरला विष खाता है !

(८८वां गीत)

× × ×

मिला नहीं जो स्वेद बहाकर, निज लोहू से भीग नहाकर,
वर्जित उसको, जिसे ध्यान है जग में कहलाए नर !

(६२वां गीत)

असल में 'एकांत संगीत' अकेले व्यक्ति के उस अकेलेपन का संगीत है जो नितांत उसका अपना है। जिसे वह किसी को समर्पित न कर अपने को ही कर सकता है। इस संगीत के साथ वह अपना आत्मदान करता है। वह कोई उद्बोधन अथवा किसी कला-सिद्धान्त का प्रतिपादन न होकर 'स्वांतःसुखाय' का एक सहज, स्वरमय-सृजन है। इस सृजन के व्याज से कवि ने उस मानस को प्रतिबिम्बित किया है जो सामाजिक दृष्टि में भले ही उपेक्षित हो पर प्रत्येक व्यक्ति कभी न कभी कुछ क्षणों के लिये उसका अनुभव अवश्य करता है। 'एकांत संगीत' मनुष्य के इसी अंतर-पक्ष की प्रबल अभिव्यक्ति करता है—

ममता यदि मन से मिट पाती, देवों की गद्दी हिल जाती !
प्यार, हाय, मानव-जीवन की सब से भारी दुर्बलता है !

या (८६वां गीत)

जीवन की नौका का प्रिय धन, लुटा हुआ मणि-मुक्ता-कंचन,
तो न मिलेगा, किसी वस्तु से इन खाली जगहों को भर दो !
मेरे उर पर पत्थर धर दो ! (गीत २)

मानव की इस दयनीय नियति के साथ ही उसके विराट रूप की सजीव तथा

सबल अभिव्यक्ति यों हुई है—

यह महान दृष्य है—चल रहा मनुष्य है,
अश्रु-स्वेद-रक्त से लथपथ, लथपथ, लथपथ !
अग्निपथ ! अग्निपथ ! अग्निपथ !

(७३वां गीत)

'आकुल अंतर' वैयक्तिक विषाद से उबर कर और उभरकर गीत गाने का प्रबल प्रयास है। जग, जीवन, काल, नियति, प्रेम, प्रकृति, प्रणय व संघर्ष के प्रति कवि अब निशा निमन्त्रण और एकांत संगीत की भाँति भावुकता से और आत्म केन्द्रितता से ग्रस्त न होकर जीवन के प्रति अधिक शंकालु है और उसकी नेगटिव स्थित के प्रति जागरुक है।

पूर्व गीत-संग्रहों के गीतों जैसी आत्मतल्लीनता एवं अभिव्यक्ति की तीव्रता तथा सुन्दरता 'आकुल अंतर' के गीतों में नहीं रही है। किन्तु जग-जीवन के यथार्थ और सत्य को यहां मार्मिक स्वर मिले हैं—

मन में था जीवन में आते, वे जो दुर्बलता दुलराते,
मिले मुझे दुर्बलताओं से लाभ उठाने वाले,
कैसे आंसू नयन संभाले।

(गीत ४)

× × ×

जीवन बीत गया है मेरा जीने की तैयारी में

(गीत १४)

× × ×

'तू एकाकी तो गुनहगार
अपने प्रति होकर दयावान तू करता अपना अश्रु पान
जब खड़ा मांगता दग्ध विश्व तेरे नयनों की सजल धार !
अपने से बाहर निकल देख है खड़ा विश्व बाहें पसार !

(गीत ७०)

संक्षेप में 'आकुल अंतर' का स्वर वैयक्तिक विषाद से मुक्ति पाने का स्वर है। यह स्वर आगे सतरंगिनी, मिलन-यामिनी, धार के इधर-उधर तथा प्रणय-पत्रिका के गीतों में नये अंदाज में गुंजित हुआ है।

× × ×

'निशा-निमंत्रण,' 'एकान्त संगीत' और 'आकुल-अन्तर' इन तीन कृतियों में मूलतः वैयक्तिक विषाद की रागात्मक अभिव्यंजना प्रधान है। पर यह विषाद किसके प्रति ? स्पष्ट है कि यहाँ कवि, बच्चन का नियति प्रताड़ित प्रेम और जग-जीवन का संघर्षजन्य स्थूल निराशाभाव मुखरित हुआ है। शुद्ध समाजवादी आलोचक कहेगा कि कवि बच्चन के प्रेम और जीवन-संघर्ष का राग भला समाज को अलापने की क्या पड़ी है ? एकांगी दृष्टि से मुक्त होकर यदि हम समाज और व्यक्ति को समझें तो साफ है कि व्यक्ति का निश्छल राग भी समाज के अन्तर में व्याप्त होगा। व्यक्ति

और समाज का संघर्ष भौतिक स्वार्थ के धरातल पर कितना भी भयंकर उठ सकता है लेकिन यह संघर्ष प्रकृतिगत रागों के प्रति कभी हो ही नहीं सकता। प्रेम और जीवन के संघर्ष के स्थूल प्रभाव से किन व्यक्तियों का समाज अलग है ? प्रत्येक समाज में प्रेम और जीवन-संघर्ष करने वाले लोगों की संख्या क्या कम होती है ? अतः मैं यहाँ प्रेम और जीवन-संघर्ष को संकुचित अर्थ में प्रयुक्त नहीं कर रहा हूँ। प्रेम तो पशु से लेकर परमात्मा तक से हो सकता है। और जीवन-संघर्ष माँ के गर्भ से लेकर जलती चिता तक हो सकता है। प्रेम न सिर्फ लैला-मजनू तक सीमित है और न जीवन-संघर्ष सिर्फ रोटी-कपड़ा और मकान तक सीमित है। तात्पर्य यह है कि व्यक्ति के प्रेम और जीवन-संघर्ष का स्वर, व्यापक प्रभाव की दृष्टि से, हेय कभी नहीं हो सकता। बच्चन की आलोच्य तीनों कृतियों में प्रेम और जीवन-संघर्ष से प्रादुर्भूत अस्थिर विषाद है। इन कृतियों को पढ़कर लगता है कि पहले (मधुशाला-मधुबाला और मधुकलश में) कवि पर एक उन्माद छाया हुआ था। तब उसने वहशत और गफलत में पड़कर एक सुनहरी सृष्टि का रंगीन सपना आँखों में पाल लिया था—पलकें मुँदी थीं। वही जैसे सत्य था। लेकिन एक दिन अचानक उसे पता चला कि—

और मैं था सत्य की ले लाश बैठा।
और सपना उड़ गया था !

(आरती और अंगारे)

सपना टूटा, सुनहरी सृष्टि मिट गई। लाश को कंधों पर लादे हुए जड़ सत्य सामने खड़ा हो गया। जैसे आधी जिन्दगी पर लकवा मार गया। इसी का रागमय अभिव्यंजन निशा-निमंत्रण, एकाँत-संगीत और आकुल-अंतर की कविताओं में हुआ है। वहां नैराश्य एवं अस्तित्व की सीधी टक्कर है—

ध्येय न हो पर है मग आगे,
बस धरता चल तू पग आगे,
बैठ न चलने वालों के दल में तू आज तमाशा बनकर !
तू क्यों बैठ गया है पथ पर !

(निशा निमंत्रण ९४वाँ गीत)

प्रश्न है कि बच्चन के इस काव्य में क्या कुछ वाणी-विशिष्ट हैं ? मैं कहूँगा कि कवि के इस गीत-काव्य का मुखरण वायवी या 'एकेडेमिक' टाइप का नहीं है। यह मुखरण जीवन का भुक्त तथा भुक्तनीय भाव-स्वरालाप है। किन्तु वह व्यक्ति-घटना-विहीन है। पर सबके लिए सहज, संमोहक और मर्मस्पर्शी ! 'निशा निमंत्रण' के अंतिम गीत का अंतिम अंश पढ़िए—

लें तृषित जग होठ तेरे,
लोचनों का नीर मेरे,
मिल न पाया प्यार जिनको आज उनको प्यार मेरा !

क्या यह प्यार केवल व्यक्ति बच्चन का ही है ? मुझे या आपको या सारे समाज को इसकी दरकार नहीं है ?

× × ×

यह सत्य है कि बच्चन के प्रणयावसाद पूर्ण गीतों में प्रेम का उदात्तीकरण वैसा नहीं हुआ है जैसा कि छायावादी-रहस्यवादी काव्य में हुआ सा-लगता है। विशेष ध्यान में रखने वाली बात यह है कि प्रणयावसाद विशेषत: कवि के निशा-निमंत्रण के सौ गीतों में से पहले ६१ गीतों में हुआ है। ६१वें गीत का अंतिम पद है—

समझा तूने प्यार अमर है,
तूने पाया वह नश्वर है,
छोटे-से जीवन से की है तूने बड़ी-बड़ी प्रत्याशा !

गीत ६२ से कवि की चिन्ता है—'सुधियों के बन्धन से कैसे अपने को आज़ाद करूं मैं ?' और गीत ६३ से कवि एक बार फिर वैयक्तिक विषाद के प्रति व्यक्ति-विद्रोह का बल अर्जित करता है; लघु मानव नियति के विरुद्ध अपने अस्तित्व का प्रबल उद्घोष करता है—जैसे जीवन के लिए जीने की निराशा से वह दाँत किटकिटाकर जूझता है और अपने को 'वर्क अप' करता है—

उठ पड़ा तूफान देखो !
मैं नहीं हैरान देखो,
एक झंझावात भीषण मैं हृदय में ले चुका हूँ !
मूल्य अब मैं दे चुका हूँ !,

यह मूल्य कौन सा ?—वही, जो कवि ने जीवन में नियति की निर्ममता के थपेड़े खाते-खाते दिया। और यहीं से कवि के जीवन का जटिल आख्यान-गान एकांत संगीत में गूँजा तो 'आकुल-अन्तर' में उसने संघर्ष के शिखर पर चढ़कर तीव्रता पूर्ण प्रबल-प्रचंड, जल-ज्वालामय गान किया।

जबकि ध्येय बन चुका,
जबकि उठ चरण चुका,
स्वर्ग भी समीप देख—
मत ठहर, मत ठहर, मत ठहर

(आकुल अंतर, गीत ६५)

जग-जीवन उसके लिए जैसे मरण मुखरित प्रश्न बनकर खड़ा हो गया और वह जीवन की व्यर्थता में से रचनात्मक अर्थ और संबल खोजता जाता है। वस्तुत: इन रचनाओं में व्यक्ति की व्यर्थता में कवि जैसे जीवन के अस्तित्व के कणों की शोध-खोज करने के लिए खून-पसीना बहा रहा है।

जीवन बीत गया है मेरा जीने की तैयारी में

(आकुल अंतर, गीत १४)

वह जीवन के विष का स्वाद बताकर जीवन के अस्तित्व का ही राग अलाप

रहा है। इस प्रकार के अभिव्यंजन के पीछे उस काल के आत्म-प्रताड़ित व्यक्ति की मूल मनः स्थिति का आग्रह विशेष था। मेरा अनुमान है कि इस तथ्य को गम्भीर रूप में देखने-समझने पर तत्कालीन काव्य की निराशा के पीछे लगे निर्मम जग-जड़-सत्य का सहज बोध हो सकता है।

मेरी दृष्टि में तत्कालीन असन्तुष्ट व्यक्ति के मन-जीवन की अस्तित्व-सापेक्ष अभिव्यंजना जितनी प्रबल बच्चन के आलोच्य काव्य में हुई है वैसी अन्यत्र नहीं हुई। जीवन के प्रणय-संघर्ष और विषाद से टूटे हुए व्यक्ति को इन गीतों को पढ़कर हर हाल में संघर्ष करते हुए जीवन जीने का सन्देश मिलता है। जैसे—

चिता निकट भी पहुँच सकूँ मैं अपने पैरों-पैरों चलकर

× × ×

चार क़दम उठकर मरने पर मेरी लाश चलेगी।

और अंत में मैं इस स्थापना का खण्डन करता हूँ कि बच्चन निराशावादी कवि रहे हैं। मेरा मत है कि कवि बच्चन व्यक्ति के विषाद में से उसके अस्तित्व की ऊँची आवाज़ उठाते हैं। यह आवाज़ कुछ ही गीतों में ध्वनित होकर नियति-शासित और जगत्रासित इन्सान को स्वाभिमान से जीने की उग्र प्रेरणा देती है।

सतरंगिनी

…और अन्ततः जीवन पर छाए अवसाद-विषाद पर कवि ने (और मूलतः व्यक्ति ने) बहुत कुछ टूटकर विजय पा ली। यही विजय जैसे स्वर-लहरी बनकर सतरंगिनी के गीतों द्वारा बरबस फूट पड़ी है—

नाश के दुख से कभी दबता नहीं निर्माण का सुख,
प्रलय की निस्तब्धता से सृष्टि का नव गान फिर-फिर,
नीड़ का निर्माण फिर-फिर स्नेह का आह्वान फिर-फिर,

(निर्माण)

× × ×

प्रभंजन मेघ दामिनि ने न क्या तोड़ा, न क्या फोड़ा,
धरा के और नभ के बीच कुछ साबित नहीं छोड़ा,
मगर विश्वास को अपने बचाए कौन बैठा है,
अँधेरी रात में दीपक जलाए कौन बैठा है ?

(जुगनू)

× × ×

मृत्यु-पथ पर भी बढ़ूँगा मोद से यह गुनगुनाता
अंत यौवन, अंत जीवन का मरण क्या
दो नयन मेरी प्रतीक्षा में खड़े हैं।

इस स्वर-लहरी की प्रेरणा का उत्स क्या है ? वह है व्यतीत के खंडहर पर

नव-जीवन और नव-यौवन की नयी आशा और नए विश्वास का उत्स ?

× × ×

समय गतिवान है ! यह संसार एक कठिन सफ़र है। हरेक यहाँ एक मुसाफ़िर है। और मुसाफ़िर की महत्ता इसी में है कि वह गतिवान है, कि वह राह के संकटों को झेल सकता है, कि वह ध्वंस के ऊपर फिर सृजन कर सकता है। नियति द्वारा उजाड़े हुए को फिर-फिर बसाना और नाश पर निर्माण की पताका फिर-फिर फहरना—जैसे यही इस पाँच फुट और कुछ इंचों वाले आदमी की अद्‌भुत ज़िन्दादिली है ! शायद यही उसका अमर चरित्र है—

'ऊँचा तूने हाथ उठाया, लेकिन अपना लक्ष्य न पाया,
यह तेरा उपहास नहीं था—
क्योंकि तुझे थी केवल अपने मनुजोचित क़द की पहचान।

और यों मनुष्य अपनी सीमाओं में भी असीम है, अद्‌भुत है। इसे आगे कवि ने मिलन यामिनी में कह दिया है—

'वह कभी न स्वर्ग में समा सका, कि वह न पांव नर्क में जमा सका ?
कि वह न भूमि से हृदय रमा सका, यही मनुष्य का अमर चरित्र है !
अपूर्ण को न पूर्ण कर सका कभी, अभाव के न घाव भर सका कभी,
हजार हार से न डर सका कभी, मनुष्य की मनुष्यता विचित्र है !

सारतः बच्चन के विशिष्ट गीतों का स्वर व्यक्ति-जीवन के साहस तथा संकल्प के वक्ष से फूटता है—जैसे पहाड़ का सोना फोड़कर 'झर-झर-झर' निर्झर फूटता है। कुल मिलाकर सतरंगिनी के गीतों का सृजन व्यक्ति की नव सृजनात्मक आशा से संप्रेरित शक्ति के गर्भ से होता है। इस सृजन में युग-सामयिक संघर्ष के ऊपर एक संकल्प शील व साहसी पुरुष का मनोबल मुखर होता है—

प्रलय का सब समा बाँधे प्रलय की रात है छाई,
विनाशक शक्तियों की इस तिमिर के बीच बन आई,
मगर निर्माण में आशा दृढ़ाए कौन बैठा है !
अँधेरी रात में दीपक जलाए कौन बैठा है,

× × ×

जो बसे हैं वे उजड़ते हैं प्रकृति के [illegible] नियम से
पर किसी उजड़े हुए को फिर बसाना [illegible] मना है ?
है अँधेरी रात पर दीवा जलाना कब मना है ?

इस प्रकार विषम परिवेशों और संदर्भों के विरुद्ध चैतन्य के कठिन संघर्ष और सृजन की लगन का भाव-प्रकाशन सतरंगिनी के गीतों में सूक्ष्मतः हुआ है। यहाँ एक बड़ी जोखिम उठा कर कवि ने जीवट के गीत गाए हैं। वैसे तो छायावाद के उत्तरार्ध के सभी

समर्थ गीताकार कवियों (अंचल, नरेन्द्र शर्मा और नेपाली) ने युग-जीवन की जटिलताओं से जनित गम्भीर मानसिक जोखिम उठाकर अपने लोकप्रिय गीतों की रचना की है। किंतु इनमें बच्चन के गीत, भाव तथा शिल्प की दृष्टि से प्रतिनिधित्व करते हैं। ऐसा ही महत्वपूर्ण गीतों का एक गुलदस्ता सतरंगिनी गीत-संग्रह है। पहले रंग की पाँचवीं रचना 'जुगनू' दूसरे की प्रायः सभी रचनाएँ (मुख्यतः अन्धेरे का दीपक, यात्रा और यात्री, पथ की पहचान) और तीसरे रंग की कुछ कविताएँ और कुछ पदांश जड़ता के विरुद्ध जीव की अमर शक्ति तथा विजय-यात्रा के उद्गीत हैं। निश्चय ही इन गीतों को पढ़कर आदमी जीने का नया जीवट, जोश, नयी जोत और नयी प्रेरणा पाता है। तभी तो आगे कवि ने मिलन-यामिनी के गीतों में जीवन के प्रति प्रतिबद्धता का संकेत दिया है—

जीवन की यात्रा के सबसे सच्चे साथी गीत रहे हैं।

वस्तुतः सहज भाव-शिल्प का जितना सुन्दर समन्वय सतरंगिनी के गीतों में हुआ है वह खड़ी बोली गीतकाव्य के लिये महत्वपूर्ण है। 'मयूरी' गीत इसका उदाहरण है। इस मधुर रचना का मैंने बंगला भाषा में गीतांतर भी रेडियो पर सुना है। इस मधुर गीत में 'मयूरी' के नाचने पर एक अड़ियल आलोचक की आपत्ति है कि 'मयूरी' भला कब नाचती है ? मयूर नाचता है। इस विषय पर मैंने पूर्वी इलाके की एक अनुभवी वृद्ध ग्रामीण महिला से पूछताछ की तो उसने बताया कि "मुरैला" यानी मोरनी भी नाचती है। 'पुछाण' शायद मोर को कहते हैं। पर मैं इस पर विश्वासपूर्वक क्या कह सकता हूँ ? स्वयं कविवर बच्चन ने सतरंगिनी के चौथे संस्करण (जुलाई १९६७) में इस विषय पर सब कुछ स्पस्ट कर दिया है। पर मेरे विचार से ऐसी ललित रचनाओं के लिये तर्क-कुतर्क की कैंची चलाना अन्याय है। निश्चय ही इस गीत में 'मयूरी' एक प्रतीकात्मक प्रयोग है जो मांसल प्रणय-भावना को ध्वनित कर रहा है। फिर, यदि मयूर अपने मनोल्लास को पूंछ फैलाकर नाचते हुए व्यक्त कर सकता है तो मोरनी अपने उल्लास की अनुभूति में मन-ही-मन लीन होकर क्यों नहीं नाच सकती ? यह नहीं भूलना चाहिए कि 'मयूर' नहीं वस्तुतः उसका भी 'मन-मयूर' ही नाचा करता है। फिर 'मयूरी' के 'मगन-मन' नाचने पर यह आपत्ति किसलिये उठाई गई ? कवि ने 'नाच' क्रियापद को वाह्य नर्त्तन-प्रदर्शन का प्रतीकवाची न बनाकर उसे मनःलीला-नृत्य का ही व्यंजक बनाया है—'मयूरी नाच', मगन-मन नाच, मयूरी का जो शाब्दिक अर्थ (अभिधार्थ) लगाते हैं वे सम्भवतः कुतर्क करने के लिये ही वैसा करते हैं। इस दृष्टि से देखा जाय तो विद्यापति और जायसी जैसे महान कवियों ने भी ऐसे अनेक प्रयोग किये हैं जिनका शाब्दिक अर्थ संगत नहीं लगता किन्तु इन प्रयोगों में शब्दार्थ की महत्ता नहीं होती। ध्वन्यार्थ का सौंदर्य मात्र शास्त्रीय सिद्धान्त विवेचन तक ही सीमित नहीं है। भावनाओं के संदर्भ में उसका सौन्दर्य मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी होता है। कवि के शब्द प्रतीक बनकर किसी भाव को साकार करते हैं। भावमयता, रागात्मिकता, तीव्रता और लय-सम्बद्धता की वहाँ महत्ता होती है। यानी भावाभिव्यक्ति की एकता और

अखंडता की महत्ता अनेक प्रसिद्ध लोक गीतों में कहीं शब्दार्थ की संगति कुछ नहीं बैठती पर उन्हें गाकर मन विभोर होता है, कंठ लयमान हो जाता है। समधुर गीति रचना की यही कसौटी है कि वह रसिक को कुछ क्षण तक भावविभोर और लयमान बनाए रखे। इस कसौटी पर "मयूरी" रचना खरी उतरती है। उस दिन घर पर नरेन्द्र शर्मा ने अपना प्रसिद्ध गीत "नाच रे मयूरा" सुनाया। बाद में वे बोले 'बच्चन ने 'मयूरी' रचना जब लिख ली तब मैंने यह गीत लिखा। निसन्देह शर्मा जी के इस गीत में क्लासिकल तत्व का समाहार है और लय-लालित्य का सहज समन्वय है। किन्तु कविता के शब्द का रूढ़ अर्थ करने वाला आलोचक तो यहाँ भी यह आपत्ति करेगा कि 'मयूरा' का कोष सम्मत अर्थ तो है 'काली तुलसी'। खैर, कहने का तात्पर्य यह है कि कवि अपनी विशिष्ट रचनाओं में शब्दों के प्रयोग की कला पर हावी होकर उसके द्वारा अपने मन के भावों व बिम्बों की गोचन सृष्टि रचता है। 'मयूरी' हो या 'मयूरा' उनके नाच के पीछे कवि की रचनात्मक भावना ही प्रधान है और उसे हृदयंगम करके ही हम विशष्ट गीति-रचनाओं का रसास्वादन कर सकते हैं।

× × ×

काव्य में लघु-काल्पनिक कथा कहने का वैभव यदि देखना हो तो बच्चन की 'कोयल' कविता पठनीय है। इस कविता में बाल-सुलभ भावुकता प्रधान है। मैंने उसके जोड़ की इतनी सहज व सरल काव्य-कल्पना-कौशलपूर्ण कथात्मक कविता केवल सुभद्रा कुमारी चौहान की ही पढ़ी हैं।

'नागिन' एक प्रतीकात्मक कविता है। कबीर की 'माया महा ठगिनि' का जितने ध्वन्यात्मक ढंग से यहाँ अभिव्यंजन है उससे कवि की ऊँची शब्दशिल्प-साधना का भी परिचय मिल जाता है। विश्वबिमोहक 'माया' का इस लम्बी कविता में प्रभावपूर्ण अभिव्यंजन हुआ है। जहाँ तक मेरा ज्ञान है खड़ी बोली काव्य में 'माया' के विषय में इतनी लम्बी और कवित्व पूर्ण अभिव्यंजना किसी अन्य कवि ने नहीं की है। वैसे साधारणतः यह शृंगार-प्रधान रचना ही प्रतीत होती है। शायद इसके कवि का लक्ष्य भी यही रहा है।

'जो बीत गई सो बात गई' और 'लौटा लाओ' शीर्षक रचनाएँ अतीत के विषाद से उभर कर आने वाले व्यक्ति के प्रयास की आशावादी सरगम से युक्त हैं। इन्हे गा कर एक दिन व्यक्ति अपने आप से ही कह देता है—'अजेय तू अभी बना, पहाड़ टूट कर गिरा, प्रलय पयोद भी घिरा, मनुष्य है, कि देव है, कि मेरुदंड है तना!' इन रचनाओं के पदों की अंतिम पंक्तियों में जीवन का अजीव जादू है, साहस का अपूर्व संदेश है।

छठे रंग और सातवें रंग की पहली चार रचनाओं में कवि ने छोटे-छोटे छंदों का प्रयोग किया है। उनका भाव-बोध बहुत स्वस्थ्य और अभिव्यंजना बहुत सबल है। इन रचनाओं का महत्व छोटे-छोटे छंदों में लिखी गई खड़ी बोली की थोड़ी सी कविताओं में सर्वाधिक है। ये दो-दो, तीन-तीन, चार-चार शब्दों वाली रचनाएँ गेय भी हैं—

'नवल हास,
नवल बास,
जीवन की नवल साँस !
नवल अंग
नवल रंग
जीवन का नव प्रसंग।
नवल साज
नवल सेज
जीवन में नवल तेज
नवल नींद
नवल प्रात
जीवन का नव प्रभात,
कमल नवल किरण-स्नात !'

'सतरंगिनी' के गीतों को दुख के क्षणों में गाकर भी रस मिलता है और सुख के क्षणों में गाकर भी। संक्षेप में, सतरंगिनी जीवन के दारुण दुख के ऊपर सुख की मधुर अभिव्यक्ति है—

दुख से जीवन बीता फिर भी
शेष अभी कुछ रहता
जीवन की अंतिम घड़ियों में
भी तुमसे यह कहता,
सुख की एक सांस पर होता
है अमरत्व निछवर... (तुम गा दो)

मिलन यामिनी

निशा-निमन्त्रण के गीतों की विशिष्टता अगर विरहानुभूति और मानसिक गहन विषाद के मार्मिक चित्रणों के कारण है तो मिलन यामिनी के गीतों की विशिष्टता प्रणयोल्लास से रंजित कलात्मक वातावरण के चित्रण के कारण है। यद्यपि कुछ कविताओं में गेयत्व उखड़ा-सा लगता है और पाठ्य प्रधान हैं । जैसा कि नाम से प्रतीत होता है यह 'मिलन यामिनी' की सृष्टि है। अतः यहां संयोग-शृंगार की अभिव्यक्ति करना कवि को अभीष्ट है, निशा-निमन्त्रण और मिलन-यामिनी इन दो रातों में प्रणय के अनेक भाव-द्वंदों से पूर्ण दुःस्वप्न और सुःस्वप्न गीतों में रूपायित हुए हैं। दुःस्वप्नों की रात के गीत निशा-निमन्त्रण के हैं और सुस्वप्नों की रात के गीत मिलन-यामिनी के हैं। पर इन दोनों के बीच सतरंगिनी के गीत जीवन में प्रणय, साहस, संघर्ष, आशा और सृजन के नये स्वरों-दृष्यों से पूरित हैं। आगे प्रणय पत्रिका के गीतों को पढ़ते हुए ऐसा लगता है कि बच्चन का गीतकार अनुभूति की तीव्रता के साथ शिल्प के संतुलन पर भी ध्यान

देता है। पर संयोग शृंगार की जो सरस पदावली और शृंगारी भावना को उदीप्त करने वाले प्रकृति के वातावरण की रंगीन सृष्टि मिलन-यामिनी के गीतों को पढ़ते हुए अनुभव होती है, वह तो अन्यत्र दुर्लभ है। इसके साथ ही मिलन यामिनी के कई गीतों और गीतांशों में ऐसी अभिव्यंजना भी है जिसके स्पर्श से मनुष्य को जीने के नवीन स्थल उद्भासित होते हैं। यहाँ वह अपनी उपलब्धियों के नये क्षितिजों को देखता है। वह आस्था, संकल्प एवं विश्वास के साथ जीवन को स्वीकारता है—

व्यर्थ कोई भाग जीवन का नहीं है,
व्यर्थ कोई राग जीवन का नहीं है।

(गीत १२)

× × ×

मैं जलन का भाग अपने भोग आया,
तब मिलन का यह मधुर संयोग आया,
दे चुका हूँ इन पलों का मोल पहले।

(गीत १८)

× × ×

जो असम्भव है उसी पर आँख मेरी,
चाहती होना अमर मृत राख मेरी।

(गीत २)

'मिलन यामिनी' में मानवीय संवेदना, सहानुभूति एवं सहअनुभूति की वाणी जहाँ भी और जितनी भी व्यक्त हुई है वह अत्यंत सहज और व्यापक है—

अश्रु दुख के जबकि अपना हाथ भीगे,
अश्रु सुख के जबकि कोई साथ भीगे,

(गीत २६, म० भा)

× × ×

सुख है तो औरों को छूकर
अपने से सुखमय कर देगा...
जो औरों का आनन्द बना
वह दुख मुझ पर फिर-फिर आए
रस में भीगे दुख के ऊपर
मैं सुख का स्वर्ग लुटाता हूँ

(गीत १२, म० भा)

मिलन-यामिनी का मूल स्वर जीवन का स्वर है। जीवन वह जो जीने के लिये हो और जो हर मूल्य पर व्यक्ति को प्यारा हो, जो आशा, विश्वास और संघर्ष के बल पर मृत्यु पर भी विजय पा सकता हो। यहाँ इस प्रकार की उद्दाम भावनाओं का

प्रकाशन बड़ा प्रभावपूर्ण है और इससे मिलन-यामिनी का पाठक कुछ देर के लिये अपने जीवन की शक्तियों को टटोलने लगता है। यहां कवि ने भाषा एवं छंद का प्रयोग भी इतना शक्तिशाली किया है कि वह मनःस्थितियों एवं भावनाओं का वेगवान वाहन-सा लगता है। देखिये—

मैं रखता हूँ हर पांव सुदृढ़ विश्वास लिए,
ऊबड़-खाबड़ तम की ठोकर खाते-खाते
इनसे कोई रक्ताभ किरण फूटेगी ही!

(गीत २, म० भा)

यहां 'ऊबड़ खाबड़ तम की ठोकर खाते-खाते' पदाँश के तुरंत बाद 'रक्ताभ किरण फूटेगी ही' उक्ति जैसे अस्त व्यस्त राही को उत्साह की नयी लौ-लपट से चमत्कृत कर देती है।

इसी प्रकार:

जीवन की आपाधापी में कब वक्त मिला,
कुछ देर कहीं पर बैठ कभी यह सोच सकूँ,
जो किया, कहा, माना उसमें क्या बुरा-भला।

(गीत ३३, म० भा०)

इन पंक्तियों को पढ़ते समय वस्तुतः पाठक को साँस लेने की फुरसत नहीं मिलती। वह विवश होता है कि एक ही साँस में तीनों पंक्तियां पढ़ जाये नहीं तो गतिरोध में उसका अनर्थ ही हो जायगा, उसका दम ही टूट जायेगा।

यों मिलन-यामिनी के मध्य भाग के गीतों में भाव, भाषा और छंद की एक अनूठी गति है जो अन्यत्र खड़ी वोली के गीतकाव्य में देखने को नहीं मिलती। यहाँ जीवन का राही यथार्थ भावना के जैसे पीछे-पीछे चलता है—

पांव बढ़ते लक्ष्य उनके साथ बढ़ता,
और पल को भी नहीं यह क्रम ठहरता,
पांव मंजिल पर नहीं पड़ता किसी का।

(गीत ३२, म० भा०)

× × ×

मायूस नजर से कब किसने
दुनिया की सच्चाई देखी
आशा की पुलकित आँखों से
जग जीवन और जमाने का
दीदार नया हो सकता है।

(गीत १०, म० भा)

× × ×

हर दंत समय का जो लगता
मानो विष दंत नहीं होता
दुख मानव के मन के ऊपर
सब दिन बलवंत नहीं होता
आहें उठतीं, आंसू झरते
सपने पीले पड़ते लेकिन
जीवन में पतझर आने से
जीवन का अंत नहीं होता।

(गीत १०, म० भा)

× × ×

और यह भी कि—

जिंदा रहना क्या इतना ही
बस डोले सांसों का लंगर ?
है मेरा पूरा सफर नपा
मेरी छाती की धड़कन से—
मैं लेता हूँ हर सांस अमर विश्वास लिए
मैं पहुँच न पाऊँ जीते जी अपनी मंजिल
पर मरने पर मजिल मुझ तक पहुँचेगी ही।

(गीत २, म० भा०)

मिलन-यामिनी के कवि (व्यक्ति) को केवल विलासी या रसिक समझना भूल है। जीवन की गति जैसी है, वह उसके साथ है, डायनेमिक है, विकासवान है, सरस, सजग है—

मैं कितना ही भूलूं, भटकूं या भरमाऊँ
है एक कहीं मंजिल जो मुझे बुलाती है
कितने ही मेरे पांव पड़ें ऊँचे-नीचे,
प्रति पल वह मेरे पास चली ही आती है...
मैं जहां खड़ा था कल, उस थल पर आज नहीं,
कल इसी जगह फिर पाना मुझको मुश्किल है...
जग दे मुझ पर फैसला उसे जैसा भाए
लेकिन मैं तो बेरोक सफर में जीवन के
इस एक और पहलू से होकर निकल चला।

(गीत ३३, म० भा)

कलियां मधुवन में गंध-गमक मुसकाती हैं
मुझ पर जैसे जादू-सा छाया जाता है
मैं तो केवल इतना ही सिखला सकता हूँ

अपने मन को किसभाँति लुटाया जाता है
लिखने दो अपनी दुर्बलता का गीत मुझे
मैं जग के तर्ज तमल से हूँ अनभिज्ञ नहीं
दुनिया अक्सर मेरे कानों में कहती है
इस कमज़ोरी को मूढ़, छिपाया जाता है
मैं किससे भेद छिपाऊँ, सब तो अपने हैं
अपनी बीती में जग बीती में पाता हूँ

(गीत ३२ : म० भा)

× × ×

क्या बाहर की ठेला-पेली ही कुछ कम थी
जो भीतर भी भावों का ऊहा-पोह मचा
जो किया, उसी को करने की मजबूरी थी
जो कहा, वही मन के अन्दर से उबल चला।

(गीत ३३ : म० भा)

फिर कहूं कि मिलन यामिनी का मूल-स्वर जीवन का स्वर है। देखिये—

फूलों से, चाहे आँसू से
मैंने अपनी माला पोही,
किंतु उसे अर्पित करने को
बाट सदा जीवन की जोही
गई मुझे ले मृत्यु भुलावा
दे अपनी दुर्गम घाटी में
किंतु वहां पर भूल-भटक कर
खोजा मैंने जीवन को ही
जीने की उत्कट इच्छा में
था मैंने आ मौत पुकारा
वर्ना मुझको मिल सकता था
मरने का सौ बार बहाना
प्यार, जवानी, जीवन इनका
जादू मैंने सब दिन माना।

(गीत ३ : म० भा)

समस्त जीवों में जीवन के मूल्य को समझने की जिज्ञासा मात्र मनुष्य में ही होती है। इस जिज्ञासा ने उसके चरित्र को बड़ा जटिल बना दिया है। अतः उसकी जिजीविषा विचित्र होकर भी महान है। मिलन यामिनी की कुछ रचनाओं में (कुछ अंशों में भी) जिज्ञासु मनुष्य की महनीयता की व्यंजना की गई है। देखिये—

कि वह कभी न स्वर्ग में समा सका
कि वह न पांव नर्क में जमा सका
कि वह न भूमि से हृदय रमा सका
यही मनुष्य का अमर चरित्र है...
अपूर्ण को न पूर्ण कर सका कभी
अभाव के न घाव भर सका कभी
हजार हार से न डर सका कभी
मनुष्य की मनुष्यता विचित्र है।

(गीत ३० उ० भा)

× × ×

विराग मग्न हो कि राग रत रहे, विलीन कल्पना कि सत्य में दहे,
धुरीण पुण्य का कि पाप में बहे, मुझे मनुष्य सब जगह महान है।

(गीत ३१ : उ० भा)

निश्चय ही इस कृति के गीतों में मांसलता है, ऐन्द्रिक वासना है। यहाँ नारी केवल पुरुष की प्रेयसिव, भोग्या है। उसके साथ केलि-क्रीड़ा करने में ही कवि रस ले रहा है, रस दे रहा है—

हैं अधर में रस मुझे मदहोश कर दो
किंतु मेरे प्राण में संतोष भर दो।

(गीत २८ : म० भा०)

लेकिन इस उद्दाम माँसल श्रृंगार-वर्णन की विशेषता यह है कि वह रीतिकालीन निम्नकोटि का जैसा श्रृंगार नहीं है। न वहां घिसे-पिटे उपमान हैं, न नख-शिख के निर्जीव वर्णन है। विद्यापति से लेकर बिहारी और फिर छायावादी कवियों तक जो भी संयोग-श्रृंगार सम्बन्धी रचनायें लिखी गईं, अनुभूति और शिल्प की संतुलित दृष्टि से देखा जाय तो इनमें कहीं तो अति कलात्मकता है तो कहीं ऊहात्मकता तो कहीं अनुभूति की अस्पष्टता है। पर मिलन यामिनी के माँसल गीतों की मादक, रंग-बिरंगी सृष्टि में मन बरबस विरमता है। कहीं भ्रमता भी है; पर रात तो रस की बात में और बरसात में ही बीतती है। कहीं कुछ बीती मधुर बातों और रातों की यादें भी अपनी स्फुट ध्वनियां जगा देती है। मिलन यामिनी की मस्ती को मार्मिक तथा मधुर बनाने में इन ध्वनियों का भी अपना महत्व है। मिलन यामिनी एक ऐसी गीत-सृष्टि है जहाँ वियोग-विषाद के खंडित तारों को जोड़कर कवि ने संयोग के सितार के तार झंकृत किये हैं। आगे प्रणय पत्रिका में तभी तो वह यह कहने का अधिकारी बना कि—

सो न सकूँगा और न तुझको सोने दूंगा हे मन बीने।

कुल मिलाकर मिलन-यामिनी के गीतों में मिलन का मादक राग ही प्रधान है। वस्तुतः वहां सृजन का कोई उदात्त-पक्ष उद्घाटित नहीं होता। किन्तु निश्चय ही मिलन यामिनी के गीतों में यौवनोचित उद्दीप्त भावनाएं कलात्मक अभिव्यंजना की

रंगीन चूनर ओढ़े हुए हैं। वहाँ नग्नता नहीं है। अधिक से अधिक इतना ही तो कहा गया है—

कुछ अँधेरा कुछ उजाला क्या समा है,
कुछ करो इस चाँदनी में सब क्षमा है

× × ×

अधर पुटों में बंद अभी तक थी अधरों की वाणी
'हाँ-ना' में मुखरित हो पाई किसकी प्रणय कहानी
प्रिय, शेष बहुत है रात अभी मत जाओ।

इस दृष्टि से कहना होगा कि बच्चन के वस्तु-चित्रणों में मानवीय स्तर की संवेदना, मस्ती और तल्लीनता निहित रहती है। 'मिलन यामिनी' के गीतों में बच्चन को हम संवेदनशील कवि के साथ ही साथ प्रकृति की शोभा को मानवीय भाव-भूमि पर उतारने वाला कुशल चित्रकार भी पाते हैं। विशेषतः अन्त के तीस-बत्तीस गीत इसी भाव-भूमि पर लिखे गये हैं जो हिन्दी गीति-काव्य में नवीनतम शैली के कहे जा सकते हैं। इन गीतों में प्रकृति के सौंदर्य का मानवीय भावना में सुन्दर समाहार हुआ प्रतीत होता है। एक उदाहरण देखिए—

"समेट ली किरण कठिन दिनेश ने। समाँ बदल दिया तिमिर प्रवेश ने।
सिंगार कर लिया गगन प्रदेश ने। नटी निशीथ का पुलक उठा हिया।
समीर कह चला कि प्यार का प्रहर। मिली भुजा भुजा, मिले अधर अधर।
प्रणय प्रसून सेज पर गया बिखर। निशा सभीत ने कहा कि क्या किया?
अशंक शुक्र पूर्व में उवा हुआ। क्षितिज अरुण प्रकाश से छुआ हुआ।
समीर है कि सृष्टिकार की दुआ। निशा विनीत ने कहा कि 'शुक्रिया'!"

सन्ध्या के पश्चात् अभिसारमय वातावरण की कल्पना रंजित सृष्टि करते हुए यहाँ 'निशा विनीत' के 'शुक्रिया' कहने में कितना रस है, यह अनुभव की चीज है, बताने की नहीं।

आधुनिक गीति-कृतियों में मिलन-यामिनी के संयोग-शृंगार सम्बन्धी गीत जितने कलात्मक एवं रागात्मक ढंग से लिखे मिलते हैं वैसे अन्यन्त्र कम मिलते हैं। इसके लिए इस गीत को देखिए—

प्रिय, शेष बहुत है रात अभी मत जाओ।
अरमानों की एक निशा में होती हैं कै घड़ियाँ,
आग दबा रक्खी है मैंने जो छूटी फुलझड़ियाँ,
मेरी सीमित भाग्य-परिधि को और करो मत छोटी।
प्रिय, शेष बहुत......
अधर-पुटों में बंद अभी तक थी अधरों की वाणी,
'हाँ-ना' में मुखरित हो पाई किसकी प्रणय कहानी,

सिर्फ भूमिका थी जो कुछ संकोच भरे पल बोले,
प्रिय, शेष बहुत है बात अभी मत जाओ। प्रिय······
शिथिल पड़ी है नभ की बाहों में रजनी की काया,
चाँद चाँदनी की मदिरा में है डूबा भरमाया,
अलि कब तक भूले-भूले से रस-भीनी गलियों में,
प्रिय, मौन खड़े जलजात अभी मत जाओ। प्रिय······
रात बुझायेगी सच-सपने की अनबूझ पहेली,
किसी तरह दिन बहलाता है सबके प्राण सहेली
तारों के झपने तक अपने मन को दृढ़ कर लूंगा,
प्रिय, दूर बहुत है प्रात अभी मत जाओ। प्रिय शेष बहुत···

प्रणयपत्रिका—

बच्चन ने इस कृति के गीत अपने इंगलैंड प्रवासकाल में लिखे हैं। 'मिलन-यामिनी' की कलात्मक श्रीवृद्धि हम 'प्रणयपत्रिका' के गीतों में पाते हैं। यहाँ हमें श्रृंगारी वातावरण, प्रकृति-चित्रण तथा भावों की सरसता का एक लय-प्रवाह कवि की गीति-साधना के नए अंदाज का संकेत देता है। यहाँ कोमल-कांत पदावली में अभिव्यक्ति कौशल का नया रूप प्रकट होता है। श्रृंगार के रसरंजित भावानुभाव प्रणयपत्रिका के गीतों में मुखर-चित्रों से प्रतीत होते हैं। देखिए—

कुछ मतलब रखता है अब तो मेरा भी मंसूबा
तारे मेरे मन की गलियों में दीप जलाते हैं
मेरे भावों में रँग भरता गोधूलि अँधेरा भी।
झुरमुट में अटका चाँद कहीं अटका मन मेरा भी

इसी प्रकार—

आज खड़ी हो छत पर तुमने
होगा चाँद निहारा।
फूट पड़ी होगी नयनों से
सहसा जल की धारा।
इसके साथ जुड़ी जीवन की
कितनी मधुमय घड़ियाँ
यह चाँद नया है, नाव नई आशा की।

(गीत २६)

अथवा

मधुर प्रतीक्षा ही जब इतनी प्रिय तुम आते तब क्या होता।
मौन रात इस भाँति कि जैसे कोई गत वीणा पर बज कर,
अभी अभी सोई खोई-सी सपनों में तारों पर सिर धर,
और दिशाओं से प्रतिध्वनियाँ जाग्रत सुधियों-सी आती हैं,

कान तुम्हारी तान कहीं से यदि सुन पाते तब क्या होता :

अथवा—

तुमने आह भरी कि मुझे था
झंझा के झोकों ने घेरा
तुम मुस्काए थे कि जुन्हाई
में था डूब गया मन मेरा
तुम जब मौन हुए थे मैंने
सूनेपन का दिल देखा था ! —(गीत ५४)

इसमें कोई सन्देह नहीं कि "प्रणय पत्रिका" के गीतों में बच्चन को अपने पिछले गीतों की अपेक्षा भाषा, भाव, अभिव्यक्ति तथा कल्पना-कौशल की दृष्टि से आशातीत सफलता मिली है। सरसता की दृष्टि से बच्चन के इन गीतों में बड़ा आकर्षण और मिठास है। किन्तु कवि-जीवन की जलन, मानवता के कल्याण-पथ पर होना नितांत अनिवार्य है, नहीं तो वह जलन राख से अधिक कुछ न बन सकेगी—

जलना अर्थ उन्हीं का रखता जो कि अँधेरे में खोयों को—
हाथों के ऊपर अवलम्बित आकुल शंकित दृग कोयों को—
आशा का आश्वासन देकर जीवन का सन्देश सुनाए
जो न किरण की रेख बनोगे, धूलि-धुएं की धार बनोगे
हे मन के अंगार अगर तुम लौ न बनोगे क्षार बनोगे

प्रणय पत्रिका के अधिकांश गीतों में प्राकृतिक दृश्यों, बिम्बों तथा भावों की गुम्फित सृष्टि अत्यन्त रसमय एवं हृदयस्पर्शी हो उठी है, मानो वह स्वयं मुखरित हो उठी है—

कह रही है पेड़ की हर शाख अब तुम आ रहे अपने बसेरे
याद आई आज होंगी वे तरंगे दूब पर जो आह भरतीं
और बूँदें आंसुओं की पंकजों के लोचनों में जो सिहरतीं
और अपनी हंसिनी के नीरभींगे नेत्र की अपलक प्रतीक्षा
दाहिनी मेरी फड़कती आँख अब तुम आ रहे अपने बसेरे —

यहाँ तीसरी-चौथी पंक्ति में प्रकृति का भाव संकुल अंकन मुखरित और स्पंदित चित्र-सा बनकर हृदय में उतर आता है। 'हंसिनी के नीर-भीगे नेत्र की अपलक प्रतीक्षा और 'पंकजों के लोचनों में आँसुओं की बूंदें—ये दोनों चित्र रसध्वनि से युक्त नायक के प्रणय की स्मृति को एक साथ साकार और सहज रूप में सजीव कर देते हैं। और उधर नायिका का शुभ शकुन लोक प्रचलित मुहावरे के द्वारा कथ्य की कल्पना को रसिक के पाश में बाँध देता है कि—'दाहिनी मेरी फड़कती आँख' ! इस प्रकार कई गीतों में नायक-नायिका के प्रणय-व्यापार को मात्र कल्पना के सहज और सुघर माध्यम द्वारा गीत-बद्ध किया गया है तथा जीवन की पिपासा का मूल्य आँका गया है—

'रक्त बहता जाय, कहता जाय जीवन की पिपासा की कहानी'।

यों प्रणय पत्रिका के गीत 'रस्यते इति रसः' उक्ति को चरितार्थ करते हैं। उनमें न अतिरिक्त विदग्धता है, न उक्ति चमत्कार। उनमें केवल भावमयता भर है।

प्रणय पत्रिका के गीतों की विशिष्टता इस बात में है कि वहाँ प्रत्येक भाव, अनुभाव व संचारी भाव का आधार भोग का अनुभव है। यहाँ कल्पना की उड़ान का लक्ष्य आकाश पर विचरना नहीं वरन व्यक्ति की कामना की शक्ति को मुखरित करना है—

'कामना मेरी बड़ी मुझ से कि उससे मैं बड़ा, यह जानना था,
आदमी के तन नहीं, मन-हौसले का क़द मुझे पहचानना था
रेख लोहू की लगाकर आ रहा हूँ मैं अधर की मेखला पर,
शक्ति अम्बर में परीक्षित, भक्ति की लूँगा परीक्षा में धरणि में।
बाण-बिद्ध मराला-सा मैं आ गिरा हूँ अब तुम्हारी ही शरण में।

इस प्रसंग में प्रणय पत्रिका के 'हंस' सम्बन्धी गीत अपनी भंगिमा में अनूठे हैं। 'हंस' हमारे संत-दर्शन-काव्य में 'जीव' का प्रतीक रहा है। कबीर के अनेक पदों को इसके लिये पढ़ा जा सकता है। बच्चन की प्रणय पत्रिका का हंस प्रतीक भी है, किन्तु उसकी उड़ान ब्रह्म के पास पहुँचने के लिये नहीं है। हँस का राग इस धरती की ही माया-ममता का राग है। यहाँ यदि हँस को जीव के प्रतीक रूप में माना जाय तो कहा जायेगा कि कवि जैविक भाव-भूमि के स्वरों को अलौकिक भावभूमि के स्वरों की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली ढंग से मुखरित कर सका है। कुछ अंश देखिये—

है ठहर तब तक फ़लक पर जब तलक है
ज़ोर बाज़ू का सलामत
बिजलियों की हर लहर तेरे जमी की
ओर गिरने की अलामत
दग्ध पर की, दग्ध स्वर की क़द्र केवल
एक धरती जानती है
लाख आकर्षित किसी को भी करे आकाश अपनाता कहाँ है ?
व्योम पर छाया हुआ तमतोम हे हिम हंस, तू जाता कहाँ है ?

जीव की शक्ति-सीमा का ज्ञान इस प्रकार ध्वनित हुआ है—

बादलों के देश तक जब चढ़ गया था
जानता था, लौट आना,
जानता था है असंभव नीड़ बिजली
की लताओं पर बनाना
मैं गगन को भूमि की आकांक्षाएँ
कुछ बताना चाहता था
बाण-बिद्ध मराल-सा मैं आ गिरा हूँ अब तुम्हारी ही शरण में।

जीव की महत्वाकांक्षा का यथार्थ-बोध इस प्रकार व्यक्त हुआ है—

नभ न मुझको खींच लेता तो धरा के
वास्ते मैं भार होता
सिद्ध गिर कर कर दिया मैंने कि अपनी
शक्ति भर ऊपर उठा मैं
आज कमजोरी नहीं कूअत बड़ी मेरी
तुम्हारे जो चरण में।............

जीव का गुमान और धरती की महिमा का स्वर यों मुखर हुआ है—

कामना मेरी बड़ी मुझसे कि उससे
मैं बड़ा यह जानना था
आदमी के तन नहीं, मन हौसले का
क़द मुझे पहचानना था
रेख लोहू की लगा कर आ रहा हूँ
मैं अधर की मेखला पर,
शक्ति अंबर में परीक्षित, भक्ति की
लूंगा परीक्षा मैं धरणि में।............

जीव का अंतिम विश्वास और जीवन के प्रति उनकी अमर लालसा का स्वर ये है—

पंख टूटा है मगर यह खैरियत है
पाँव जो टूटा नहीं है............
रक्त बहता जाय कहता जाय जीवन
की पिपासा की कहानी
जान लो यह मुक्ति अपनी मांगने
आया नहीं हूँ मैं मरण में।

बच्चन के कवि ने प्रायः भूत को निराशामय, भविष्य को आशामय और वर्तमान को संघर्षमय व्यक्त किया है। यहाँ निराशा जीवन के संघर्ष-प्रणय से उद्भूत है। अतः वह सर्वथा समाज निरपेक्ष है, ऐसा नहीं कहा जा सकता।

भूत, भविष्य और वर्तमान के विषय में इस कवि का भाव है—

कवि के उर के अंतःपुर में
बृद्ध अतीत बसा करता है
कवि की दृग-कोरों के नीचे
बाल भविष्य हँसा करता है
वर्तमान के प्रौढ़ स्वरों से
होता कवि का कंठ निनादित

तीन काल पद-मापित मेरे क्रूर समय का डंक मुझे क्या ।
आज गीत में अंक लगाये, भू मुझको, पर्यंक मुझे क्या । (गीत ७)

पर व्ययीत के निराशाभाव को इस कवि ने कुछ अधिक व्यक्त किया है। प्रणय-पत्रिका में भी इस प्रकार की मार्मिक भावनाएँ व्यक्त हुई है—

क्षणभंगुर होता है जग में
यह रागों का नाता
सुखी वही है जो बीती को
चलता है बिसराता। (गीत २)

भविष्य के प्रति कवि सदा आशावादी रहा है, यहाँ भी है—

है कडुआ अनुभव मानव का
यह जग-जीवन काल अधूरा
किन्तु उसे मालूम नहीं है
कौन, कहाँ, कब होगा पूरा ! (गीत १२)

'प्रणय पत्रिका' का कवि सदैव अपने व्यक्ति के अंतर का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करता रहा है। जो कुछ उसने अनुभव किया उसका निश्छल आत्माभिव्यंजन जितना इस कवि ने किया दूसरे किसी कवि ने शायद नहीं किया। मैं इस विषय में अगली-पिछली कृतियों से उद्धरण देना संगत नहीं समझता। पर 'प्रणय-पत्रिका' की कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं—

फूल छिपाए भीतर-भीतर
काँटे हो जाया करते हैं (गीत ३५)

× × ×

एक दूसरे पर हँसने का
वक़्त कभी था, आज नहीं है
राज़ तुम्हारा-मेरा जो क्या
मानवता का राज़ नहीं है ?
दुर्बलताएँ प्रायः दिल की
परवशताएँ ही होती हैं
तुम भी अपनी आंख भिगो लो मैं भी अपनी आंख भिगो लूं
(गीत ३५)

मैं हूँ कौन कि धरती मेरी
भूलों का इतिहास बनाए
पर मुझको तो याद कि मेरी
किन-किन कमियों को बिसराए वह

बैठी है, और इसी से सोते और जागते मैंने
कभी नहीं बख्शा अपने को...

(गीत ४)

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से आत्मग्लानि तथा मानवीय आस्था का सहज स्वर ये है—

बंद कपाटों पर जा-जाकर
जो फिर-फिर साँकल खटकाए,
और न उत्तर पाए, उसकी
लाज-व्यथा को कौन बताए,
पर अपमान पिए पग फिर भी
उस ड्यौढ़ी पर जाकर ठहरें
क्या तुझमें ऐसा जो तुझसे मेरे तन-मन-प्राण बँधे-से।
मेरी तो हर साँस मुखर है, प्रिय, तेरे सब मौन सँदेसे।

(गीत ११)

और आत्माभिव्यक्ति का सुख इसमें है कि—

हल्के होकर चलते जिनके
भाव तराने बन जाते हैं। (गीत ६)

'प्रणय पत्रिका' का मूल स्वर शृंगार का नहीं, समर्पण का स्वर है। मिलन-यामिनी में जहाँ शरीर-पक्ष प्रधान है, प्रणयपत्रिका में प्राण-पक्ष प्रधान है। यहाँ जहाँ भी पश्चाताप की ध्वनि उठी है वहाँ भावों की सच्चाई है। वहाँ कृत्रिमता अथवा विदग्धता न होकर अनुभूति की मार्मिक, स्फुट ध्वनि है—देखिये—

मैंने तो हर तार तुम्हारे
हाथों में प्रिय सौंप दिया है
काल बताएगा यह मैंने
ग़लत किया या ठीक किया है
मेरा भाग समाप्त मगर
आरंभ तुम्हारा अब होता है
सुर न मधुर हो पाए उर की वीणा को कुछ और कसो ना!......
जिसको छू जग जाग न उठता
वह कुछ हो, अनुराग नहीं है......
तुमने मुझे छुआ, छेड़ा भी
और दूर के दूर रहे भी
उर के बीच बसे हो मेरे सुर के भी तो बीच बसो ना!

(गीत ४)

यहां कवि का आत्म-पीड़न और पश्चाताप कोरे स्वर-शब्दों का ही चमत्कार

नहीं है। क्योंकि स्वर-शब्द से सत्य, समर्थ, सशक्त, गेय और श्रवणीय कुछ और भी है, चाहे कोई उस पर ध्यान दे या न दे :—

हो अगर कोई न सुनने
को, न अपने आप गाऊँ ?
पुण्य की मुझमें कमी है
तो न अपने पाप गाऊँ ?
और गाया पाप ही तो
पुण्य का पहला चरण है
मौन जगती किन कलंकों को छिपाती आ रही है !
बीन, आ छेड़ूँ तुझे मन में उदासी छा रही है !

(गीत ६)

पर...निश्छल आत्माभिव्यक्ति की यह भी तो मन को मथने-मसोसने वाली विवशता है—

चुप न हुआ जाता है मुझसे
और न मुझसे गाया जाता,
धोखे में रखकर अपने को
और नहीं बहलाया जाता
शूल निकलने-सा सुख होता
गान गुंजाता जब अंबर में
लेकिन दिल के अन्दर कोई फाँस गड़ी ही रह जाती है।

(गीत ५)

सहृदय को यहाँ जो सब से अधिक सह-अनुभूति होती है वह कवि की सत्य और निश्छल आत्माभिव्यक्ति के मुखरित राग के कारण होती है—

अपने मन को जाहिर करने
का दुनिया में बहुत बहाना
किंतु किसी में माहिर होना
हाय, न मैंने अब तक जाना
जब-जब मेरे उर में, सुर में
द्वंद हुआ है, मैंने देखा,
उर विजयी होता, सुर के सिर हार मढ़ी ही रह जाती है।
राग उतर फिर-फिर जाता है बीन चढ़ी ही रह जाती है।

(गीत ५)

(यहाँ निशा-निमंत्रण की यह पंक्ति याद आती है—
'राग सदा ऊपर को चढ़ता आँसू नीचे झर जाते हैं।)

और जैसा मैंने पहले कहा—'प्रणय पत्रिका' का मूल स्वर शृंगार का नहीं

आत्म-समर्पण का है। यहाँ प्राण-पक्ष प्रधान है—

नाम तुम्हारा ले लूँ, मेरे
स्वप्नों की नामावलि पूरी
तुम जिससे सम्बद्ध नहीं वह
काम अधूरा, बात अधूरी
तुम जिसमें डोले वह जीवन
तुम जिसमें बोले वह वाणी
मुर्दा-मूक नहीं तो मेरे सब अरमान, सभी अभिलाषा।
अर्पित तुमको मेरी आशा, और निराशा, और पिपासा।

(गीत १०)

और ये भी कि—

जाहिर और अजाहिर दोनों
विधि मैंने तुझको आराधा
रात चढ़ाए आंसू, दिन में
राग रिझाने को स्वर साधा

(गीत ११)

× × ×

अंतर में वह पैठ सकेगा
जो अंतर से निकला

(गीत १४)

'प्रणय पत्रिका' का प्रणय रूप पोषित नहीं, राग पोषित है। जीवन में ऐसा प्रणय धन्य है। इसका दर्द, पश्चाताप, विषाद और बंधन सभी कुछ स्पृहणीय है। यहाँ कुछ भी मन को मैला नहीं करता, उसे माजता है, मथ कर मधुर बनाता है। पंत जी का कवि कहता है, 'तप रे मधुर-मधुर मन' पर बच्चन का कवि गौरव के साथ कहता है—

बड़भागी है दर्द बसाए
रह सकता है जिसका अंतर
जो इससे वंचित हैं उनको
फूंको फूंस चिता पर धर कर

(गीत १८)

मन को मौन रखकर उसे मधुर-मधुर तपाने से तो अच्छा है कि उसे तूल-सा धुन कर जीवन की धुनों के साथ मिला दें। बच्चन के कवि और उसके काव्य का धर्म (पोयटिक रिलीजन) यही रहा है।

अंतर मंथन से प्रस्फुटित कुछ उदाहरण देखिये—

देखी मैंने बहुत दिनों तक
दुनिया की रंगीनी

किंतु रही कोरी की कोरी
मेरी चादर झीनी
तन के तार छुए बहुतों ने
मन का तार न भीगा
तुम अपने रंग में रंग लो तो होली है । (गीत १४)

× × ×

रस्म सदा से जो चल आई
अदा उसे करना मुश्किल क्या
किसको इसका भेद मिला है
मुँह क्या बोल रहा है, दिल क्या
पिघले मन के साथ मगर था
जारी यह संघर्ष तुम्हारा
शकुन समय अशकुन का आँसू पलक-पुटों से ढलक न जाए ।
पुष्प-गुच्छ माला दी सबने, तुमने अपने अश्रु छिपाए ।
(गीत १७)

× × ×

याद तुम्हारी लेकर सोया, याद तुम्हारी लेकर जागा (गीत २७)

× × ×

उन रुपहली यादगारों के लिए, पर,
मैं नहीं आँसू गिराता,
मैं उसी क्षण के लिए रोता कि जिसमें
मैं नहीं पूरा समाता
और मैं जिसमें समाता पूर्ण वह बन
गीत नभ में गूँजता है
तुम इसे पढ़ना कभी तो भूलकर मत आँख से मोती ढुलाना ।
(गीत ३०)

× × ×

आग उसकी है, उसे जो बांह में ले,
दाह झेले, गीत गाए,
धार उसकी, जो बुझाए प्यास उसकी
रक्त से औ' मुसकराए,
वक़्त बातों में नहीं आता, परीक्षा
सख़्त लेता हर किसी की··· (गीत ३३)

× × ×

हम खुद कुछ दुख की सुधियों से

सुख पर संयम रखते,
है एक नयन हँसता, दूजे से आँसू ढलते हैं। (गीत ३४)

× × ×

बंधनों से प्यार जिसको हो गया हो वह कहाँ को जाय
लाख उस पर हो न पहरा, कर दिया जाए उसे आज़ाद।
तुम बुझाओ प्यास मेरी या जलाए फिर तुम्हारी याद। (गीत ४०)

'प्रणय पत्रिका' के गीतों में इतस्ततः भावना और कल्पना के साथ जीवन का दुर्दमनीय, सहज सत्य भी व्यक्त है—

क्या प्रतीक्षा हम करेंगे उस घड़ी की
एक दिल से दूसरा जब ऊब जाए
जिस खुशी के बीच में हम डूबते हैं
जब हमारे बीच में वह डूब जाए। (गीत ४७)

× × ×

पंख चाँदी के मिले हों या कि सोने
के मिले हों, एक दिन झड़ते अचानक
औ' सभी को देखनी पड़ती किसी दिन,
जड़ प्रकृति की एक सच्चाई भयानक,
किंतु उसके वास्ते रोएँ उन्हें जो
बैठ सहलाते रहे हैं, किंतु उनसे जो बसंती
वात बहलाते, बवंडर सात दहलाते
रहे हैं, जिन्दगी उनके लिए मातम नहीं है। (गीत ४७)

× × ×

चली सरल, शुचि, सीधे पथ पर
किसकी राम कहानी
कुछ अवगुन कर ही जाती है
चढ़ती बार जवानी
यहाँ दूध का धोया कोई
हो तो आगे आए
मेरी आँखों में फिर भी खारा पानी। (गीत ४१)

× × ×

जगत है पाने को बेताब
नारि के मन की गहरी थाह—
किए थी चिंतित औ' बेचैन
मुझे भी कुछ दिन ऐसी चाह—
मगर उसके तन का भी भेद

सका है कोई अब तक जान !
मुझे है अद्भुत एक रहस्य
तुम्हारी हर मुद्रा, हर वेष,
तुम्हारे नील झील-से नैन
नीर निर्झर-से लहरे केश ! (गीत ४६)

× × ×

धन्य पराजय मेरी जिसने
बचा लिया दंभी होने से

प्रणय-पत्रिका की नितांत व्यक्तिपरक अनुभूतियों द्वारा आत्म-निरीक्षण इस प्रकार व्यक्त हुआ है कि रसिक स्वयं अपने को उनमें लीन हुआ अनुभव करता है। ऐसी अनुभूतियों का प्रकाशन 'प्रणय पत्रिका' के गीतों को विशिष्टता प्रदान करता है। देखिये:—

दग्ध हृदय से निकला हर स्वर
दीपक राग हुआ करता है । (गीत ५६)

× × ×

भार बनोगे मन के ऊपर जो न सहज उद्गार बनोगे
हे मन के अंगार, अगर तुम लौ न बनोगे, क्षार बनोगे ।

× × × (गीत ५७)

राजमहल का पाहुन जैसे
तृण-कुटिया वह भूल न पाए
जिसमें उसने हों बचपन के
नैसर्गिक निशि-दिवस बिताए…
तन के सौ सुख, सौ सुविधा में मेरा मन बनवास दिया-सा

× × × (गीत ५८)

जो न करेगा सीना आगे
पीठ उसे खींचेगी पीछे
जो ऊपर को उठ न सकेगा
उसको जाना होगा नीचे
अस्थिर दुनिया में थिर होकर
कोई वस्तु नहीं रहती है (गीत ५७)

× × ×

वज्र बनाई छाती मैंने
चोट करे तो घन शरमाए,
भीतर-भीतर जान रहा हूँ
जहाँ कुसुम लेकर तुम आए,

और दिए रख उसके ऊपर
टूक-टूक हो बिखर पड़ेगी··· (गीत ४९)

आलोच्च कृति के कुछ गीत और कई पंक्तियाँ मानवता के दिशि-पथ को भी इंगित करती है, जैसे—'हे मन के अंगार अगर तुम लौ न बनोगे क्षार बनोगे', या—'मेरे अंतर की ज्वाला तुम घर-घर दीप-शिखा बन जाओ', आदि। इस दृष्टि से एक गीत अत्यधिक मानवीय भाव-गुण प्रधान बन पड़ा है—'सुमुखि, कभी क्या मेरे जीवन में भी ऐसे दिन आएंगे'—जब 'मांनचित्र-सा मेरे आगे मानव का उर फैला होगा ?'—और तब—'मानव के सुख, सूनेपन, दुःख, दर्द कभी घर कर जायेंगे ?

इस प्रकार की उक्तियां प्रायः कवि की मंगल भाव-कामनाभय परिपूर्ण क्षणों की उपज होती हैं। मानवता के दुख-सुख-संवेदन का सहभोक्ता होकर बच्चन ने अनेक ऐसे गीत रचे हैं जिन पर निःसन्देह गर्व किया जा सकता है। बच्चन के गीतों पर निर्णय देते समय उनकी इन रचनाओं की आलोचकों ने प्रायः उपेक्षा की है। इसी तरह का मानवता के प्रति लिखा एक महाप्राण गीत कवि की 'आरती और अंगारे' कृति (स्वयं कवि के कहे अनुसार 'प्रणय-पत्रिका' और 'आरती और अंगारे' की रचनायें परस्पर सम्बद्ध भी हैं) में भी है—

'एक गीत ऐसा मैं गाऊँ भूमि लगे स्वर्गों से प्यारी'—क्योंकि—'लेती है अवतार अमरता जिसके अन्दर से धरती पर'—इसलिए—'एक पीर ऐसी अपनाऊँ भूमि लगे स्वर्गों से प्यारी।'

तुलसीदास जी ने भी 'विनय-पत्रिका' में विनय के अनुरूप (और 'प्रणय-पत्रिका' में प्रणय के अनुकूल) अपनी विशुद्ध-विशिष्ट मनोकामना इस तरह एक पद में प्रकट की है—

'कबहुँक हौं यह रहनि रहोंगे।'

सारतः कहना होगा कि प्रणय-पत्रिका में कवि ने भाव, भाषा, कल्पना तथा शिल्प की दृष्टि से ह्लादेकमई वाणी का प्रसार किया है और जीवन को रागात्मक बनाया है। रागात्मकता की दृष्टि से प्रणय-पत्रिका का गीत-कुँज खड़ी बोली का पूर्ण गीत गुँज है और आत्मपरक गीत-काव्य के विकास का 'विराम-चिन्ह' भी। गीत के प्रति कवि की आस्था के यह स्वर बार-बार गूँजते हैं—

'गीत चेतना के सिर कलँगी, गीत खुशी के सिर पर सेहरा,
गीत विजय की कीर्ति पताका, गीत नींद ग़फ़लत पर पहरा।

और इसके साथ ही कवि की यह पूर्व स्वीकारोक्ति कितनी सार्थक लगती है कि 'जीवन की यात्रा के सबसे सच्चे साथी गीत रहे हैं, मुझे नापना है जग का मग इन पग रागों के सम्बल से, (मिलन यामिनी) और सम्पूर्ण प्रणय-पत्रिका पढ़कर गीत-रचना के विषय में यह उक्ति कितनी सटीक और सार्थक लगती है कि—

बुद्धि और विवेक बल से गीत कागज पर उतरते कब ?

संक्षेप और सार रूप में बच्चन के प्रारम्भिक गीतों से लेकर प्रणय-पत्रिका के प्रणय-गीतों तक प्रणय का एक पूर्णवृत्त बनता है जिसका पूर्वार्धि विरह-विषाद के तत्वों से निर्मित है और उत्तरार्ध प्रणयोल्लास से पूर्ण है। इसके साथ ही विरह-विषाद में कहीं आशा के 'जुगनू' का गीत है तो प्रणयोल्लास में कहीं 'बीत गई सो बात गई' का चीत्कार भी है। भाव शिल्प की सहजता की दृष्टि से बच्चन के विरह-मिलन के गीत छायावाद के उत्तरार्ध के गीतकार कवियों में सर्वश्रेष्ठ हैं और जिनमें से कुछ गीत तो निश्चय ही अमर हैं। किन्तु प्रणय के विरह-पक्ष का सर्वाधिक सशक्त, मर्मस्पर्शी और मधुर मुखरण अंचल के गीतों द्वारा हुआ है। मांसल विरह की जितनी दिलकश अभिव्यक्ति अंचल के गीतों में हुई है वह आनुभूतिक तरल बिम्बों की एक अनूठी ही सृष्टि है। बच्चन की अपेक्षा अंचल के विरह की विशिष्टता यह है कि उसमें पुरुष और नारी के प्रणय सम्बन्धों के बीच अहम् और दर्प की दीवार ढही हुई लगती है। बच्चन के निशा-निमंत्रण, मिलन-यामिनी और प्रणयपत्रिका के गीतों में नारी के समक्ष पुरुष के अहम को अधिक महत्व मिला है। बच्चन के प्रणय गीतों में नारी को उन्मुक्त भोग की वस्तु समझा गया है। पर अंचल नारी-पुरुष के प्रणय को शृंगार की समरसी भूमिका तक ले जाने में समर्थ हुए हैं। किन्तु भाव-शिल्प की समग्र दृष्टि से बच्चन के प्रणय-गीत अंचल के प्रणय गीतों की अपेक्षा अधिक गेय हैं। इस दृष्टि से नरेन्द्र शर्मा और नेपाली के कुछ गीत ही बच्चन के गीतों की टक्कर के बन पड़े हैं।

बच्चन के गीतों में ध्वनियाँ वस्तुतः महान हैं। इनमें 'श्रेष्ठता' की टक्कर में 'लघुता' की महत्ता का गान किया गया है—

कहता एक बूंद आँसू झर पलक-पांखुरी से पल्लव पर—
नहीं मेह के लहरे का ही, मेरा भी अस्तित्व यहाँ है ! (निशा निमंत्रण)

× × ×

एक चिड़िया चोंच में तिनका लिए जो जा रही है।
वह सहज में ही पवन उँचास को नीचा दिखाती। (सतरंगिनी)

× × ×

एक तिनका भी बना सकता यहाँ पर मार्ग नूतन। (मधुकलश)

× × ×

क्यों उन्मत्त समीरण आता, मानव कर का दीप बुझाता,
क्यों जुगनू जल-जल करता है तरु के नीड़ों की रखवाली (निशा निमंत्रण)

× × ×

मिटता अब तरु-तरु का अंतर, तम की चादर हर तरुवर पर,
केवल ताड़ अलग हो सबसे अपनी सत्ता बतलाता है। (निशा-निमंत्रण)

और 'मधुकलश तो व्यक्ति की लघुता का ही महाप्राण गायन है जिसका हम

आगे विवेचन करेंगे।

× × ×

गुलामी और उसके संघर्ष के मूल में मानव की आत्म-लघुता की भावना प्रबल होती है। जब जब संघ-विधान और उसके स्वामिवर्ग के आतंक की अतियों से आदमी का दम घुटा है, उसकी लघुता ने भीषण विद्रोह किया है। इसका विस्फोट विश्व-इतिहास की अनेक क्रांतियों में हुआ है। खड़ी बोली काव्य में इस स्वर-विद्रोह का विस्फोट मुख्यत: बच्चन के गीतों द्वारा ही हुआ। कवि मिर्ज़ा ग़ालिब ने अपने युग-परिवेश में आदमी की आत्मा में हलचल मचाते हुए विप्लव के वलवलों के त्रास-संत्रास को तीव्रता से महसूस किया और कहा—

मौत का एक दिन मुअय्यन है नींद क्यों रात भर नहीं आती ?

और बच्चन के व्यक्ति-कवि ने अपने युग-परिवेश में आदमी की इस आत्मिक परेशानी का और उसके त्रास-संत्रास का अत्यन्त तीखा दंश अनुभव किया था और उसे निशा-निमंत्रण, एकाँत संगीत और आकुल अंतर के गीतों में प्रधान रूप में और अन्यत्र स्फुट रूप में ध्वनित किया है। निशा-निमंत्रण में ऐसी ही तो एक डरावनी रात का चित्रण है जब नींद नहीं आती। और ग़ालिब के इस पेचीदा सवाल का कि 'नींद क्यों रात भर नहीं आती' कारण है युग-जीवन से असन्तुष्ट आदमी के अरमान, उसकी अनंत निराशा और उसकी क्रूर नियति ! सच, नींद कैसे आए ? क्योंकि रात के अपशकुन आदमी को सोने नहीं देते—

री अशकुन बतलाने वाली,
'आउ-आउ' कर किसे बुलाती, तुझको किसी याद सताती,
मेरे किन दुर्भाग्य क्षणों से, प्यार तुझे है तम-सी काली।
सत्य मिटा, सपना भी टूटा, संगिनि छूटी, संगी छूटा,
कौन शेष रह गई आपदा, जो तू मुझ पर लाने वाली। (निशा-निमंत्रण)

× × ×

रात-रात भर श्वान भूँकते,
इस रव से निशि कितनी विव्हल।
बतला सकता हूँ मैं केवल,
इसी तरह मेरे उर में भी असन्तुष्ट अरमान भूँकते। (निशा-निमंत्रण)

संक्षेप में, मिर्ज़ा ग़ालिब ने मौत का एक दिन निश्चित होने पर भी नींद न आने वाले जिस कारण को जानने के लिए छटपटाहट व्यक्त की थी बच्चन ने उसे निशा-निमंत्रण के गीतों में सूक्ष्मत: ध्वनित-प्रतिध्वनित कर सन् १८५७ के बाद से यहां का आदमी जिस नियति की निर्ममता को भोग रहा था उसका आत्मबोध कराया है। यह सब कुछ वस्तुत: आधुनिक संक्राँति कालीन मानसिक प्रतिक्रिया का परिणाम था और बच्चन के तत्कालीन काव्य-सृजन को इसी परिप्रेक्ष्य में पढ़ा जाना चाहिए।

बच्चन के सम्पूर्ण गीत-काव्य में और अधिकाँशतः निशानिमन्त्रण, मधुकलश,

मिलन यामिनी और प्रणय पत्रिका में (विशेषतः मिलन यामिनी के अन्तिम ३०-३१ गीतों में) रंग, गन्ध और स्पर्शमय ध्वनिपूर्ण माँसल चित्रों-बिम्बों की छटा न केवल अनूठी है अपितु अपूर्व भी है। छायावादी काव्य में रंग, ध्वनि और गन्धयुक्त काव्य-बिम्ब निश्चित ही उत्कृष्ट व अभिजात्य कोटि के हैं। किन्तु माँसलता का अभाव होने के कारण मन उनमें अधिक नहीं रम पाता। सम्भवतः बच्चन का काव्य इसलिए भी छायावादी काव्य की अपेक्षा अधिक लोकप्रिय और पठनीय सिद्ध हुआ है।

रंगों की दृष्टि से बच्चन के गीतों में छाया-प्रकाश (लाइट एण्ड शेड्स यानी हारमोनिक अवस्था) का प्राधान्य है। यहाँ छायावादी गीतों की जैसी 'प्यूअर' (परिष्कृत या अभिजात्य) अवस्था का अभाव है। अपवाद दूसरी बात है।

बच्चन के विशिष्ट गीतों को पढ़ते हुए दिमाग प्रायः इस दिशा में भी सोचने लगता है कि इन गीतों के भाव-प्रकाशन में कुछ ऐसे संगीत और राग तत्वों का समन्वय है जिसे काव्य तथा संगीत का मर्मज्ञ अपनी शोध-जिज्ञासा का विषय बना सकता है। उदाहरण के लिए 'प्रणय पत्रिका' का 'बीन आ छेड़ूँ तुझे मन में उदासी छा रही है' गीत लिया जा सकता है। सम्पूर्ण गीत में व्यक्ति-मन की जिस उदासी का सहज भाव-प्रकाशन हुआ है, तदनुकूल स्वर-लय की संगति भी प्रतीत होती है। बच्चन के सम्पूर्ण काव्य में ऐसे कई गीत हैं। मैंने तो यहाँ मात्र तथ्य की ओर इंगित करना चाहा है। जैसा मैंने ऊपर कहा यह काम तो काव्य-संगीत के किसी जानकार द्वारा ही हो सकता है।

और निष्कर्ष से पूर्व एक प्रश्न उभरता है कि बच्चन के गीतों को महान कहने का ठोस आधार क्या है? इसका उत्तर गीत-रचना के आधारभूत तत्वों की संश्लिष्टता को कसौटी मानकर ही दिया जा सकता है। पर यहां गीत के आधारभूत तत्वों पर विचार-विश्लेषण करने का अधिक अवकाश नहीं है। (इस विषय में लिखे गये मेरे शोध-प्रबंध 'छायावाद के उत्तरार्ध के गीतकार कवियों का विषय और शिल्प-विधान' में आप विस्तृत विवेचन पढ़ सकेंगे।)

बहुत संक्षेप में गीत के आधारभूत तत्व हैं—आत्मनिष्ठता, गेयता, वैयक्तिकता भावान्विति, आनुभूतिक-ताप-त्वरा, छंद प्रास-पोषित सर्व-संवेद्य सम्प्रेषणीयता, भाव तथा स्वर-शिल्प का संतुलन व समन्वय। और इस कसौटी पर जब हम प्रारम्भिक रचनाओं से प्रणय-पत्रिका (इससे आगे के संग्रहों में आत्मपरक गीत संख्या में बहुत कम हैं) तक के गीतों को पढ़ते-परखते हैं तो प्रतीत होता है कि खड़ी बोली के श्रेष्ठ गीत कार कवियों में बच्चन का गीतकार सर्वाधिक सक्रिय, सहज और सशक्त है। अतः मेरा मत है कि हिन्दी के गीत-काव्य के अनुष्ठान का आरम्भ यदि विद्यापति से होता है तो पूर्णाहुति बच्चन के गीत-काव्य द्वारा दी गई है। इसके उपरान्त नवगीत भले ही नाजुक तथा नव-बिम्बों की मुखरित सृष्टि की ओर ध्यान आकर्षित करते हैं किन्तु उनके नवायामों के आगे अनेक जटिल प्रश्न भी अड़े खड़े हैं। यदि शिल्प का साँचा सही बैठ गया तो नवगीत का नया-व्यक्ति-आत्मबोध निश्चय ही गीत-सृजन के क्षेत्र

में एक क्रांतिकारी क़दम सिद्ध होगा। पर अभी इस सम्भावना के सत्य सिद्ध होने के नक्षत्र धुँधले दिखलाई पड़ते हैं।

धार के इधर-उधर

जग-जीवन की आन्तरिक तीव्र धारा में बहते हुए भी एक जागरूक भाव-प्रवण कवि की दृष्टि तटों के महत्वपूर्ण दृष्यों को अनदेखा नहीं कर पाती। बच्चन जी की प्रारम्भिक रचनाओं से ही इस तथ्य का आभास होता है।

आलोच्य कृति में राष्ट्र की स्वतन्त्रता विषयक गतिविधियों से प्रेरित भावों का स्वर प्रमुख है। इन गीतों में यद्यपि सामयिक विषय-बोध प्रधान है किन्तु विशेष बात यह है कि इन स्वरों द्वारा देशवासियों को अपने कर्तव्य पालन का बोध कराया गया है। यहाँ उद्‌बोधन में ओज है, गौरव का गान है—

नगाधिराज शृंग पर खड़ी हुई
समुद्र की तरंग पर अड़ी हुई
स्वदेश में जगह-जगह गड़ी हुई
अटल ध्वजा
हरी, सफ़ेद,
केसरी!

× ×

अनेक शत्रु देश पार हैं खड़े, अनेक शत्रु देश मध्य हैं पड़े
कुशल कभी नहीं बिना हुए सजग, कृपाण हाथ में सदा लिए रहो

(देश के नवयुवकों से)

× × ×

समस्त शक्ति युद्ध में उडेल दे, गनीम को पहाड़ पार ठेल दे
पहाड़ पंथ रोकता, ढकेल दे, बने नवीन शौर्य की परम्परा

(देश पर आक्रमण)

× × ×

हल्का फूल नहीं आज़ादी वह है भारी ज़िम्मेदारी
उसे उठाने को कन्धे के। भुजदंडों के बल को तोलो!

(गणतन्त्र दिवस)

और पृथ्वी के प्रति प्यार को यहां कितनी पैनी भंगिमा से व्यक्त किया गया है—

यह पृथ्वी कितना सुख पाती
अगर न इसके वक्षस्थल पर यह दूषित मानवता होती। (पृथ्वी रोदन)

विशेष उल्लेखनीय बात यह है कि सामयिक तथा वाह्यरक विषयों पर भी इस कवि का ध्यान हटा हुआ नहीं है। उसने इन विषयों पर कविताएँ कम लिख

कर गीत ही रचे हैं। गीत आत्मपरक होने के कारण अनुभूतिमय ही अधिक सुन्दर होता है। पर बच्चन के बाह्यपरक गीतों में भी कहीं-कहीं अनुभूति प्रबल होकर अभिव्यक्ति में रुपायित हुई है। किन्तु इन गीतों में 'दिनकर' की रचनाओं जैसा ओज और चिन्तन न होकर साधारणता है। वस्तुत: 'धार के इधर-उधर' गीत लिखकर बच्चन गीतकार अपने सृजन-पथ से कुछ पृथक-सा प्रतीत होता है।

पर कुल मिलाकर धार के इधर-उधर कृति में कवि ने अपने राष्ट्र-धर्म की समुचित अभिव्यक्ति की है। कहीं-कहीं ओजस्वी वाणी मरे जन में भी जान डाल देने वाली है। बाह्य विषयों पर बच्चन की वाणी का यह ओज पहली बार इस कृति में इतने संतुलित रूप में व्यक्त हुआ है। देखिए—

नहीं भागता संघर्षों से इसीलिए इंसान बड़ा है

या—

सुयश मिला कभी नहीं पड़ा हुआ।

आरती और अंगारे

इस कृति की स्थापना कई दृष्टियों से विशेष कही जाएगी। इस प्रसंग में मुझे श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' जी के एक पत्र की याद आ गई। उन्होंने लिखा— 'जोशी जी आरती और अंगारे लिखकर बच्चन जी ने इस युग की कविता का बड़ा पुण्य कमाया है। धरती से लेकर आकाश तक देखता है यह आदमी भी।" वस्तुत: आलोच्य कृति इस कथन की सिद्धि है।

'आरती और अंगारे' के पूर्व भाग की कविताओं में उन कवियों की स्तुति या आरती है जिन्होंने अपनी-अपनी भाषा में जन-जीवन की भाव-राशि को प्रकट किया है—

ग़ालिब वह ग़लबा ला दो मेरे जीवन में
जिससे मेरा अंदाजे बयाँ कुछ और बने
क्यों शेर तुम्हारे मुझको ऐसे लगते हैं
जैसे घोले हों जीवन की सच्चाई में
जैसे बोले हों वे प्राणों की भाषा में
जो नहीं पड़ा करती है हाथापाई में···
उन सब कविताओं को मैं मरी समझता हूँ
एरियल कान का जिनको नहीं पकड़ता है
रेडियो ज़बाँ का जिन्हें नहीं फैलाता है
उनका हर अक्षर कृमि-कीटों का कौर बने (गीत २२)

उक्त पंक्तियों में ग़ालिब की भाव-भाषागत देन, उसकी महत्ता और उनके प्रति आस्था की ध्वनि के साथ ही कवि का कवि-कविता-कला सम्मत आदर्श भी स्थल-स्थल पर व्यक्त हुआ है। 'आरती और अंगारे' की कुछ कविताओं में कवि के पारिवारिक जीवन

कावातावरण भी अंकित हुआ है, जिसे गद्य में न कहकर पद्य में कहा गया है। किन्तु इस पद्य में गद्य का सर्वथा इतिवृत्त ही नहीं, पद्य का भाव-रस भी है। 'आरती और अंगारे' की उत्तर भाग की कविताओं में दंभियों-दुराग्रहियों के चरित्र के प्रति करारी चोट है। बयासी, तिरासी और सौ संख्या के गीतों में यह चोट व्यापकता से झंकृत है और मानव के स्नेह-संवेदन-समादर के प्रति कवि की भावना भी उतनी ही प्रबलता से विद्रवित होती गई है।

'आरती और अंगारे' कृति में प्रथम बार कवि ने कला, कविता, जीवन और मानवीयता के प्रति अपने प्रौढ़ भावों-विचारों को वाणी दी है। इन भावों-विचारों में कवि का गम्भीर अध्ययन, मनन, चिंतन एवं सूक्ष्म, संयमित तथा सशक्त भावाभिव्यंजन हुआ है। विशिष्टता यह है कि कवि ने यहाँ कहीं यदि जटिल विषयों की परिभाषा भी की है तो वह काव्यमय की है, बौद्धिक नहीं।

काव्य-भाषा की महत्ता और उसकी कसौटी स्थापित करते हुए कवि ने कहा है—

> भाषा मूर्ति नहीं पत्थर की
> मेरे कहने में कुछ ग़लती—
> अष्टधातु की वह प्रतिमा है
> जो हर युग में गलती-ढलती···
> एक गला सबको करता है
> अन्तस्तल में ज्वाल जगा कर (गीत ६)

और प्रकारांतर से—

> जिंदा दिल, जिंदा बोलों को
> समय नहीं छूने पाता है (गीत १७)

'अरसिकेषु कवित्त निवेदनम् शिरसि मा लिख, मा लिख'—प्रसिद्ध उक्ति की प्रतिक्रिया कवि द्वारा इस प्रकार व्यक्त हुई जिसमें सहज व सरस वाणी के प्रति असीम आस्था ध्वनित है—

> मना किया सिर में लिखने को
> जो, विधि ने उसको ही आँका
> नीरस को रसमय कर देना
> हो मेरी रसना का साका

क्योंकि—

> कवित, रसिक सुन तन-मन धुनता
> तो कवि ने एहसान किया क्या ? (गीत २)

वस्तुत :

> कलाकार वह बड़ा, कला पर
> अपनी, जो हावी होता है (गीत ४१)

और कवित्व यदि अनहदी अभिव्यंजन का ही माध्यम नहीं है तो कवि की यह चिंता जीवन के कितने आयामों की ओर इंगित कर रही है—

···किंतु जीवन की हदों के बीच में भी
कम नहीं कहने-सुनाने को पड़ा है
मानवों के दिल, दिलों की हसरतों को
आस को औ' प्यास को औ' वासना को
शोक, भय, शंका, महत्वाकांक्षा को
आज रक्खा जा नहीं सकता दबाए। (गीत ११)

मैं अभी जिन्दा, अभी यह शव-परीक्षा, मैं तुम्हें करने न दूँगा।
आँख मेरी आज भी मानव नयन की गूढ़तर तह तक उतरती।
आज भी अन्याय-पर अंगार बनती, अश्रुधारा में उमड़ती।
जिस जगह इन्सान की इन्सानियत लाचार उसको कर गई है।
तुम नहीं यह देखते तो मैं तुम्हारी आँख पर अचरज करूंगा।
गीत १००)

कवि के मत से कविता—

कविता, जगती के प्रांगण में,
जीवन की किलकारी। (गीत १६)

जातियों के उत्थान-पतन का सम्बन्ध उनके कंठ (वाणी) से कितना अटूट है—

जातियाँ जातीं पतन की ओर को जब
कंठ पहले वे गँवातीं
और जब उत्थान को अभियान करतीं
तब, प्रथम आवाज़ आती (गीत २४)

कला-कविता और रचनात्मक स्वप्नों की वास्तविक सृष्टि स्थूलता द्वारा नहीं जन-अन्तर की क्रान्ति द्वारा निर्मित होती है—

कला नहीं बसती पत्थर में
स्वर में, रंगों की श्रेणी में
बाजंतर में, कंठ, लेखनी में,
तूली, कीली, छैनी में
कोई मंदर जब जन-अन्तर
मंथन करता, स्वप्न उभरते,
कला उभरती, कविता उठती,
कीर्ति निखरती, विभव बिखरते। (गीत २६)

और जीवन का स्वप्न अर्थात् उसकी अमूर्त आकाँक्षाओं का प्रतिविम्ब ही तो कला के नाम पर रूपायित होता है। स्वप्न और कला का सम्बन्ध मनोविश्लेषण के आचार्यों ने अत्यन्त जटिल शब्दावली में निरूपित किया है। किन्तु इस कवि ने कवित्व

के माध्यम से उसे कितनी सूक्ष्मता से ध्वनित किया है—

स्वप्न जीवन का, कला है, जो कि जीवन
में, निखरकर वह कला से झांकता है
यह महज दर्पण नहीं है, दीप भी है
जो अमरता के शिखर को आंकता है।

(गीत २७)

जीवन के अनेक पहलूओं से गुज़र कर और तिक्त-मधु अनुभवों को भोग कर 'आरती और अंगारे' के कवि ने जिस इडियम और अदा से कथ्य और सत्य कोरूपायित किया है वह जीवन के यथार्थ का कलेजा फाड़कर ध्वनित होता है। देखिये—

मन में सावन-भादों बरसे
जीभ करे, पर, पानी पानी,
चलती फिरती है दुनिया में
बहुधा ऐसी बेईमानी······
मधुवन भोगे, मरु उपदेशे मेरे वंश रिवाज नहीं है।

× × × (गीत ८१)

बैंड, बिगुल, झंडे सेना के
ऊपर तुम ऐंठे सेनानी
सब के अन्तरपट पर लिखता
हूं मैं अपनी जीत कहानी
गीत सुनाकर, तुम से ऊँची
गर्दन करके क्यों न चलूं मैं
केवल अपने हाथों के बल मन की वीणा साथ लिए मैं।

× × × (गीत ४७)

घर की छत के ऊपर चढ़कर
जो चिल्लाते, शोर मचाते
अपना पोलापन दिखलाते
अपना बौनापन बतलाते······
हल्के उठ जाते हैं ऊपर
भारी भार लिए हैं नीचे
जो आगे-आगे इतराते
देख उधर से, वे हैं पीछे

× × × (गीत ४८)

कांटों से जो डरने वाले
मत कलियों से नेह लगाएँ
घाव नहीं हैं जिन हाथों में

उनमें किस दिन फूल सुहाए
नंगी तलवारों की छाया
में सुन्दरता विचरण करती
और किसी ने पाई हो पर कभी नहीं पाई है भय ने।
× × × (गीत ७०)

संघर्ष रहित जीवन का पथ केवल कायरों के लिए है। और कायरता से बड़ी मृत्यु क्या होगी ?

साफ़, उजाले वाले, रक्षित
पंथ मरों के कंदर के हैं। (गीत ७०)

और संघर्षरत जीवन का दुर्निवार सत्य कवि के कंठ से इस प्रकार फूट पड़ा—

पाप हो या पुण्य हो मैंने किया है
आज तक कुछ भी नहीं आधे हृदय से
औ' न आधी हार से मानी पराजय
औ' न की तसकीन ही आधी विजय से। (गीत ५२)

और कवि के इस अनुभव में कितना सत्य है, यह भुक्तभोगी जानते हैं—

कुछ बड़ा तुझको बनाना है कि तेरा इम्तहाँ होता कड़ा है···
लोह-सा वह ठोस बनकर है निकलता जो कि लोहे से लड़ा है। (गीत ५४)

'आरती और अंगारे' में मानवीय स्नेह और संवेदन की हिमायत में कवि ने जो उद्गार व्यक्त किये हैं वे सीधे मानस में उतरते हैं—

तुमने माँगा हृदय प्यार कर सकने वाला
तुम्हें शिकायत करने का अधिकार नहीं है।
× × × (गीत ६०)
बढ़ता है अधिकार सदा आतंक जमा कर
स्नेह प्रतीक्षा में अपलक पथ जोहा करता (गीत ६४)

वास्तविक स्नेह के आगे मानव का यह रूप भी कितना स्वाभाविक है, स्पष्ट है—

मानव चाहे सब दुनिया से
अपना रूप छिपाए
कहीं चाहता नग्नतना औ'
नग्नमना रह पाए (गीत ६५)

कटती है हर एक मुसीबत-एक तरह बस झेले झेले !

× × × (गीत ६३)

यह जीवन औ' संसार अधूरा इतना है

कुछ बे तोड़े कुछ जोड़ नहीं सकता कोई। (गीत ६६)

जीवन धारा के प्रवाह में बहने वाला हर व्यक्ति इस सत्य को जीता और भोगता है, आगे बढ़ता है, अंततः मंजिल पर पहुँचता है—

सहस विरोधों का आलिंगन

कर चलती जीवन की धारा (गीत ६०)

× × ×

चलना ही जिसका काम रहा हो दुनिया में

हर एक क़दम के ऊपर है उसकी मंजिल

जो कल पर काम उठता हो वह पछताए (गीत ६४)

मिथ्या यश-अर्जन की इच्छा करने वाले प्रचारवादियों और दंभियों के प्रति कवि के इस कटाक्ष में कितना युग-सत्य है, यह बताने की आवश्यकता नहीं है—

जो कि अपने को दिखाते घूमते हैं

देखते खुद को कहाँ हैं

और खुद को देखने वाली नजर

नीचे सदा रहती गड़ी रे। (गीत ८३)

और कर्मठ जीवन का परिचय यह है—

काम जिनका बोलता है वे कभी भी,

वे किसी से भी नहीं कुछ बोलते हैं,

और हम जो बोलने का काम करते

शोर करके पोल अपनी खोलते हैं। (गीत २७)

और कवि की इस दर्पोक्ति का भी हर कर्मठ व्यक्ति साझीदार हो सकता है—

कामना कुछ प्राप्त करने की हुई तो

प्रथम अधिकारी बना हूँ

और फिर मैं काल के, संसार के औ'

भाग्य के आगे तना हूँ

मैं वहाँ झुककर जहाँ झुकना ग़लत है

स्वर्ग ले सकता नहीं हूँ। (गीत ८४)

निश्चय ही 'आरती और अंगारे' की कविताओं में कवि ने अपने सृजन को अनुभव, अनुभूति और अभिव्यक्ति का व्यापक आयाम दिया है जिसमें कुल मिलाकर मानवीय आरती व आस्था का स्वर ही प्रधान है। केन्द्र मानव है, मानवता की आरती ही उसकी आरती है—

'गीत वही बाँटेगा सबको जो दुनिया की पीर सकेले'

यथार्थ-जीवन का महत्व जीवन को देखने (समझने-भोगने) से ही तो पता चलता है—

'मैंने जीवन देखा जीवन का गान किया '

काव्य-भाषा की दृष्टि से कवि ने उर्दू तथा बोलचाल के अनेक शब्दों और मुहावरों का समाहार अपनी रचनाओं में खुलकर किया है। अतः बच्चन की काव्य-भाषा यहाँ भाव वाहक है और शायद यही उसकी लोकप्रियता का विशेष कारण है। रेडियो, एरियल, आदि विदेशी शब्दों का प्रयोग भी इस कृति में कई स्थलों पर देखने में आता है जो अस्वाभाविक-सा नहीं लगता।

बुद्ध और नाचघर

२८ मुक्तछन्द की कविताओं को पढ़कर एक ओर नयी कविता शैली की ओर ध्यान जाता है और दूसरी ओर उससे अधिक आलोच्य कविताओं में कथ्य की सफ़ाई और सहजता प्रतीत होती है। सम्भवतः कुछ आधुनिक प्रकार के मुक्त छन्द का पहले-पहल 'प्रसाद' जी ने प्रयोग किया। (देखें 'महाराणा का महत्व' कविता जून १९१४ की) और निरालाजी ने तो आगे चलकर उसकी पूर्ण प्रतिष्ठा ही की। किन्तु यहाँ मुक्त छंद छायावादी भावभंगिमा लिये है। बच्चनजी ने मुक्त छंद में सन् १९४३ में 'बंगाल का काल' कविता लिखी जो सम्भवतः तब तक की खड़ी बोली की कविताओं में एक ही विषय पर लिखी सबसे लम्बी मुक्तछंदी कविता कही जा सकती है। इस कविता में न छायावाद का भाव-छायाभास था और न नयी कविता का जैसा शिल्प-क्षणमय अभिव्यंजन या विचित्र बिम्ब-विधान। यहाँ कवि ने अपनी कल्पना और सृजन-सृष्टि का रहस्य अपने आप ही खोल दिया—

प्रलय के उर में उठी जो कल्पना वह सृष्टि।
प्रलय पलकों पर पला जो स्वप्न वह संसार।

(सृष्टि कविता)

इधर 'बुद्ध और नाचघर' की कविताओं में प्रायः गीत और लय का तारतम्य और भावों-विचारों का अर्थात् कथ्य का सौंदर्य विद्यमान है। न तो इन कविताओं में उपमाओं या प्रतीकों का पेचीदापन है और न चमत्कार का चक्कर। कवि ने साफ़ कहा है—

उपमाएँ होती हैं धोखेबाज़
सच्चाई का लगता नहीं अन्दाज़

(कड़ुआ अनुभव)

आलोच्य कृति की कविताओं में (शुक्ल जी के अनुसार कहें तो) अभिधा द्वारा ही अर्थ का भावन होता है और बिम्ब-विधान पूरा उतरता है। उदाहरण के लिए 'शैल-विहंगिनि' और 'चोटी की बरफ़' कविताएँ पढ़ी जा सकती हैं। यथार्थवाद की अभि-व्यंजना 'बुद्ध और नाचघर' कविता में देखी जा सकती है। इस कविता से ही बच्चन

का कवि व्यंग का पैना डंक धारण करता है। आगे इसका प्रहार-प्रसार प्रक्षेपास्त्र के वार की तरह बढ़ता गया है। आगे यथास्थल हम इसकी चर्चा करेंगे। आलोच्य कृति की 'दोस्तों के सदमें', 'नीम के दो पेड़' और 'कडुआ अनुभव' आदि कविताओं में जैसे जीवन के अनुभवों की चट्टानों पर खुदे हुए अभिलेख हैं—

"मेरी बात यह कर गांठ
कायर के प्रहारों से
कभी कोई नहीं मरता.........
वीर है वह
घाव जो आगे लिये हो दुश्मनों के
और पीछे दोस्तों के (दोस्तों के सदमे—२)

इन कविताओं में निश्चय ही अभिधात्मक अभिव्यंजना पैनी है। तुलना के लिए सन् १९४३ की 'बंगाल का काल' कृति पढ़ी जा सकती है। लेकिन कहीं-कहीं कवि के कथन में चिढ़न और रुक्षता मात्रा और मर्यादा के बाहर भी हो गई है—

............उसी दिन
विधाता के मुँह पर थूक
दुनिया को लगा दो लात
कर लूंगा आत्मघात !

निश्चय ही यहाँ आवेश का डोज़ बहुत ज्यादा हो गया है।

त्रिभंगिमा

जैसा कि नाम से स्पष्ट है, त्रिभंगिमा में तीन प्रकार की शैली में लिखी कविताएँ हैं—लोकगीत शैली, साहित्यिक गीत-शैली और मुक्त-छन्द-शैली। लोकगीत-शैली खड़ी बोली गीत-काव्य के लिये अभी एक अभिनव प्रयोग की प्रक्रिया ही कही जायगी। बच्चन जी द्वारा लोक-गीतों की धुनों पर लिखे गये गीतों के प्रकाशन और पठन-पाठन से खड़ी बोली कविता के पाठक की पहली प्रतिक्रिया यह होती है कि उनमें वह बात नहीं है जिसकी बच्चन के गीतों से वह प्रत्याशा करता है और विगतकाल की कविताओं से उसकी पूर्ति पाता रहा है। निःसन्देह यह प्रतिक्रिया स्वाभाविक है। असल में लोकधुनों पर आधारित गीत-रचना से पूर्व बच्चन ने सुन्दर साहित्यिक गीत रचे। साहित्यिक गीतों से तात्पर्य भाव प्रधान उन कलागीतों से है जो कवि-व्यक्ति के व्यक्तित्व को ध्वनित-प्रतिध्वनित करते हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल से लेकर अब तक प्रायः यह दुहराया जाता रहा है कि 'लोकगीत' का विकसित रूप ही साहित्यिक गीत हैं। किन्तु यह कथन अपने आप में न तो स्पष्ट ही है और न लोकगीतों तथा साहित्यिक गीतों के पृथक-पृथक अस्तित्व का बोधक है, जब कि तथ्य यह है कि लोक-गीतों तथा साहित्यिक गीतों में निश्चय ही कुछ पार्थक्य है।

गीत रचना करने का व्यक्तिगत कुछ अनुभव होने के आधार पर सर्व प्रथम मैं यह कह सकता हूँ साहित्यिक गीतकार कवि लोकगीतों के विषय-शिल्प से परिचत भी हो, यह अनिवार्य नहीं है। वह लोकगीतों से सर्वथा अपरिचित रहकर भी साहित्यिक गीत रच सकता है। मेरे विचार से साहित्यिक गीत, लोकगीत और कवि सम्मेलनी आदि गीतों की रचना का परस्पर सम्बन्ध जोड़ना-समझना स्पष्ट दृष्टि का परिचायक नहीं है।

साहित्यिक गीतों का अस्तित्व मुख्यत: कवित्व एवं संगीत के तत्वों के समन्वय में है। पर लोक गीतों का अस्तित्व उनकी सहजता में है। साहित्यिक गीत गमलों में लगे गुलाबों जैसे होते हैं और लोकगीत होते हैं फल-फूलदार जंगली पोंधों जैसे। गमलों के गुलाबों का अपना सौंदर्य है किन्तु उन पर किसी साहब या साहिबा का अधिकार अवश्य होता है। पर जंगली पौधों और उनके फल-फूलों पर तो पशु-पक्षियों तक का समान अधिकार होता है। हाँ, दोनों का लक्ष्य एक है—अनुभूति का सर्व-संवेद्य, मार्मिक अभिव्यंजन ! आंचलिकता (भाषा तथा सामायिक रीति-रिवाज) के परिवेश से युक्त या मुक्त होकर भी जिन गेय रचनाओं में मानव के आदिम संस्कारों की ध्वनि सुनाई दे उन्हें हम सामान्यत: जन-गीत या एक विशेष अवस्था आ जाने पर लोक-गीत कह सकते हैं।

वस्तुत: लोकगीत शैली में लिखे खड़ी बोली के गीत, गीतकाव्य के लिये अभिनव प्रयोगों के प्रयास हैं। प्रयोग की सफलता असंदिग्ध कभी नहीं हुआ करती। फिर लोकगीतों में शब्दों-वर्णों-ध्वनियों का जो लोच-लचकाव होता है उसके लिए हमारी खड़ी बोली अभी कितनी समर्थ-सिद्ध है, यह अपने आप में भाषागत परीक्षण का एक गंभीर प्रश्न है। लोक-धुनों पर रचे इन गीतों की नागरिक जन जीवन पर कोई प्रतिक्रिया होगी, यह सोचना भी ग़लत है। इसका परीक्षण तो जन-सामान्य-जीवन (विशेषत: ग्रामीय) के क्षेत्र में ही हो सकता है। पर इसके लिये पर्याप्त समय चाहिए। हम, जो साहित्यिक सिद्धान्तों के आवर्तों में ही गीत की इयत्ता-महत्ता का फैसला लेने के आदी हैं, आलोच्य गीतों के सृजन और रसास्वादन पर तब तक कुछ कहने के अधिकारी नहीं हैं जब तक कुछ परिवर्तित दृष्टिकोंण न अपनाएँ। इन गीतों में नागरिक जीवन का नहीं, ग्रामीय अथवा सामान्य जन-जीवन का सूक्ष्म-सहज-स्वर होता है, जिसके लिए हमारी चेतना की भूमि अभी सिंची नहीं है। एक मोटा कारण यह है कि अभी हम ग्रामीय या सामान्य जीवन और उसके अनुगुंजन को आत्मसात नहीं कर पाए हैं। एक सूक्ष्म तथ्य यह भी है कि इस प्रकार के गीतों में ग्रामीय जन-मन-जीवन की सहज व स्वाभाविक (रूढ़ि नहीं) मनस-मान्यताओं के भावों का ही समाहार किया गया है जिसके यथासमय पच जाने पर ही उसका रस अनुभव हो सकेगा। इस तथ्य की पुष्टि के लिए विद्यापति तथा रवीन्द्र के गीतों को पढ़ा जा सकता है। इन्हें पचा कर ही रस की निष्पत्ति हो पाती है। इन गीतों में संगीत की स्वत: साध्य गूंज, वस्तुगत अनुरणन तथा नृत्य-मुद्रा आदि की विशेषता होती है।

इस प्रकार के गीतों में लय-लालित्य, शब्द-योजना एवं भाव-भंगिमा का अत्यन्त कलात्मक योग होता है जिसकी बारीकी के भीतर से रस निकाल लेना सहृदय पाठक के लिए कठिन कार्य नहीं हो सकता। मेरे विचार से इन गीतों से निश्चय ही लोक-भाषा एवं खड़ी बोली का विपर्यय कुछ कम होगा। कुछ पुरानी भूली हुई लयें नई-सी बनकर सुनने को मिलेंगी। कला-सर्जना में स्मृतियों-आवृत्तियों का अपना विशेष रसानन्द होता है। पर आवश्यकता इस बात की है कि इन गीतों का सृजन तथा रसास्वादन साहित्यिकता की दृष्टि से नहीं, सहजता की दृष्टि से हो।

प्रश्न है कि खड़ी बोली में लोक-धुनों पर आधारित शैली में लिखे गीतों का 'हिन्दी गीत काव्य' में क्या स्थान है? हिन्दी की बोलियों (खड़ी बोली, ब्रज, राजस्थानी, अवधी, बुन्देलखण्डी, हरियाणवी, मैथिली आदि) में लोक गीतों की शैली में रचा गया 'गीत काव्य' है, जिसका अभी भी साहित्यिक महत्व स्यात कम और लोक महत्व अधिक है। पुराने कवियों में विद्यापति, कबीर, मीराबाई, सूरदास (अष्टछाप के कवियों का) तथा तुलसीदास का गीत-काव्य साहित्य तथा लोक दोनों ही दृष्टियों से महान है। खड़ी बोली में बच्चन के अलावा नवीन, नैपाली, रघुवीर शरण 'मित्र', 'नीरज', केदारनाथ सिंह, शैलेन्द्र, रामदरस मिश्र, रवीन्द्र भ्रमर, शम्भूनाथसिंह, सर्वेश्वरदयाल, उमाकान्त मालवीय, ठाकुर प्रसादसिंह आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इसी प्रकार ब्रज में मेघश्याम शर्मा राजस्थानी में मुकुल गजानन वर्मा बुन्देलखंडी में वंशीधर पंडा, हरियाणवी में देवीशंकर 'प्रभाकर' एवं पं० हृदयराम आदि का नाम उल्लेखनीय है। कहने का तात्पर्य यह है कि लोक-गीतों की शैली में रचे गये हिन्दी 'गीतकाव्य' का अपना स्वतन्त्र महत्व है।

प्रश्न है कि क्या निराला, महादेवी[1] और व्यापक दृष्टि से छायावादी कवियों ने भी लोकगीतों को शैली पर गीत रचे हैं? पर यह सोचना असंगत है कि छायावादी गीतों में लोक गीततत्व है। द्विवेदी युग के जन-कवियों में लोक-गीतों के विषय-शैलीगत-तत्व कुछ उभरे हैं। छायावादी युग के दो दिग्गज स्वच्छन्दतावादी कवियों माखनलाल चतुर्वेदी तथा बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' ने लोक-धुनों पर आधारित गीतों की रचना करने के स्फुट प्रयास किये हैं। नवीन जी के कुछ गीत तो शुद्ध लोकगीतों की धुनों की भूमि पर लिखे गये हैं। उनके संग्रहों में ऐसे गीतों को पढ़ पाना सहज है। पर भणति की सूक्ष्मभंगिमा वहाँ नहीं है। सुभद्राकुमारी चौहान का 'खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी' एक ऐसी ज्वलन्त रचना है जिसका शिल्प लोकधर्मी है। (मुकुल पृ० ५८)

संक्षेप में, इस भ्रांति का उन्मूलन हो जाना चाहिए कि मात्र प्रकृत भावों की

---

१. प्रो० धनंजय वर्मा ने 'निराला' ग्रन्थ में पृ० १३२--३३ पर निराला को लोक गीतकार ही सिद्ध किया। इधर महादेवी ने भी 'दीपशिखा' की भूमिका में अपने गीतों के सन्दर्भ में ही लोक-गीतों के सृजन की चर्चा की है।

अभिव्यक्ति जिन गीतों में हो वे ही लोक गीतों की परंम्परा में रखने योग्य गीत हो सकते हैं। वस्तुतः लोक धुनों पर आधारित, संस्कारगत भावास्था से प्रेरित तथा आंचलिक लय-लालित्य से पूर्ण समर्थ गीतकार कवियों द्वारा लिखे कतिपय गीत भी इस दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। खडी बोली में लोक गीतों की धुनों पर गीत लिखने वाले कवियों में सर्वाधिक एवं अपेक्षाकृत सफल सृजन बच्चन ने किया है। विषय एवं शिल्प, दोनों ही दृष्टियों से उनके गीत ध्यान आकर्षित करते हैं। 'त्रिभंगिमा', और चार खेमे चौंसठ खूंटे,' इन दो कृतियों में बच्चन के लोक गीतों की धुनों पर रचे गये लगभग ३५-४० गीत संग्रहीत हैं। इन गीतों के सृजन में उत्तर प्रदेश के प्रचलित लोक-गीतों तथा कुछ राजस्थानी लोक गीतों[१] की धुनों का आधार लिया गया है। आलोच्य शैली में लिखे गये बच्चन के गीतों में बच्चन के मध्यवर्गीय जीवन के पूर्व संस्कारों का विशेष हाथ है। इसी अनुपात में इन गीतों की संख्या भी कम है।

बच्चन के अतिरिक्त अन्य नवगीतकारों के पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होने वाले गीतों में लोक-गीतों के विषय एवं शिल्प का आधार प्रकट होता है।

प्रश्न होता है कि आज इस बुद्धिवादी युग में लोक-गीतों की ओर लौटने की बात करना क्या बुद्धिसंगत है? उत्तर यह दिया जा सकता है कि सभ्यता की तेज़ दौड़ में हमारे अन्दर सांस्कृतिक संस्कारों का बल जाने-अनजाने कार्य करता है। जिन संस्कारों की आवश्यकता समाप्त हो जाती है वह पपीते के उस पेड़ की तरह आप सूख जाते हैं जिस पर फल आने बन्द हो जाते हैं। यह प्रकृति का नियम है। इस दृष्टि से आज लोक-गीतों का देश-विदेश में महत्व है। इन गीतों की लयों में अपना कुछ वशीकरण होता है। बच्चन जी ने एक पत्र में मुझे है—'जब मैं इंग्लैंड में था तब अक्सर लोक-गीतों के समारोह होते थे, केम्ब्रिज में आयोजित ऐसे समारोहों में लोक गीत गाए जाते थे और आधुनिक काव्य की दुनिया के बीच राग-रंग-रस की एक दूसरी दुनिया जन्म लेती थी।[२]

खड़ी बोली में नवगीतों के सृजन पर जब हम प्रभाव-शोधक दृष्टि डालते हैं तो यह आशा बंधती है कि खड़ी बोली के गीत-काव्य में एक नई रचनात्मक क्राँति के जन्म लेने का समय आ रहा है। किसे पता है इन्हीं नवगीतों के नये बिम्ब उन प्राचीन प्रतीकों (मिथों) को उस नये अर्थ में प्रतिभासित करने लगें जिस अर्थ में आज हम आन्तरिक एवं बाह्य जीवन जीते हैं, और जीना चाहते हैं। विषय की दृष्टि से लोक-गीतों की धुनों पर आधारित खड़ी बोली में जो गीत रचे गये हैं उनमें किसी नये कथ्य की अभिव्यक्ति नहीं हुई, क्योंकि उसका होना सम्भव नहीं है। सीमित विषयों पर ही इन गीतों की रचना हुई है। ग्राम्य जीवन की आस्थाएं, उनकी

---

१. **चार खेमें चौंसठ खूंटे के दो गीत 'मालिन बीकानेर की' तथा 'बीकानेर का सावन।'**

२. **पत्र ६-७-६७।**

प्रतीकात्मक कथाएं और अंतर्कथाएं इन गीतों में गुम्फित करने का इतस्ततः कुछ प्रयास किया गया है। यह प्रयास पिष्ठपेषण मात्र है। ताज़गी यहां नहीं है। जो भाव-उन्मुक्तता, अनगढ़पन एवं आन्तरिक उल्लास-अवसाद इन गीतों में सहज स्वर में मुखरित होता है, खड़ी बोली में लिखे इस शैली के गीतों में वैसा नहीं है।

जहाँ तक शिल्पविधान का प्रश्न है उसमें अपेक्षाकृत आँशिक सफलता ही मिली है। लोक-धुनों को खड़ी बोली की लय से बांधना अपने आप में यदि एक प्रयोग भी माना जाय तो वह शिल्प की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। खड़ी बोली की प्रकृति को ग्रामीय पदावली, छन्द, प्रतीक योजना एवं सहज अलंकृतियों के अनुकूल ढालना ज़रा टेढ़ी खीर है। बच्चन के कुछ गीत अभिव्यक्ति की इस दिशा में बहुत सुन्दर बन पड़े हैं। किन्तु इस सुन्दरता की तुलना हम लोकगीतों की सुन्दरता के साथ नहीं कर सकते। हाँ, खड़ी बोली के गीत-काव्य में लोक-धुनों पर लिखने वाले इन कवियों की देन का कुछ तो मूल्य और महत्व स्वीकार करना ही होगा। और इसमें मुझे कोई सन्देह नहीं है कि यदि लोक गीतों की धुनों पर खड़ी बोली में गीत-सृजन की साधना बच्चन और अन्य समर्थ जनगीतकार कवि करें और इन गीतों की उचित प्रसार-प्रचार की व्यवस्था (विशेषतः आकाशवाणी द्वारा) भी हो तो ये गीत ग्रामीय क्षेत्रों तथा जन-साधारण के जीवन को निश्चय ही साहित्यिक गीतों की अपेक्षा अधिक प्रिय लगेंगे, उसे प्रभावित करेंगे। फिर कहूं कि इन गीतों की रचना से साहित्यिक-गीतों एवं जन-गीतों का विपर्यय भी कम होगा। इस दृष्टि से मैं आलोच्य गीतों का महत्व असंदिग्ध रूप से मानता हूँ। उदाहरण के लिये 'त्रिभंगिमा' की ये पंक्तियां लीजिये—

ढोलक की लय पर
चक्की की घुर घुर
चर्खे की चुर चुर
गागर उठाता है, पायल बजाता है पाँव रे !

इन पंक्तियों में संगीत की स्वतः साध्य गूंज, वस्तुगत अनुरणन, नृत्य-मुद्रा (चौथी पंक्ति में) किसी व्याख्या की अपेक्षा नहीं रखती। इस प्रकार के गीतों में स्वर-माधुर्य, व्यंजना, सहज भाव-व्यापार एवं किसी रूमानी मिथ का अत्यन्त कलात्मक योग होता है जिससे रस पा लेना सहृदय पाठक के लिए कठिन कार्य नहीं हो सकता। जैसा कि मैंने ऊपर कहा है, इन गीतों से निश्चय ही लोकभाषा और खड़ी बोली का विपर्यय कुछ कम होता है। फिर भी इस प्रकार के लोकधुनों पर आधारित गीतों को जनमन में रमने और रस देने के लिए कुछ समय तो चाहिए ही। आवश्यकता इस बात की है कि इन गीतों को हम साहित्यिकता कम और सहजता की अधिक दृष्टि रख कर पढ़ें—सहज पके सो मीठा होय।

× × ×

त्रिभंगिमा के मध्य भाग के गीतों में कुछ आध्यात्म विषयक गीतों को रखा गया है। मधुशाला से लेकर मिलन यामिनी तक लिखी कविताओं की उन्माद-अवसाद की

वीथियों को पार करता हुआ कवि त्रिभंगिमा में जैसे प्रौढ़ता की सीढ़ी पर पहुँच गया है। अतः उसकी आवाज़ में आध्यात्म की ध्वनि स्वाभाविक-सी लगती है। लेकिन इन गीतों में कवि की प्रसन्न-वाग्धारा सूखी नहीं है, वह मन्थर गति से प्रवहमान है—

'अब तुमको अर्पित करने को मेरे पास बचा ही क्या हैं'

अथवा

'काम जो तुमने कराया, कर गया, जो कुछ कहाया कह गया।'

इन कुछ गीतों में कवि की सम्पूर्ण जीवन-यात्रा और उपलब्धि के प्रति एक नाटकीय दृष्टिपात प्रतीत होता है।

हर जीत जगत की रीत, चमक खो देती है
हर गीत गूँजकर कानों में धीमा पड़ता
हर आकर्षण घट जाता है, मिट जाता है
हर प्रीति निकलती जीवन की साधारणता !···
मुसकाता हूँ;
मैं अपनी सीमा, सबकी सीमा से परिचित
पर मुझे चुनौती देतो हो
तो आता हूँ।

(फिर चुनौती)

क्या मुसकानों के बचपन में
क्या अल्हड़पन के यौवन में
उदासीनता के, मरघट की
और खिसकते चरण चरण में
श्रम सीकर के संघर्षण में
और थकन की मौन शरण में
क्या न ऋचाएँ, क्या न मंत्र हैं, ढाई-ढाई अक्षर वाले
क्या सब कुछ पोथी से ही सीखा जाएगा, ओ मतवाले ?

(ढाई अक्षर)

× × ×

जब इतने श्रम-संघर्षण से
मैं कुछ न बना, मैं कुछ न हुआ
तो मेरी क्या, तेरी भी इज्जत इसमें है
मुझ मिट्टी से तू अपना हाथ हटाए रह।

(मिट्टी से हाथ लगए रह)

× × ×

इत्र की कुछ शीशियों को खोलते ही
मूँदते ही उम्र मेरी कट गई है

तुम प्रतीक्षा में हमेशा से खड़े थे
और मैंने ही न देखा ।

(मैंने ही न देखा)

भावों की अन्विति, त्वरा और सुसम्बद्धता बच्चन जी के गीतों की अपनी विशेषता है । डा० बलभद्र तिवारी के कथनानुसार 'गीत-योजना में एक सूत्रता और अन्विति के बच्चन जी कुशल शिल्पी रहे हैं । अतः उत्तर छायावादी काव्य की तीन प्रतिभाओं (बच्चन) अंचल और नरेन्द्र शर्मा में बच्चन का नाम प्रथम है, (आधुनिक साहित्य की व्यक्तिवादी भूमिका पृ० २७९-२८२) वस्तुतः जीवन का प्रत्येक स्पन्दन कवि के स्वर की सत्यता का यहाँ भी साक्षी है—

उन्माद मिलन का झूठ नहीं हो सकता
अवसाद विरह का झूठ नहीं हो सकता
मंज़िल जब तक उम्मीद न देती जाये
कोई जीवन का भार नहीं ढो सकता
इस दर्द, खुशी, आशा की सच्चाई को
इन द्वंदों में जीने की कठिनाई को
छंदों में कुछ साकार किया है मैंने
तेरी दुनिया को प्यार किया है मैंने

और त्रिभंगिमा के तीसरे भाग में मुक्तछंद की कविताएँ हैं । यहाँ लगता है कि जग-जीवन की विषम स्थितियों और ज्वलंत अनुभवों को वाणी देने के लिए कवि का मुक्तछंद जैसे समर्थ साधन या साँचा ही बन गया है—

वह समर्पण क्या
कि जिसमें रह गया कुछ
दूसरे को, तीसरे को
या चौथे पांचवें को, सातवें को·········

दर निछावर)

× ×

नाम का जादू बड़ा है
क्रांतिकारी वह न था छोटा
कि जिसने कह दिया था—
नाम में भी क्या धरा है ?

(अमर बेली)

× × ×

जिन्दगी के वास्ते निर्वाण ही काफ़ी नहीं है,
घास भी वह मांगती है (विकृत मूर्तियां)

× × ×

ज्वाल से मिल, ज्वाल जो बन जाय
दीवाना वही है (दीपक, पतिंगे और कौए)

लेकिन कुछ कविताओं में शब्दों की कलाबाज़ी भी है, डिटेल भी, कहने के साथ वहाँ अनकहना भी कहा गया है, जबकि सुन्दर ढंगसे तराश की जा सकती थी। वस्तुतःश्रेष्ठ कविताएं व्यंग्य प्रधान होती है, वर्णन प्रधान नहीं। त्रिभंगिमा में चेतावनी, महागर्दभ और गणतन्त्र-दिवस कविताएँ अपने सूक्ष्म व्यंग, ओज और अर्थ-आशय में बहुत समर्थ बन पड़ी हैं। बच्चन जी की इस प्रकार की कविताएँ पढ़कर कभी-कभी ध्यान जाता है उनकी ऊँची और उत्तरदायी कुर्सी की ओर (यहाँ तक लेख तभी लिखा गया था जब वे देशिव मंत्रालय में अधिकारी के पद पर थे) और इधर उनकी तीखी, व्यंग-ओजमयी कविताओं की ओर। दोनों का माध्यम कवि बच्चन, लेकिन दोनों में कितनी दूरी, कितनी असंपृक्तता, कितना मुक्तभाव-चिंतन और अभिव्यंजन ! फिर सरकारी कर्त्तव्य भी सफल और कवि-कर्म भी समर्थ ! कवि और व्यक्ति के समन्वय की यह चेष्टा अनुकरणीय कही जायेगी।

'महागर्दभ' कविता के प्रतीक और रूपक पढ़ने वाले के मन-मस्तिष्क पर अपनी गहरी छाप छोड़ते हैं। मेरे विचार से 'बुद्ध और नाचघर' शीर्षक कविता की यह कविता दूसरी चोटी है। बहुत पहले 'निराला' जी ने 'सहस्त्राब्दि' (अनामिका) कविता लिखी थी जिसमें वैदिक काल से लेकर मुग़लों के आक्रमण तक की भारतीय संस्कृति का उज्ज्वल परिचय प्रस्तुत किया गया है। 'महागर्दभ' कविता में भी संस्कृतियों के इतिहास के परिप्रेक्ष्य में भोली-भ्रमित जनता की जो राजनीतिक गति-अगति रही है, उसका व्यंग-पूर्ण, अंगारे-सा दहकता हुआ यथार्थ वर्णन है। इन ('सहस्त्राब्दि' तथा 'महागर्दभ') दोनों रचनाओं को यदि एक साथ, भाव-शिल्प-शैली की दृष्टि से, पढ़ा जाये तो छायावादी और छायावादोत्तर कालीन काव्य के भाव-शिल्प-शैली का सूक्ष्म अन्तर बहुत कुछ स्पष्ट होता है। इसकी विवेचना हम यहाँ नहीं करेंगे।

त्रिभंगिमा की कविताओं में भी कुछ विदेशी शब्द जैसे, फैशन, ड्राइंग-रूम आदि आए हैं। पर वे अजनबी-से लगते हैं। मुक्तछन्द की कुछ ऐसी भी कविताएँ हैं जैसे, 'विशुद्ध कविता' जिन्हें पढ़कर कवि के ऊपर अध्ययन का पूरा प्रभाव पड़ा लगता है। लेकिन यह नहीं भूलना चाहिये कि हिन्दी का यह प्रसिद्ध कवि देशी-विदेशी साहित्य का गम्भीर स्कॉलर भी है।

चार खेमे : चौंसठ खूंटे—

इस कृति में सन् १९६०-६२ में लिखित कविताएँ संग्रहीत हैं। इस कृति का अर्थ है लगभग पचपन वर्ष के प्रौढ़ कवि का आत्माभिव्यंजन या गत तीस वर्ष के अनवरत काव्य-साधक का काव्य-शब्द-शिल्प ! इतना समय किसी उपलब्धि की अनवरत साधना के लिये यदि बहुत नहीं तो बहुत कम भी नहीं कहा जा सकता। आज बड़ी से बड़ी फ़ौजी या तकनीकी ट्रेनिंग बाखूबी इससे बहुत कम समय में पूरी करके सुयोग्य व्यक्ति

ऊँचे और उत्तरदायी पद पर पहुँच जाते हैं। इसे ध्यान में रखकर हम बच्चन जी के प्रस्तुत काव्य-संग्रह के बारे में बहुत संक्षेप में प्रकाश डालेंगे।

प्रस्तुत कविता-संग्रह में मुख्यतः तीन प्रकार की कविताएँ हैं—कुछ लोकगीत शैली पर लिखे गीत, कुछ साहित्यिक गीत और शेष मुक्त-छन्द में लिखी कविताएँ। यही बात 'त्रिभंगिमा' में थी। "**वर्षाऽ मंगल**" तथा "**भू-पुत्रों को चुनौती**" कविताओं को कवि ने 'मंच-गान' कहा है। इनमें एक प्रकार की नाटकीय मुद्रा भी शामिल है जो सम्भवतः गाते समय प्रयोग में किसी नवीनता का आभास दे।

चार खेमे : चौंसठ खूँटे कविता-संग्रह के नाम की सार्थकता या नवीनता उसकी ६४ कविताओं के साँचों में नहीं है। वह तो इन कविताओं की ध्वनि या व्यंजना में है। यह ध्वनि या व्यंजना न नन्दनवन की है और न किसी अज्ञात लोक की छायावादी-रहस्यवादी चिंता की। इसका उत्स तो जीवन-जगत और धरती है। प्रारम्भ की दस कविताएँ एकदम पढ़ जाइये तो आपको लगेगा कि कवि का खेमे का रूपक बहुत कुछ कवित्वमय भाषा में अपनी भूमिका पेश कर रहा है। कविनिर्मित काव्य रूपी खेमे का मात्र आधार धरती है। धरती भी न नई दिल्ली की है न पुरानी की और न लन्दन की। यह धरती भारतीय लोक-सामान्य जीवन की है—ऐसी, जहाँ बंजारे (कवि) का खेमा गढ़ सके—यानी मुक्त धरती, सबकी धरती, और जहाँ से कुतुबमीनार चाहे नज़र न पड़े लेकिन मुक्त आकाश, मुक्त खेत-खलिहान और जीवन जीने की कशमकश, परिश्रम और पसीना साफ़ दिखाई पड़े—

> **मेहनत ऐसी चीज़ कि निकले**
> **तेल छलाछल रेत में.**
> **आशा घर में दीप जलाए**
> **सपना खेले खेत में** (छोड़ने वाली नहीं)

'चौंसठ खूँटे' संज्ञा से कोई गम्भीर आशय सिद्ध नहीं होता। उसका साधारण अर्थ है चार खेमे के चौंसठ खूँटे—यानी ६४ कविताएँ। तो साफ़ बात रूपक से परे यह हुई कि उक्त संग्रह में कवि (बंजारे) ने अपने काव्य-संग्रह (खेमे) में चौसठ कविताएँ (खूँटे) रखी हैं, जिनका आधार लोक-सामान्य-जीवन की धरती है। और कवि का अभी गतिवान जीवन है, क्योंकि वह बंजारा है। एक बात यहीं स्पष्ट और कर ली जाय कि इसी संग्रह में कुछ कविताएँ प्रभु सम्बन्धी हैं, जिन्हें विनयपरक कहा जा सकता है। किन्तु ध्यान से पढ़ने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि उनमें भी इस भूमन और जीवनाकर्षण से बीतराग नहीं है—

> **जिन्दगी की इस नदी में कौन रुकता**
> **भले ही खेवे न खेवे,**
> **कौन पीछे लौटता, चाहे अगर भी,**
> **साथ हो या हो अकेला** (डूबने वाली नावें)।

वहाँ उर्ध्व संचरण और अतिचेन मन की दार्शनिक गुत्थी नहीं सुलझाई गई है। उदारहण अभी हम नहीं दे रहे हैं। यहाँ तक हमने विवेच्य कविता-संग्रह की कविताओं के रहस्य-रूपक को स्पष्ट करने की बात संक्षेप में कही है।

अब अभिव्यंजना या कवि की गत तीस-बत्तीस वर्ष की शब्द-साधना की बात आती है जो बहुत महत्वपूर्ण है। किसी पुराने आचार्य का कहना है—"शब्दार्थौं सहितो काव्यम्' ! तो शब्द-अर्थ के सहित पर ही हम कविवर बच्चन के आलोच्य कविता संग्रह पर थोड़ा कहना चाहेंगे। कवि की भाषा के विषय में अन्यत्र विस्तार से लिखा गया है। यहाँ इसकी विवेचना नहीं की जायेगी।

× × ×

प्रणय पत्रिका के बाद कविवर बच्चन की कविता में, उनके काव्य-प्रेमियों की दृष्टि से, एक अप्रत्याशित परिवर्तन (कुछों के मत से असंगत अनचाहा परिवर्तन) आया है कि उसमें नैसर्गिक गीत-तत्व गायब होता गया है, कि उसका स्थान मुक्तछंद ने ले लिया है। और लोक गीतों में वह बात नहीं है—यानी जनमन सरसता ! लोक-गीत तत्व के संदर्भमें यहआक्षेप या आरोप एकदम अस्वीकार्य भी नहीं किया जा सकता। मेरे विचार से बच्चन की कविता की सबसे बड़ी अपनी गीतात्मकता रही है। और गीतात्मकता की अनूठी आभा अनुभूति की त्वरा और भावसम्बद्धता तथा जीवनगत सच्चाई है। इस दृष्टि से 'प्रणय-पत्रिका' के उपरान्त की उपलब्धि कुछ भी और कैसी भा रही हो पर रसमय कम रही, जिसकी आत्म-स्वीकृति आलोच्य कृति की "बुलबुल को आह्वान" शीर्षक कविता में स्वयं कवि ने दी है—

"किन्तु जब विपरीत सब कुछ हो
तभी तो गीति, प्रीति, प्रतीति की होती परीक्षा
बाहरी सतही विपर्यय से
नहीं विश्वास मेरा कम हुआ है
राग मधुवन के लिये कुछ बढ़ गया है
स्वप्न-सामंजस्य कोई कहीं
आकृतिवान होने के लिये संघर्ष रत हैं
शक्ति मधुवन की वहीं कण-कण निरत है
आज ही इसकी जरूरत है
कि गायन आस्था का का बन्द मत हो
इसी से टूटी लयों से भी
बराबर गा रहा हूँ।
प्राण-बुलबुल !
मौन मत हो
व्रत प्रकट हो
साथ मेरा दो

समय की लो चुनौती
वह अभागा कौन जिसकी
गीत, प्रीति, प्रतीति से
किस्मत न लौटी !

इन पंक्तियों में कवि ने स्वयं अपनी इधर की 'टूटी लयों' को देखकर एक ठेस खाई है। और यह भी कि उसका गीतिकार पुन: मधुबन के राग और स्वप्न-सामंजस्य को आकृतिवान देखने के लिये आकुल है। अभी भी गीति, प्रीति, प्रतीति पर उसे पूर्ण आस्था है। शेष जो कुछ उसने गत १०-१२ वर्ष में (वर्तमान कृति तक) वाणीमय किया है वह बाहरी, सतही विपर्यय का तकाज़ा था, शायद सामाजिक ऋण था, कर्त्तव्य था या कवि की युग-वातावरण जन्य विवशता थी। जो भी हो, बच्चन का कवि छंद-मुक्त होकर आज आसानी से पहचाना नहीं जाता। कवि बच्चन की ध्वनि मैं गीतों में ही पूर्णत: पाता हूँ।

'चार खेमे : चौसठ खूँटे' कविता-संग्रह की कविताओं में 'त्रिभंगिमा' की अपेक्षा कई दृष्टियों से वाणी-विकास के चिन्ह दीख पड़ते हैं। यहाँ के लोक-गीतों में पिछले गीतों की अपेक्षा तन्मयता तथा शब्द-शिल्प का नियोजन अधिक स्वाभाविक तथा संगीतमय है। 'बंजारे की समस्या' 'फूटी गागर', 'कुम्हार का गीत', 'वर्षाऽमंगल' और 'जामुन चूती हैं' कविताओं में लोक-लयमान पदावली और भाव-प्रवाह अनूठा है—

खाली गागर ले घर जाऊँ
घर वालों की गाली खाऊँ
भीगी आऊँ, भीगी जाऊँ,
बाहर हँसी कराऊँ रे !
जगह जगह से गागर फूटी
राम, कहाँ तक ताऊँ रे ?
ताऊँ रे मइ ताऊँ रे

× × ×

चाक चले चाक !
अम्बर दो फाँक—
आधे में हँस उड़े, आधे में काक !
धरती दो फाँक—
आधी में नीम फले आधी में दाख
जीवन दो फांक—
आधे में रोदन है आधे में राग।

⊠ ⊠ ⊠

नव धान उठे
नव गान उठे

सदके खेतो से, सब घर से,
घन बरसे, भीग धरा गमके
घन बरसे !

× × ×

मधु की पिटारी
भौंरे - सी कारी
बागो में पैठे न चोर
कि जामन चूती है !
अब गाँवो में घर-घर शोर
कि जामुन चूती है ।

इन कुछ उद्धरणो से लोक-जीवन की स्वर-लहरी और 'हँस उडे, नीम फले', 'मधु की पिटारी, भौरे-सी कारी' (यानी जामुन) कहने से लोक-सामान्य जीवन के मानस की रसीली छलक ललक की गूज गूजती हे। यह बात 'त्रिभगिमा' के लोक-गीतो की शैली पर लिखे गीतो मे इतनी सफाई स्वाभाविकता तथा कलात्मकता से नही उतर सकी है। इसलिये कहना होगा कि इस दिशा मे कवि का प्रयोग या प्रयास कुछ आगे बढा है। प्रस्तुत कृति के दो गीत "गन्धव ताल" तथा 'आगाही' बहुत ऊँचे बन पडे हैं। इनका रहस्य स्वय कवि ने पुस्तक मे टिप्पणियाँ लिखकर खोल दिया है। प्रणय-विषय और कथोप कथन की सरलता-सरसता और गम्भीरता के साथ ही इन दोनो गीतो मे सास्कृतिक मूल्य भी आँका गया है। लछिमा, यदि भारत की भोली-भाली सुदर-सरल चेतना है तो 'साँवर' सच्चे, सीधे, सरल प्रेम तथा विश्वास का प्रतीक है। लयात्मकता तथा कल्पना सूक्ष्मता की दृष्टि से सम्भवत ये दोनो गीत अपनी भगिमा में बेजोड हैं। 'मालिन बीकानेर की' कविता मे राजपूताने की ऐतिहासिक-रोमाँटिक भावना शब्दो मे सजीव कर दी गई है, जिसकी लय मनोमुग्धकारी है—

ओढ़नी आधा अबर ढक ले
ऐसी है चित्तौर की
चोटी है नागौर नगर की
चोली रनथभौर की
घघरी आधी धरती ढकती है मेवाडी घेर की
फुलमाला ले लो
लाई है मालिन बीकानेर की
मालिन बीकानेर की ।

प्रस्तुत सग्रह मे बच्चन की पूव अनुभूतिपरक गीति-धारा का एक ही गीत उतर कर कर आया है "बरस-तरस" जो निसदेह अपनी स्निग्धता तथा सरसता मे 'मिलन-यामिनी' के गीतो की याद सहसा ताजा कर देता है। लगता है कि

यदि यह गीतिधारा फिर कभी फूटी (जिसकी आशा अब नहीं है) तो कवि बच्चन के गीतिरस-पिपासु पाठकों को फिर से रसस्नात कर सकेगी।

यहाँ कुछ साहित्यिक गीत प्रभु-बंदना सम्मत हैं। जैसे, 'प्रभु मंदिर यह देह री', 'मैं तो बहुत दिनों पर चेता' आदि। लेकिन इन गीतों में विनय के पदों का जैसा प्रभाव नहीं है। यहाँ वृद्ध होते हुए कवि की प्रभु-विनय विषयक अस्वाभाविक-सी अभिव्यंजना प्रतीत होती है। इनमें कवि को, विशिष्टता नहीं प्राप्त हुई है।

'भारत के यौवन का गीत' '**त्रिभंगिमा**' के 'प्रयाण-गीतों' (थल सेना का, नौ सैनिकों का) की टक्कर का नहीं कहा जा सकता।

× × ×

और अब मुक्त छंद की कविताओं के बारे में थोड़ा कहा जाना ठीक रहेगा। जहाँ तक मुक्त छंद में भाषागत प्रौढ़ता, अभिव्यंजना तथा प्रवाह की बात है, '**त्रिभंगिमा**' के मुक्तछंद के मुकाबले यहाँ कोई विशेष परिवर्तन या विकास प्रतीत नहीं होता। कुछ तो होगा ही जो अपनी सूक्ष्मता में विशिष्ट होगा और जिसकी सम्यक विवेचना यहाँ संभव नहीं है। सामान्यत: एक बात यहाँ बढ़ी हुई लगती है और वह है लोक-अध्ययन से अधिक आत्म-विश्लेषण तथा सूक्ष्मचिंतन। इस दृष्टि से सभी कविताएँ पठनीय हैं। इन मुक्तछंदी कवि ताओं की एक विशेषता प्राय: किसी रूपक के माध्यम से किसी तथ्य-सत्य और जग-जीवन के यथार्थ को वाणी देने की है। इसके लिये 'अनजिए विश्वास' 'पानी मरा मोती, आग मरा आदमी' तथा 'ध्वस्त पोत' शीर्षक कविताएँ बहुत शक्तिशाली हैं। मुक्तछंदी कविताओं में रूपक के बल के अलावा प्राय: कवि का यथार्थदर्शी चित्र-विधान भी हैं। चार खेमे चौंसठ खूँटे' की कविताओं में जितना जीवंत चित्र विधान मुझे एक स्थल पर ही मिला है वैसा किसी दूसरे काव्य संग्रह में नहीं मिला। यहाँ कवि की सूक्ष्म पर्यवेक्षण शक्ति और उसकी शाब्दिक अभिव्यक्ति जैसे सामर्थ्य की सीमा पर खड़ी बोल रही है। इसके लिये 'मरणकाले' (पुस्तक की अंतिम कविता) बहुत प्रभावशाली है। इस कविता में बच्चन की मुक्तछंदी कविताओं की भाषा तथा भाव-चित्रगत सारी विशिष्टता एक स्थल पर सिमट कर सामने आती है। तीन मरे जंतुओं के जीवित-मृतक रूप शब्दध्वनि के कारण अपनी भयंकरता में अद्भुत लगते हैं। शब्दों का यथावत् प्रयोग उनका साँचा ही नहीं प्राण बन गया है—

मरा मैंने गरुड़ देखा
गगन का अभिमान
धराशाही, धूलि धूसर, म्लान।
मरा मैंने सिंह देखा
दिग्दिगंत दहाड़ जिसकी गूँजती थी
एक झाड़ी में पड़ा चिर मूक
दाढ़ी-दाढ़-चिपका थूक!
मरा मैंने सर्प देखा

स्फूर्ति का प्रतिरूप लहरिल
पड़ा भू पर बना सीधी और निश्चल रेख

और उसके बाद कविता जीवन के अस्तित्व-अनस्तित्व का चिंतन प्रधान अभिव्यंजन करती है। कहने की आवश्यकता नहीं कि गरुड़, सिंह और सर्प की जीवित-मृतक जिन आकृतियों विकृतियों का यहाँ गिने-चुने शब्दों में चित्र खींचा गया है वह शब्द-साधना का भारी परिणाम है। दिग्दिगंत दहाड़, दाढ़ी-दाढ़-चिपका थूक, स्फूर्ति का प्रतिरूप लहरिल, और मरे सर्प के लिये 'भूपर सीधी निश्चल रेख' कहना चित्रांकन की सिद्धहस्तता का प्रमाण है। यहाँ शब्दों में यथासंगत ध्वनि साकार हुई है। ऐसे स्थलों में यह उक्ति सार्थक लगती है—

"अर्थ अमित अति आखर थोरे"

आलोच्य कृति की मुक्तछंदी कुछ दार्शनिक कविताओं में, जैसे—'अनुरोध' 'प्रत्यवर्तन' 'इस संसार में' आदि कवि की परा शक्ति के प्रति आत्म निवेदनीयता बड़ी निश्छल तथा प्रौढ़ लगती है। किंतु यहाँ रहस्य नहीं, स्पष्ट चिंतन, आत्म-निवेदन और आत्मनिरीक्षण है—

जिए क्षण को
जिया जा सकता नहीं फिर
याद में भी
क्योंकि वह परिपूर्णता में थम गया है।

(स्वाध्याय कक्ष में बसंत)

× × ×

बाहरी ही नहीं
जीवन माँगता है
भीतर भी बल ?

(भीतरी काँटा)

× × ×

आह, रोना और पछताना इसी का
एक भी विश्वास को
पूरी तरह मैं जी न पाया···
जिया जिसको जान भी उसको न पाया।

(अनजिए विश्वास)

पर यह सूक्ष्म-चिंतन और आत्मनिरीक्षण जग-जीवन के प्रति उदासीनता अथवा निष्क्रियता के भाव नहीं जगाता—

भाग्य लेटे का सदा लेटा रहा है
जो खड़ा है भाग्य उसका उठ खड़ा है
चल पड़ा जो भाग्य उसका चल पड़ा है (ध्वस्त पोत)

और इस सबसे महत्वपूर्ण और महान है इस राग-विरागमय विश्व के प्रति जीव का असीम आकर्षण और जीवन के प्रति उसकी अटूट आस्था और यही तत्व बच्चन की कविता को न 'नयी कविता' की व्याख्याओं के व्यूह में फँसने देता है और न पुराने काव्य-वादों के चक्कर में पड़ने देता है। जीवन अपने बाहरी-भीतरी परिवेशों में जितना नया और जितना पुराना हो सकता है, उसी की साधिकार अभिव्यक्ति बच्चन की कविता है। 'चार खेमे चौंसठ खूँटे' संग्रह की कविताओं में कवि का यही दृष्टिकोण व्यक्त होता है। सन् १९६३ के प्रथम दिन बच्चन जी ने मुझे अपनी नई कृति 'चार खेमे चौंसठ खूँटे' आशीष-उपहार-स्वरूप देते हुए ये महत्वपूर्ण शब्द अंकित किये—

'जो न नियोजित हैं न वालंटियर ही क्या उन्हें अपनी बात कहने का अधिकार नहीं? उसी अधिकार से जो कहता रहा हूँ उसे मेरे साथियों ने कविता मान लिया है।'

इससे जाहिर है कि इस कवि ने अपना काव्य लिखने के लिये नहीं लिखा, न साहित्य-सेवा के भाव से बल्कि जीवन में जो बातें कहने का व्यक्ति को मूल अधिकार प्राप्त है—इस कवि ने उसे बरता है, कहा है। अतः इस सृजन में कविता या कला कितनी है, यह तो मर्मज्ञ जानें। पर उसमें जग-जीवन की पूर्ण सच्चाई है, यह समझना कुछ कठिन नहीं है।

दो चट्टानें

इस कृति की कविताएँ कवि ने सन् १९६२-'६४ में लिखी हैं। 'बुद्ध और नाचघर' 'त्रिभंगिमा' और 'चार खेमे चौंसठ खूँटे'—पिछली तीन कृतियों की मुक्त छन्द की कविताओं की चर्चा पीछे की जा चुकी है। 'दो चट्टानें' कृति की कविताएँ उक्त कृतियों की मुक्त छंद की कविताओं की अपेक्षा शिल्प-शैली की दृष्टि से किसी नये क्षितिज की सूचना नहीं देती। विषय वैविध्य होना तो स्वाभाविक है। लेकिन आलोच्य कृति की कुल ५३ कविताओं में केवल एक गीत है—भिगाए जा रे···, बाकी सब मुक्त छंद की कविताएँ हैं। यह एक गीत अपनी सरलता, तन्मयता और मधुर स्वर-लहरी से हृदय के रागात्मक तारों को छूकर कहता है, कि जीवन में कविता का संगीत अभी मरा नहीं है। और मेरा तो अब भी यह विश्वास है कि घोर बहिष्कार के बावजूद बच्चन की गीति-प्रेरणा अगर सृजन में रूपायित हो जाय तो गीत के धुंधले भविष्याकाश में फिर ताजे गुलाबों की लाली फैल सकती है। लेकिन मुझे संग्रह की 'सृजन और साँचा' कविता पढ़कर कवि की असमर्थता पर असंतोष होता है। मुझे तो उनकी 'त्रिभंगिमा' में व्यक्त 'गीत-निष्ठा' पर ही आज भी निष्ठा है। पर काश ये कवि याद करता :—

> **'गीत गाने जा रहा हूँ**
> **मंत्रदृष्टा पूर्वजों की ओर अपनी**
> **शक्ति को मैं आजमाने जा रहा हूँ**
> **धुँध के, दुर्गंध के, गतिरोध के**

दम घोंटते वातावरण में
एक सिहरन भी हुई तो
विकृतियों के छल भरे
षड्यंत्र का विस्फोट होगा
मलय के झोंके चलेंगे
अमृतवर्षी मेघ
उमड़ेंगे, झरेंगे

आलोच्य कृति की कविताओं का मूल स्वर बाह्य परक है। अधिकाँश कविताएँ तो बिल्कुल सामयिक संघर्ष और युगीन मूल्यों-अवमूल्यनों के ऊहापोह पर आधारित हैं। उदाहरण के लिए प्रारम्भ की चीनी आक्रमण से सम्बधित कुछ कविताएँ, 'लुमुम्बा की स्मृति में,' 'भोलेपन की कीमत', बाढ़ पीढ़ितों के शिविर में', 'युग और युग', 'द्वीप-लोप' (नेहरू निधन पर), '२७ मई', 'मूल्य चुकाने वाला', '२६-१-६३', 'शिवपूजन सहाय के देहावसान पर', 'ड्राइंग रूप में मरता हुआ गुलाब', (गजानन माधव मुक्ति बोध की स्मृति में), 'विक्रमादित्य का सिंहासन', 'गाँधी', 'युगपंक' 'युगताप', 'आधुनिक निंदक', 'क्रुद्ध युवा बनाम क्रुद्ध वृद्ध', 'शृंगालासन', 'गैंडे की गवेषणा', 'काठ का आदमी', 'माँस का फर्नीचर', 'सात्र के नोबेल पुरस्कार ठुकरा देने पर' कविताएँ ऐसी ही कविताएँ हैं। कुछ इनसे अलग ऐसी कविताएँ भी हैं जिनमें कवि अपने अन्तर की प्रतिक्रिया को स्वानुभूति, और सूक्ष्म अनुभव-अध्ययन गत सीधी सच्चाई से व्यक्त कर देता है। उदाहरण के लिए 'दयनीयता : संघर्ष : ईर्ष्या', 'कवि से, केंचुआ', 'सृजन और साँचा', 'दिये की माँग', 'ऐसा क्यों करता हूँ', 'दो 'रातें', 'जीवन-परीक्षा', 'आभास', 'एक फ़िकर-एक डर', 'माली की साँझ', 'धरती की सुगंध', 'शब्द-शर', 'नया पुराना',—कविताएँ ऐसी ही हैं। संग्रह में ऐसी भी कविताएँ हैं जो केवल संख्या वाचक हैं—जैसे, 'कु-क-डूँ-कूँ', और 'सुबह की बांग'। पर दो चट्टानें की तीन कविताएँ ध्वनिधारा, भावचिंता-धारा और गम्भीर स्थाई प्रभाव की दृष्टि से प्रतिनिधि विशेष हैं—'खून के छापे', 'सात्र के नोबेल पुरस्कार ठुकरा देने पर' तथा 'दो चट्टानें अथवा सिसिफस बरक्स हनुमान !'

कवि की इस कृति को पढ़कर अहम प्रश्न यह उठता है कि यहाँ जिस युग-यथार्थ को वाणी बद्ध किया गया है क्या वह अभिव्यंजना के उन आयामों के अनुकूल (अनुसार नहीं) है आज का पाठक जिसकी अपेक्षा महसूस करता है? शायद इसका उत्तर अनुकूल न मिले।

प्रस्तुत कृति की अनेक कविताओं में निसंदेह युग-यथार्थ जन्य प्रतिक्रिया को ईमानदारी से व्यक्त किया गया है। अभिव्यंजना में भाषागत वैभव भी है। अनेक स्थलों पर कथन में संयमित ऊर्जा भी है। प्रायः गम्भीर सूक्ष्म-बोध और तीखे युग-सत्य को संक्षिप्तता व ध्वन्यात्मकता और कहीं वर्णन-विस्तार के द्वारा भी व्यक्त किया गया है। आज का प्रबुद्ध पाठक मन-वचन-कर्म की सूक्ष्मता तथा संक्षिप्तता के द्वारा विस्तार और

व्यापकता को समेटकर उसका सम्पूर्ण सुख या लाभ उठाना चाहता है। इस चाहना के पीछे विशुद्ध विज्ञानवादी दृष्टिकोण है। लेकिन जहाँ इस कृति की कविताओं में वर्णन-विस्तार नहीं है वे युग-यथार्थ के प्रभावाभिव्यंजन द्वारा पाठक को अभिभूत कर लेती हैं। 'दो चट्टानें' कृति में ऐसी विशिष्टता से पूर्ण कई कविताएँ हैं। उदाहरण के लिए 'सूर समर करनी करहिं', 'उघरहिं अंत न होइ निबाहू', 'खून के छापे,' 'शृंगा-लासन', 'गैंडे की गवेषणा', 'कवि से केचुआ' आदि कविताएँ गम्भीर सूक्ष्म-बोध और तीखे युग-सत्य को संक्षिप्तता, ध्वन्यात्मकता तथा व्यंगमय शैली द्वारा अभिव्यक्त करने की दृष्टि से उल्लेनीय हैं। ये कविताएँ अपने युग-जग-जीवन के प्रति जागरूक बने रहकर जीवन जीने वाले पाठक को प्रभावपूर्ण लगने वाली हैं। क्योंकि इनमें न तो अति बौद्धिकता की अभिव्यंजनागत पेचीदगी है और न अनर्गल आवेश को उगलने वाला कोरा शब्द-जाल है। यहाँ विषय और वाणीगत संयम और संतुलन है। देखिये—

शब्द की भी
जिस तरह संसार में हरएक की
कमजोरियाँ, मजबूरियां हैं···
शब्द सबलों की
सफल तलवार हैं तो
शब्द निबलों की
नपुंसक ढाल भी हैं।

× × ×

जिस तरह जयकार सुनने का
किन्हीं को रोग होता
मर्ज होता किन्हीं को
जय बोलने का।

× × ×

व्यक्ति संघ-विधान से
जब जूझता है
जीतता भी तो,
बहुत कुछ टूटता है।

इस कृति को पढ़कर दूसरा प्रश्न यह उठता है कि इसमें जो है वह विशुद्ध अनुभूतिपरक कितना है? उत्तर में कहा जा सकता है कि जिन कविताओं में (और कई कविताओं के कई अंशों में) कवि ने सामयिक प्रभाव से गहरे उतर कर अपनी मुक्त मानसिक स्थिति को सम्प्रेषित किया है। यहाँ बहुत कुछ विशुद्ध अनुभूतिपरक भी व्यक्त हुआ है। यहाँ कवि का मानसिक असन्तोष, उसका आत्म-पीड़न और युग-चिंतन वर्तमान मन-जीवन की स्थितियों का साक्षी या सहभोक्ता बन जाता है। यहाँ

कवि और उसका सृजन वस्तुतः महान लगता है। उदाहरण के लिये 'दयनीयताः संघर्ष ईर्ष्या,' 'दिये की माँग', 'ऐसा क्यों करता हूँ', 'आभास', 'एक फ़िकर-एक डर', 'शब्द-शर' कविताएँ पठनीय हैं। ये कविताएँ वर्तमान व्यक्ति की उस मनःस्थिति और आत्म-पीड़न को ध्वनित करती हैं जो आज अस्तित्व के विघटन के कारण उत्पन्न हो रहा है। इन कविताओं में कवि बाह्य स्थूल-तत्वों को अतिक्राँत करता हुआ जान पड़ता है और आन्तरिक अकुलाहट पर काबू पाने का साधारणीकृत प्रयास ध्वनित करता है। यह सारा कुछ कवि के अंतर्मंथन और उसकी साधना का अनुपम साक्ष्य है। यहाँ बाह्य द्वन्द, अद्वंद के धरातल पर पहुँच कर समाप्त होता हुआ जान पड़ता है। देखिये—

यात्रा पूरी हुई
या नहीं ?—
इसको कौन निश्चय से बताए,
किंतु यात्री
आज पूरा हो गया है।

× × ×

वह परीक्षा कौन जिसकी
सब परीक्षाएँ तैयारी,
और देने में जिसे,
मिट जायगी काया विचारी,

× × ×

किंतु चिंतन-मनन पर
जीवन ठहर सकता नहीं है
क्या न उल्टे ओर तेजी से गुजरता ज्ञात होता,

× × ×

क्षरण होता है प्रतिक्षण कुछ
कि जीवन प्रस्फुरण हो·········
क्षरण रोको, मरण रोको
और जीवन-प्रस्फुरण स्वयमेव रुकता
प्रकृतिगत अमरत्व कितना
रुग्ण है, दयनीय है, करुणा-जनक है।

× × ×

अपने युग में
अपने गुण का ढोल पीटने,
स्वार्थ सजोने वालों को
हमने कम देखा ?

काश कि उनको संयत रखती
हनूमान के आत्मत्याग की
उदाहरण की, लक्ष्मण-रेखा
× × ×
फ़ारमूलों में कभी बंधता न जीवन
शब्द-संख्या फ़ारमूले ही नहीं तो और क्या हैं ?
तथ्य केवल,
व्यष्टि करके मुख्यता भी प्राप्त
अपने आप में सब कुछ नहीं हैं.........
सिद्ध प्रतिभा तो वही है
सामने जिसके निखिल संसार
मुँह बाएँ खड़ा हो.........

विशिष्टता यह है कि यहाँ व्यक्ति-जीवन की कटुता अथवा अनास्था की ध्वनि न हो होकर आस्था एवं समवेदना की ध्वनि प्रधान है—

"पंथ के कुश-कंटकों औ'
क्रूर पत्थर कंकणों ने
जो किये थे घाव निर्मम
आज मुझको वे पुरे-से लग रहे हैं।
दर्द, पीड़ा, टीस गायब;
अब किसी से या किसी भी तरह की
सच, है नहीं मुझको शिकायत !
× × ×
हो किसी का
एक तरफी दान कवि का नहीं होता......
× × ×
इसीलिए ऊँचाई की अन्तिम उठान पर
शक्ति नहीं रे
भक्ति चाहिए
भक्ति विनत है
और उसी का किसी जगह अवरुद्ध न पथ है।

अब प्रश्न यह उठता है कि इस कृति की विशेष कविताओं—'खून के छापे','सात्र के नोबेल पुरस्कार ठुकरा देने पर' और 'दो चट्टाने' अथवा सिसिफ़स बरक्स हनुमान' में कौन-सी विशेषताएँ हैं ?

'खून के छापे' कविता पढ़ते ही एकदम जिज्ञासा जागती है कि ये छापे किन के हैं और क्यों ये कवि द्वार पर नर-कंकालों द्वारा लगाये जा रहे हैं ? कविता पढ़ते हुए

पता चलता चलता है कि कवि-द्वार पर लगे ये खून के छापे उन युग-त्रासित व्यक्तियों के हैं जो सदियों से शोषकों द्वारा अपना खून चुसवाते आ रहे हैं—मष्ट मारे, मुर्दों की तरह ! क्योंकि शोषण-व्यवस्था को अपनी क्रूर नियति मान कर उन्होंने मानवीय संघर्ष के सारे हौसले गंवा दिये हैं । ये खून के छापे उन विद्रोहियों के खून के हैं जिन्होंने कभी क्रूर और काले शासन के खिलाफ आत्म-विमुक्त होने के लिये भीषण नारे बुलन्द किये थे, लेकिन वे पीस दिये गये । ये खून के छापे उन देशभक्तों के खून के हैं जिन्होंने अपनी धरती की मुक्ति के लिये स्वतन्त्रता संग्राम के अंगार-पथ पर निर्भयता से पाँव बढ़ाये थे, लेकिन आज जो अनीति और तानाशाहियत की चट्टान पर पटके जाते हैं । ये खून के छापे उन मेहनतकशों के खून के हैं जो नगर-सभ्यता के शिल्प को संवारते रहे, लेकिन स्वयं कुलीनों की क्रूरता के कारण बेपनाह, फुटपाथों पर अपने जीने के अधिकार का गला चुपचाप घुटवाते चले गये । ये खून के छापे उनके खून के हैं जो देश-विभाजन की रक्तिम ऐतिहासिक रेखा के शिकार होकर अपने ही देश में परदेसी होकर घोर अभाव और उपेक्षा की दमघोटू सांसें गिन रहे हैं । ये खून के छापे उन के खून के हैं जो कभी राष्ट्र-रचना के मधुर सपनों का संसार सेते थे, लेकिन आज वे लोभी, स्वार्थी और महत्वाकांक्षी अँध-शासकों-प्रशासकों के अन्याय के प्रहारों से ज़ख्मी हैं । लेकिन आज अन्याय, क्रूरता, नीचता और जघन्य अपराध करने वालों की तरफ कौन अँगुली उठा सकता है ? अतः ये नर-कंकाल, कवि-कवि के द्वार पर खून के छापे लगाते जा रहे हैं । क्योंकि, इस हत्या-काण्ड के रहस्य की पोल कवि की और मात्र कवि की ही निर्भय वाणी खोल सकती है । कवि अपने उत्तरदायित्व को निभाने से कभी मुँह न मोड़ेगा । वही युग, शासन और व्यवस्था की नृशंसता, अनीति और अमानवीयता के विरुद्ध अपने ज्वलित शब्दों द्वारा जनमन में महान क्राँतिकी ज्वाला जगाने ये समर्थ हो सकता है ।

इस प्रकार कवि ने इस कविता में इस युग के यथार्थ को, ऐतिहासिक परिवेश में, बुद्धिसात करके उसकी मर्मबेधी और रोमांचकारी अभिव्यंजना की है और अन्ततः कवि के दायित्व और उसकी सद्सामर्थ्य की व्यापकता को ध्वनित किया है । सम्पूर्ण कविता में यद्यपि कवि की बौद्धिक धरातल पर युग-समीक्षा की प्रक्रिया प्रधान है, पर उसे एक स्वप्न के माध्यम से व्यक्त किया गया है । कविता का आरम्भ कुछ इस तरह से होता है जो सहसा एक सपने के सहारे क्षिप्रगति से विस्मय और कुछ वीभत्स भावों को जगाता हुआ शोषित व जीवनाहत व्यक्तियों के प्रति मानवीय करुणा के भावों की भूमिका बाँधता चला जाता है । और अन्त में आज के कवि के क्राँतिकारी कर्तव्य की सद्सामर्थ्य को विद्युतगति से ध्वनित कर देता है । यों पाठक कविता के आरम्भ करने और उसके अन्त होने के मध्य में जो कुछ होता महसूस करता है उसकी भूमिका में कहीं अपने को तो कहीं अपनों को तो कहीं पड़ौसियों को अवश्य पा लेता है । सचाई यह है कि अभी हमारे समाज में अनेक बटुकेश्वरदत्त जैसे व्यक्ति बच्चन की इस कविता की वास्तविकता की साक्षी दे सकते हैं । इतना ही नहीं, विश्व-इतिहास में

राजनीति के इस कुचक्र की सनसनीखेज घटनाओं का ब्यौरा ढेर-सा है। आलोच्य कविता इतिहास के इसी ज्वलंत पक्ष की पीठ पर खड़ी है।

× × ×

हिन्दी के बुद्धिजीवियों की सेवा में 'सात्र के नोवेल-पुरस्कार ठुकरा देने पर' कविता निश्चय ही पुरस्कार लोलुप तथाकथित साहित्यकारों पर एक करारी चोट करती है। वस्तुतः हिन्दी की मनीषा के लिए यह एक दुर्भाग्य की बात कही जायगी कि उसका सर्जक अपने सृजन को (स्वाभिमान को भूलकर) हथकंडों के बल पर पुजवाने की कामना करता है। सम्भवतः अपनी कृति पर मिले इनाम को वह अपने मूल्यवान सृजन की महानता का सर्वोच्च प्रमाणपत्र भी मानता है और फिर 'नोबेल-पुरस्कार'? यह विश्वमान्य पुरस्कार प्राप्त करने की कामना किसे न होगी? संत-कवियों का ज़माना कभी का लद गया है। नोवेल पुरस्कार की अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा है। संसार भर के पत्र इसे पाने वाले साहित्य-सिकन्दर की प्रतिष्ठा को ही प्रचारित नहीं करते बल्कि वे तो इतने उदार हैं कि जिन साहित्यकारों का नाम तक नोबेल पुरस्कार पाने की सूची में प्रस्तावित होता है उसकी भी 'ध्यानाकर्षक' सूचना छापते हैं। सन' ६५ में आपने हिन्दी के साहित्यकार 'अज्ञेय' जी की नोबेल पुरस्कार विषयक प्रस्तावित सूचना पत्रों में पढ़ी होगी। पर ये पुरस्कार उन्हें नहीं मिला—शायद कहीं कुछ पुरस्कारोपलब्धि के अनुकूल न बैठा हो। खैर·········

बच्चन की सात्र सम्बन्धी कविता की साहित्यिक अड्डों-अखाड़ों में यदा-कदा मैंने अजीब-अजीब प्रतिक्रियाएँ जानी। बुद्धिजीवियों की बातें कभी-कभी बड़ी निराली होती हैं। एक ने कहा—'भई, बच्चन भी साठ के नज़दीक हैं। उन्हें तो कोई पुरस्कार नहीं, मिला। अतः उन्होंने पुरस्कार विरोधी कविता ही लिख दी।' दूसरा बोला—बंधु, बच्चन ने अच्छा मोहरा पकड़ा।' तीसरा बोला—'क्या फ़र्क पड़ता है? कभी जब बच्चन को नोबेल पुरस्कार मिलने की बात चलेगी तब बात करेंगे।'

लेकिन मुझे हिन्दी के तथाकथित बुद्धिजीवियों की बुद्धि का ये हाल देखकर दुःख नहीं होता, दया आती है। मैंने कई बार इस कविता को यह जानने के लिए बहुत जागरूक होकर पढ़ा है कि क्या कहीं इसमें कवि की अपनी कुण्ठा या हीनता की ध्वनि है? लेकिन मुझे हर बार निराश होना पड़ा है।

उस दिन आकाशवाणी के लान पर मुद्राराक्षस से इस कविता के बारे में चर्चा चली तो उन्होंने एक मार्के की बात कही। बोले, 'भले ही बच्चन जी की यह कविता आज के पुरस्कार वादी युग में नक्कारखाने में तूती को आवाज़ हो, लेकिन जोशी जी, बच्चन प्रतिभावान के स्वाभिमान के प्रति आस्थावान और ईमानदार कवि हैं। और इसमें किसे शक होगा?

इस कविता के लिख जाने के लगभग-दस साल पहले, तिथि २०.११.५७ को, मुझे बच्चन जी का एक पत्र मिला था। उससे मुझे लगा कि इतने वर्ष पहले ही बच्चन के दिमाग में साहित्यिक पुस्तकों पर पुरस्कार मिलने वाली बात पर एक विरोधी धारणा

की जड़ जमी हुई थी—यह कविता जैसे उसकी प्रस्फुटित शाखा है ।

इस कविता में कवि ने अपनी 'एकाँत संगीत' की ९३वीं कविता की ये पंक्तियाँ प्रस्तुत की हैं—'जिन चीज़ों की मुझे चाह थी; जिनकी कुछ परवाह मुझे थी; दीं न समय से तूने, असमय क्या ले उन्हें करूँगा ! कुछ भी आज नहीं मैं लूँगा ।' एकाँत-संगीत की रचना लगभग २६-२७ वर्ष पहले हो चुकी थी। और इच्छित चीजों को असमय देने की दरियादिली दिखाने वालों के प्रति कवि में तभी कितना आक्रोष था, यहाँ स्पष्ट है । अतः इन तथ्यों के आधार पर मैं यह कहने में पूरी तरह आश्वस्त हूँ कि बच्चन ने सात्र के प्रति यह कविता अपनी किसी व्यक्तिगत कुँठा या कुढ़न से नहीं लिखी । यह कविता उनकी मुक्त धारणा की बलवती काव्याभिव्यक्ति है जो सात्र के नोबेल पुरस्कार ठुकरा देने वाली अनुकुल घटना के कारण विद्यूत गति से फूट पड़ी ।

इस कविता में कवि ने कुछ महत्वपूर्ण पक्षों पर प्रकाश डाला है जैसे प्रतिभाशाली व्यक्ति का अस्तित्व, उसका स्वाभिमान, उसकी प्रतिभा की शक्ति, उसकी उपेक्षा अवमानना, उसका असमय सम्मान, विश्वविद्यालयों, अकादमियों और सरकारों की कुन्द परख, कुटनीतिकता, क्षुद्रता ! यहाँ प्रतिभावान व्यक्ति के अस्तित्व की रक्षा के प्रति कवि ने जो कुछ कहा है वह हृदय से कहा है। इस कविता में शास्त्रीय काव्य-तत्वों का समावेश न होते हुए भी कोरा बुद्धिबल और तर्क-जाल नहीं है । इस कविता का सम्पूर्ण प्रभाव उसमें निहित कवि की प्रतिभावान के प्रति आस्था और उसकी अस्मिता की सहज अभिव्यंजना में है । प्रतिभाशाली व्यक्ति के जीवन में एक समय आता है जब उसके लिए संस्थागत पुरस्कारों या सम्मानों का मूल्य सर्वथा सतही और व्यर्थ हो जाता है । यही उसके व्यक्तित्व का चरम विन्दु या विराट्त्व है कि—

मान या अवमानना अथवा उपेक्षा
इस समय पर
इंच भर ऊपर उठा सकती न उसको
इंच भर नीचे गिरा सकती न उसको···
मान औ' अपमान खोते अर्थ अपना
कर चुका अभिव्यक्त जब व्यक्तित्व
सब सामर्थ्य अपना ।

इस कविता में कवि ने प्रतिभा का पक्ष मात्र ही नहीं लिया वरन उसके प्रति अगाध आस्था व्यक्त की है—

संस्थाएं हों भले ही विश्व वंदित
यह नहीं अधिकार उनको—
क्योंकि उनके पास धन-बल—
जिस समय चाहें दिखाएँ मान-टुकड़ा

और प्रतिभा दुम हिलाती
दौड़ उनके पाँव चाटे।

और कविता में क़लम की महनीयता और उसकी महत्ता के प्रति कवि की हिमायत किसी टीकाटिप्पणी की गुँजाइश नहीं रखती।

पूरी कविता में सात्र तो मात्र एक जीवंत उदाहरण है। कवि ने उसके व्याज से व्यक्ति और उसकी प्रतिभा, उसके स्वाभिमान और सम्मान की प्रबुद्ध, प्रबल और प्रधान व्यंजना की है। संस्थाओं के स्वार्थगत और अन्यायपूर्ण सम्मान तथा पुरस्कार प्रदान करने वालों के प्रति चोट करना कवि का मूल मंतव्य रहा है। प्रेमचन्द जी होते तो शायद इस कविता के महत्व पर कुछ कहे बिना न रहते। मुझे एक विद्वान वयोवृद्ध ने बताया कि वे भी अपने महान् उपन्यास 'गोदान' पर पुरस्कार न पाने के सिलसिले में एक कडुवा अनुभव रखते थे। जो हो, पर ऐसी उपेक्षित प्रतिभाओं की कमी तो नहीं है। अतः आलोच्य कविता के द्वारा कवि की यह चोट भले ही नक्कारखाने में तूती की आवाज़ जैसी कही जाय, लेकिन महान प्रतिभा के प्रति प्रतिभावानों और प्रबुद्ध पाठकों को कविता पढ़कर क्या हनूमान को शक्तिबोध कराए जाने जैसा ही महसूस नहीं होता ? इस कविता में भी बच्चन अन्ततः 'रघुपतिवादी' अस्तित्ववाद की जय बोलते हैं। व्यक्ति के अस्तित्ववाद की प्रतिष्ठा के लिए उनका यह भारतीय दृष्टिकोण अत्यन्त आदरास्पद है। इस चिन्ताधारा में बच्चन का पश्चिमी व्यापक अध्ययन-मनन-चिन्तन भारतीय दर्शन की उदात्तता से मंडित हुआ लगता है, जिसे मैं उनके कवि की महिमावान एप्रोच कहूंगा। इस कविता का अन्त और सिसिफ़स बरक्स हनुमान, कविता का उत्तरार्ध इसी महिमावान एप्रोच का क्लाइमेक्स है।

क़लम की महनीयता पर यदि आस्था है तो कहूँ कि इस कविता को पढ़कर प्रतिभा के प्रति अखण्ड आस्था का बोध होता है। और आपको ? और अगर आपका उत्तर अनुकूल है तो आलोच्य कविता की सार्थकता और शक्ति अपने आपमें स्वयं सिद्ध है।

× × ×

आलोच्य कृति की सबसे लम्बी और अन्तिम कविता है 'दो चट्टानें या सिसिफ़स बरक्स हनुमान।' अध्ययन, चिन्तन और मनन की दृष्टि से कवि की यह अत्यन्त शक्तिशाली कविता है—सम्भवतः मुक्तछंद की कवि रचित सर्वश्रेष्ठ कविता !

कविता से पूर्व स्वयं बच्चन जी ने इस के सृजन के कथा-कारणसूत्र सुलझा दिये हैं। दंतकथाओं के आधार पर कविता स्थूलतः चलती है। इस विषय पर अधिक कुछ कहना संगत नहीं। कवि का संकेत ही काफ़ी है। यहाँ कवित्व के विषय में कुछ कहने की गुंजाइश है।

कविता के सामान्यतः दो भाग हैं—पूर्वाध और उत्तरार्ध। इनका प्रतिनिधित्व दो पौरुष करते हैं—पहला सिसिफ़स का और दूसरा हनुमान जी का ! पौरुष के इन दो प्रतीकों की शक्तियाँ दो चट्टानें कही जा सकती हैं। ज़रा अधिक गहराई से सोचने

से ये दो शक्तियाँ क्रमशः पश्चिमी और पूर्वी संसार की लगती हैं। सिसिफ़स पश्चिम का प्रतिनिधित्व करता है तो स्पष्ट है कि हनुमान जी पूरब का प्रतिनिधित्व करते हैं। ये दोनों प्रतीकपात्र पौराणिक चरित्र हैं और इनके चरित्र-चित्रण के मूल में जिस पौरुष का ज्वार उठता है कवि ने उसका वर्णन सशक्त शब्दावली में किया है। पौरुष के प्रतीक सिसिफ़स और हनुमान के प्रचण्ड व्यक्तित्व को शब्दों में जैसे यहाँ सजीव कर दिया गया है। यहाँ उदाहरण देकर काम नहीं चलेगा। रस तो पूर्ण कविता पढ़कर ही आता है। पर संकेत रूप में कहा जा सकता है कि सिसिफ़स का उद्धत रूप इस स्थल पर महसूस करते ही बनता है—'बाम गिरि पर वह खड़ा है······कि पूरे शैल पर शासन करे वह !' हनुमान जी के भव्य रूप-चरित्र के वर्णन में कवि ने जिस संयम और कौशल को प्रदर्शित किया है वह अद्‌भुत और अपूर्व है।

इस कविता में मौत के प्रति कवि का अभिव्यंजन अत्यन्त प्रबल और प्रभावशाली है। मौत के भयंकर क़दम कवि के जीवन पर बहुत पहले ही अपनी गहरी छाप छोड़ गए थे। इसलिए इस कविता में मौत की मर्मबेधी, सहज व सत्य ध्वनि सुनाई पड़ती है।

जीवन और यौवन के प्रति कवि की सत्य-कल्पना मिश्रित भावाभिव्यंजना "किन्तु जीवन मनन पर" से लेकर "कामिनी, बन संगिनी, अर्द्धांगिनी बन गई नित की" तक बहुत रंग-रूप-रसमई बन पड़ी है। सिसिफ़स के प्रसंग में अभिव्यक्ति आंधी की तरह चलती है। पर हनुमान जी का चरित्र-चित्रण आरम्भ होते ही कवि की वाणी में पूर्ण संयम और वैदग्ध्य आ जाता है। उद्दाम भावना आँधी की तरह सहसा ओझल हो जाती है। भक्ति-रस की बदली जैसे बरस पड़ती है—

नील शिखा इस पुण्य पीठ को
आओ पहले शीश झुकाएँ
कहने की आवश्यकता है?
उसके आगे
क्या न तुम्हारा शीश
स्वयं झुकता जाता है?

यही तो राम भक्त महावीर हनुमान का पुण्य-स्थल है !

सम्पूर्ण उत्तरार्ध में हनुमान जी के चरित्र के प्रति कवि का भक्ति भाव पूरित हृदय बोला है। 'राम' उसके केन्द्र हैं। इस स्थल को पढ़कर सहसा निराला जी की प्रसिद्ध कविता 'राम की शक्ति पूजा' की याद आ जाती है। निराला जी की कविता में यदि भक्ति-शक्ति का उदात्त समन्वय और ओज है तो बच्चन जी की इस रचना में इसके साथ ही व्यक्ति के अस्तित्ववाद की आत्म-परमात्ममई चिन्ता का सहज शैली में विराट बोध भी ध्वनित है।

'शक्ति' का साकार व स्थूल जड़-संकुचित प्रतीक है सिसिफ़स ! और 'शक्ति' का का साकार, सूक्ष्म चैतन्य तथा विराट् प्रतीक हैं हनुमान जी ! कविता के इन दोनों प्रबल प्रतीकों की सार्थकता अपने में स्वतः सिद्ध है। निश्चिय ही आज पश्चिमी

व्यक्ति-शक्ति की अपेक्षा पूरब की शांत-संतुलित-सर्वहितकारी व्यक्ति-शक्ति की अपेक्षा है, जो महान और महिमावान है।

कविता में स्थल-स्थल पर कुछ ऐसी उक्तियाँ भी आती हैं जो अपनी शक्ति-दीप्ति से मन-मस्तिष्क पर गहरे चिह्न डाल जाती हैं; जैसे—"एक तरफा दान कवि का नहीं होता,"—'मृत्यु ! मानव, सृष्टि के सम्राट् की कितनी बड़ी असमर्थता है। किन्तु चिंतन-मनन पर जीवन ठहर सकता नहीं है।' यहां नारी प्रतिनिधि या प्रतीक है प्रकृति की, जो सृजन की अधिष्ठात्री है। (यहाँ संकेत दे दूं कि प्रेयसी के रूप से विशिष्ट नारीत्व को कवि बच्चन ने सम्भवतः इतने शुद्ध रूप में प्रथम बार वाणी दी है)।

मौत जग-जीवन के प्रस्फुरण के लिए अनिवार्य है। इस प्रकृत व शाश्वत सत्य को कवि ने इस कविता में नये ढंग से व्यक्त किया है—'मौत आए की सदाएँ लगीं उठने', से लेकर 'उत्साह बन उल्लास बनकर मुस्कराने' तक स्थल पठनीय है। इस स्थल पर सहसा गीता का यह श्लोक याद हो आता है—

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय,
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा,
न्यन्यानि संयाति नवानि देही।

(गीता अध्याय २-२२)

पर बच्चन ने इस स्थल पर आत्म-परमात्म तत्व-बोध से अधिक जीवन-मरण विषयक सहज सत्य-तत्व को महत्व दिया है, जो विज्ञान सम्मत होते हुए भी शास्त्र या तर्क सम्मत नहीं वरन् विशुद्ध कवित्वमय है, सरस है।

और कुल मिलाकर सिसिफ़स बरक्स हनुमान कविता अभिव्यक्ति की दृष्टि से अत्यन्त शक्तिशाली रचना है, जो कवि की एक सुदीर्घ शब्द-शिल्प-साधना और प्रौढ़-परिपक्व मानसिक चिन्ता की दीप्ति से मंडित है। कहूं कि यह रचना खड़ी बोली की गिनती की उदात्त रचनाओं में एक और महत्वपूर्ण कड़ी है।

दो चट्टानें कृति को पढ़कर सम्पूर्ण प्रभाव यह पड़ता है कि कवि वर्तमान युग के ऊबड़-खाबड़ धरातल पर एक ऐसी जगह पर खड़ा है जहाँ से यह देख पा रहा है कि विषम परिस्थितियों और विषाक्त विकृतियों से सामान्य युग-जीवन घिरा है। वहाँ कुछ ऐसा असंगत हैं जिसे नहीं होना चाहिये था और शायद इसके साथ ही कवि सामान्य व्यक्ति-जीवन के जीने का और उसकी मुक्ति का एक नवक्षितिज भी देखा चाहता है। कवि के इन हलचली बिम्बों और प्रतीकों का संतुलित और शक्तिशाली अभिव्यंजन दो चट्टानें कृति की सारी कविताओं को ध्यान से पढ़ने पर ज्ञात होता है।

और इसमें कोई सन्देह नहीं कि दो चट्टानें कृति में कवि अपने वर्तमान युग-जीवन का संश्लिष्ट, सूक्ष्म, समन्वित और समर्थ चित्रण करने में (व्यापक ऐतिहासिक परि-

वेश में) सामाजिक, राजनीतिक और इन सबसे ऊपर मानवीय दृष्टि से निर्विवाद रूप से सफल हुआ है, जिसकी पूर्ण महत्ता चाहे अभी स्थापित न हुई हो लेकिन भविष्य उसका है ।

और सारत :—

दो चट्टानें संग्रह की कविताओं में पचास प्रतिशत अनुभव, पच्चीस प्रतिशत अध्ययन और पच्चीस प्रतिशत अनुभूति-कल्पना का समाहार है। अतः रस सिद्धान्त की कसौटी पर इस कृति को कसना और मूल्यांकन करना न्यायसंगत न होगा। इस कृति की कसौटी युग-जीवन-मन की सच्चाई हो सकती है। इस सच्चाई के प्रति सजग रह कर ही इस कृति का सही मूल्याँकन हो सकता है।

दो चट्टानें संग्रह की कविताओं की बाह्य और अन्तर परक अभिव्यंजना की उपलब्धियों का पूर्णतः भावन करने पर यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि जहाँ अभिव्यंजन बाह्य परक है वहाँ प्रभाव विशिष्टि नहीं है। पर जहाँ अभिव्यंजन अंतर परक है वहाँ प्रभाव विशिष्ट होकर भी साधारणीकृत है। यों कवि अपनी सब्जेक्टिव सर्जना में अगर पूर्णतः सफल है तो आब्जेक्टिव अभिव्यंजना में अधिक सफल नहीं भी है।

यहाँ भाषा में समाहार शक्ति विशेष है। 'तेरा हार' से लेकर दो चट्टानें यानी इक्कीस मौलिक काव्य-संग्रहों में मुहावरों और लोकोक्तियों का जितना अधिक काव्य-संगत और समर्थ प्रयोग इस कवि ने किया है, पूरे विश्वास से कहा जा सकता है कि किसी दूसरे समर्थ कवि ने नहीं किया-निराला जी ने भी नहीं किया। शब्दों की सरलता के द्वारा बच्चन ने अपने काव्य को जितना सम्प्रेषणीय बनाया है खड़ी बोली काव्य में ऐसा दूसरा प्रयास देखने को नहीं मिलता। परिणाम स्वरूप, बच्चन का काव्य सच्चे अर्थों में लोक प्रिय होने का सदा अधिकारी बना रहेगा। देशज, उर्दू, तद्भव, आंचलिक व अंग्रेजी शब्दों और 'त' प्रत्यय के (इवानियत, आदमियत साधारणता आदि) प्रयोगों द्वारा बच्चन की जिस समाहार पूर्ण काव्य-भाषा का स्वाभाविक विकास हुआ है। खड़ी बोली काव्य की एक बड़ी उपलब्धि है, जिसकी जब भी सम्यक समीक्षा की जायगी तो मेरा अनुमान है कि बच्चन की शब्दशिल्प-साधना अपनी महत्ता में अकेली सिद्ध होगी।

बच्चन की मुक्तछंदी नवीन काव्य सर्जना में प्रतीकों का प्रयोग वस्तुतः बहुत सशक्त और सुलझे रूप में हुआ है। ये प्रतीक परदेसी नहीं लगते और नहीं ये अपने अजनबीपन से पाठक को अँचम्भे में डालते हैं। प्रायः प्रत्येक प्रतीक भाव-विचार के क्षेत्र में ऐसा प्रकाश डालता है जिससे हमें अपने कुछ महत्वपूर्ण गुम हुए का सहसा पा जाना-सा महसूस कहते हैं। और इस दृष्टि से मैं बच्चन के नए काव्य-सृजन को 'नयी कविता' के सृजन से अधिक महत्वपूर्ण मानता हूँ। मेरे मत से प्रतीक को 'सायरन' या 'सर्च लाइट' के जैसे प्रभाव को लेकर व्यक्त होना चाहिए। मुझे यह स्थापना बहुत सही लगती है कि जो प्रतीक भारतीय चेतना के प्रवाह

में उल्काओं की तरह अंतरिक्ष से गिरे हैं उन्हें जन-चेतना स्वीकार नहीं करेगी बच्चन के प्रतीक भारतीय जन चेतना में से उभर कर आते हैं—जैसे सिसिफ़स बरक्स हनुमान कविता में हनुमान का प्रतीक !

बहुत दिन बीते

कोई बीस वर्ष बीते मैंने बच्चन जी की मधुशाला पढ़ी थी। तब मेरी रेख• उठान जवानी थी। इसके बाद मैंने उनका प्रत्येक काव्य-संग्रह पढ़ा। पढ़ा क्या, उसमें अपने को ही पाता गया, खोता गया। न जाने कितने गीत मेरे गले में ही रुंधे रह गये। कितने गीत गला फाड़कर गूँजे और कितने साँसों ही साँसों में सुनाई पड़ते रहे हैं। पर बहुत दिन बीते 'बुद्ध और नाच-घर' पढ़ा तो मेरे मन ने पूछा—'तुम' अब गीत नहीं लिखते ? आपही उत्तर मिला—'हाँ, गीतकार बच्चन अब बदल जाना चाहता है।' मैंने सोचा, शायद उसके गीत गाने की उमर निकल गई हैं। शायद मेरी गीत गाने की उमर भी निकलती जा रही है। पर इससे क्या फ़र्क पड़ता है ? नौजवानों के लिये मधुबाला, मधुकलश, निशा निमंत्रण, सतरंगिनी और प्रणय पत्रिका में क्या कम गीत हैं ? फिर संसद में, बड़े दफ्तरों में, मंत्रालयों में, थानों में, कारखानों में और राजनीतिक जल्सों-जलूसों में भला गीत गाने-सुनाने की क्या ज़रूरत है ? फिर फिल्मी गीत क्या कम हैं जो बच्चन जी गीत रचें। जय हो रेडियो सीलोन और विविध-भारती की ! मगर फिर भी अगर तुम चाहोगे तो बच्चन गीत भी रचेगा। तो लो बच्चन से खलयुग के कोरस ! इन्हें गला फाड़-फाड़ कर गाओ और कानों में जो तेल डाले मस्ता रहे हैं उन्हें सुनाओ।[1] है हिम्मत ? खैर, कुछ भी हो, पर 'बुद्ध और नाचघर' के बाद बच्चन की किताबों में अधिकांश अगीत हैं गो ये सिलपट व गद्यात्मक न होकर लय और ध्वनि के समन्वय की ऊँची उपलब्धि लिये प्रतीत होते हैं। इसकी सबसे ऊँची चोटी है 'दो चट्टानें' कृति ! और उसके बाद, इस लेख को लिखते वक्त तक की (८-२-६८) नवीनतम कृति है 'बहुत दिन बीते'। दो कम साठ के कवि

---

१. लायक, फायक, नायक डरकर अन्दर बैठे;
लंठ, लफंगे, लुच्चे बाहर मूछें एंठे
कूद रहे हैं, फाँद रहे हैं मार कुलाचें।—
जुल्म सुना तो तुमने कानों उँगली कर ली,
भ्रष्टाचार दिखा तो आँखों पट्टी धर ली,
चुप्पी साधी, खुलकर खेली गुंडागर्दी,
औ गांधी के बंदर तीनों, लाज-हया हो,
लाल करो मुँह अपना-अपना मार तमाचे।
नंगा नाचे, चोर बलैया लेय,
भैया, नंगा नाचै।

(खलयुग का कोरस : बहुत दिन बीते)

बच्चन ने इसे लिखना शुरू किया था और पूरे साठा-पाठा होने पर पूरा लिखकर जनता को भेंट कर दिया।

× × ×

आलोच्य कृति की मैंने अंतिम कविता 'यात्रांत' अभी पढ़कर समाप्त की है। इससे पहले भी आलोच्य पुस्तक को पढ़ने के लिये मैं कई बैठकें मार चुका हूँ। इतना ही नहीं; इससे पूर्व की 'दो चट्टानें', 'त्रिभंगिमा' और 'बुद्ध और नाचघर' पुस्तकें भी मैंने पढ़ डाली थीं। इस पढ़ाई के बाद मेरा दिल और दिमाग अब यह कहना चाहता है—कविवर, अब मैं तुम्हारे 'बहुत दिन बीते' पर कुछ कह सकने का विश्वास रखता हूँ।

× × ×

और अब मेरी दृष्टि 'बहुत दिन बीते' पर स्थिर है। लगता है, मेरे युग में सिद्धों की जमातें जमती जा रही हैं। ये नये ज़माने के सिद्ध तो बड़े ही चमत्कारी हैं। इनके जादू से बिचारी भोली-भाली जनता, भेड़ चाल' में बदली-बदली नज़र आती है। देश की आकृति टेढ़ी-मेढ़ी दीखती है। हर सिद्ध ऊँचा से ऊँचा पहुंचने के लिये 'शार्ट-कट' की फ़िकर-फ़िराक में मतवाला है। नये ज़माने का खून खोटा हो गया है। पहली कविता में कवि प्रभु से प्रार्थना करता है—'हे प्रभो, सिद्ध करने-वाली चाल फ़रेब से मेरे युगधर्म को मुक्ति दिला।[1] इस तरह बिसमिल्लाह ही बड़े पैने व्यंग से होता है। और आगे की दस-पन्द्रह कविताओं में उसका व्यास प्रक्षेपास्त्र के वार की तरह बढ़ता जाता है। खल-युग के हथकंडों, निम्नवर्गी विपन्नताओं, इन्सानियत को खोखला करने वाली झूठी रस्मों, शासन-प्रशासन के सफेद सांपों की काली करतूतों, उनकी जाली दस्तावेजों, गाँधीवादी दर्शन की दुर्दशाओं, खलों की खुलकर खेलती, नंगी नाचती 'गाधीवादी मंच पर गुण्डागर्दी, क़यामत के दोज़खी फैसलों, नामी-बदनामों की साज़िशों तथा उनकी तिकड़मों और बुद्धिजीवियों को 'एक्सप्लायट' करने वाले मिथ्या, मूल्यहीन अभिनन्दनों आदि के द्वारा पसरने वाले युग-वैषम्य को कवि ने विषैले व्यंग्य द्वारा व्यक्त किया है।[2] 'बहुत दिन बीते' की इन रचनाओं को पढ़ते वक्त मैं सोचता रहा हूँ कि बच्चन के कवि ने यूनिवर्सिटी के वातावरण से वहाँ के अनुकूल कविताएँ लिखने वाला अगर मीठा मसाला संचित किया तो आलोच्य कृति में थोड़े समय में ही संसद् से भी वह काव्य का इतना कड़ुवा मसाला बटोर सका है। देखें, आगे क्या होता है!

× × ×

---

१. लेकिन हे भगवान! इस देश में, फिर इस खोटे जमाने में, सिद्ध करने की कला का विकास कभी न हो; क्योंकि तब तो दिन को रात, रात को दिन—भाले को पिन, हाथी को चींटी,—सिद्ध करना भी आसान होगा।

२. देखें, होली, भारत के साँप, दो प्रतीक, बाढ़, खलयुग का कोरस, 'क़यामत का दिन, ईर-बीर: फत्ते हम, मेरा अभिनंदन कविताएँ।

हाँ तो इन व्यंगपरक (प्रधान ?) प्रारम्भिक दस-पन्द्रह कविताओं को छोड़, शेष लगभग ५०-५५ कविताओं में (संग्रह में कुल ६९ कविताएँ हैं) साठ वर्षीय एक सजग संवेदनशील प्रौढ़-कवि का गहरा आत्म-विश्लेषण व्यक्त हुआ है। पर यह विश्लेषण किताबी ढंग का न होकर व्यवहार सम्मत है, सहज है। इसके द्वारा कवि ने भोगे हुये युग-जीवन के कटु सत्य को वाणी दी है और यह वाणी अपने आप में दुर्दमनीय प्रतीत होती है। इसे कटु-सत्य की वाणी मैंने इसलिए कहा है क्योंकि जीवन के इतने संघातक श्रम-संघर्ष के बावजूद इस जगत से कब कुछ ऐसा मिला है जिससे एक अध्यवसायी और प्रतिभाशाली व्यक्ति को यह सन्तोष तो हो सके कि अगर उसके जीवन का घोर श्रम-संघर्ष अधिक सार्थक सिद्ध नहीं हुआ तो वह सर्वथा निरर्थक भी नहीं है—

क्या यह कुत्ती जगह
यहाँ पर बहुत करो माथापच्ची तब
लग पाती है बस थोड़ी-सी खाक भाल पर।
(तिलक इसे दुनिया कहती है)······
ईर्ष्या, कुँठा, द्वेष, रोष के बढ़ जाते हैं।

'सुधियाँ सपने औ' 'सच्चाई'

यह निराशा निश्चय ही एक चिन्त्य वस्तु है। किंतु अदृश्य रूप में इसे ही आदमी की नियति माना जा सकता है। नियति की निर्ममता से बचने का दावा कौन कर सकता है ? बच्चन का कवि ३-४ दशक पूर्व से इस नियति का शिकार होता आया है। पर इसके ख़िलाफ़ उसने सम्पूर्ण मानवीय साहस वक्ष में भरकर और गला फाड़कर स्वर भी जगाया है। पर जो होना था वही हुआ, और होगा भी। कवि की नियति विषयक प्रतिक्रिया 'दो पाटों के बीच' शीर्षक कविता में विशेषतः पठनीय है। जीवन की आकस्मिक दुर्घटनाओं से कौन बच पाता है ? नियति की निर्ममता को न मानकर तो आदमी का जीना और भी मुश्किल है। इसकी ध्वनि इस कवि के काव्य में शुरू से ही मिलती। खड़ी बोली काव्य में मृत्युवादी भावनाओं का कारण भी यही नियतिवाद रहा। पर यह नहीं भूलना चाहिये कि बच्चन ने इसके विरुद्ध 'मधुकलश' तथा 'हलाहल' में में विशेषरूप से और अन्य कृतियों में सामान्यतः जीवन की इयत्ता का अमर स्वर भी मुखरित किया है। आलोच्य कृति में इस स्वर का सम्बन्ध बच्चन के पूर्व काव्य से है। इस प्रसंग में एक तथ्य और भी है। अगर बड़ी प्रतिभावों में कुछ बड़ा लिखने की लपटें होती हैं तो उसकी एवज़ में अंततः यश पाने की ऐषणा भी अधिक प्रबल होती है।[1] यह एक मनोवैज्ञानिक दुर्बलता है। पर आदमी इससे बच

---

१. शायद 'रस्किन' ने कहा है :
'पब्लिक फेम इज द फर्स्ट इनफरमिटी ऑफ वीक माइन्ड, लास्ट इनफरमिटी ऑफ नोबिल माइन्ड।'

नहीं पाता। अपवाद की बात और है। बच्चन जी को निश्चय ही इसका अहसास है कि उन्हें उनके किये का बहुत कम मिला है।[१] असलियत यह है कि इस कवि को मिलने के नाम पर बुद्धिजीवियों की ईर्ष्या और उपेक्षा ही अधिक मिली है। इसे अन्याय कहना अधिक ठीक होगा। इस सबकी स्वाभाविक प्रतिक्रियात्मक अभिव्यक्ति अत्यंत मार्मिक ढंग से 'बहुत दिन 'बीते' की कविताओं में हुई है। पर मैं समझता हूँ कि 'दो चट्टानें' की ही नहीं बल्कि खड़ी बोली में लिखी मुक्तछंद की इनी-गिनी दो-चार सशक्त कविताओं में से एक 'सिसिफ़स बरक्स हनुमान' कविता में बच्चन का कालजयी जीवनदर्शी कवि सृजन-शक्ति की जिस सीमा पर पहुँचा उसका ध्यान कर यह कविता कुछ निराशा देती है। असल में इसके पीछे कुछ मनोविज्ञानिक कारण हैं। मेरे विचार से बच्चन की सृजनात्मक जीवनी शक्ति की परीक्षा हमारा शिखंडी-आलोचक वर्ग (मुझे इस कथन के लिये क्षमा करें) नहीं कर सका। और जनता बच्चन के इतर काव्य की शक्ति को पूरी तरह समझने के लिए कुछ समय लेगी। जो हो, पर कवि को अपनी इस शक्ति के अपव्यय का तीखा अहसास हुआ है, जो होना व्यक्ति के लिए स्वाभाविक है। इस कारण 'बहुत दिन बीते' कृति की अनेक कविताओं के आत्मविश्लेषण के पीछे जीवन की घोर थकान और मन की घुटन-टूटन का पीड़न व्यक्त होता है। पर इसी सन्दर्भ के एक महत्वपूर्ण प्रश्न उभरता है—क्या इन कविताओं के ध्वनित में जीवन की निष्क्रियता शै पाती है ?

इस प्रश्न का सही उत्तर इस कृति की कविताएँ देती हैं। 'यात्रांत' कविता को जरा गहरे पैठकर पढ़ने पर उसकी शक्ति का ही पता नहीं चलता वरन् सारे जीवन की शिरा-शिरा की शक्ति कौंध उठती है। 'रथ-यात्रा' का रूपक रचकर एक व्यक्ति के मन-जीवन की अप्रतिहत, अव्याहत, आँधी-सी जिस शक्ति का यहाँ बोध होता है वह भला निष्क्रियता को शै देगी ? व्यक्ति के जीवन के शरीर-रथ को खींचने वाले मन के तुरग का कैसा वेग होता है, उसमें कितनी शक्ति होती है, इसी बलबूते पर वह अपनी यात्रा का अन्त वहां करता है जहाँ 'सर्वशक्तिमान' का दरवाजा है। जीवन का यह 'यात्रांत' क्या कोई ट्रेजडी है ? मैं समझता हूँ कि यही जीवन का सच्चा संघर्ष व पुरुषार्थमय आनन्द है, परमपद है ?[२] यह आसानी से किसी को उपलब्ध

---

१. दुनिया के क्षेत्रथे नहीं कम, जिनमें ले कुछ ठोस लक्ष्य में जा सकता था, ठोस काम कुछ कर सकता था, जिसके होते ठोस नतीजे—तभी अचानक आई शामत, 'गिई गिरा मति फेर' और अब चार दशक के बाद देखता हूँ अपने को—केवल कवि हूँ ! (कविता, 'बहुत दिन बीते')

२. रथ बड़े बीहड़ पहाड़ी, बियाबानी, जंगली, जन-भर, निर्जन रास्तों से गुजरता, रात दिन चलता, कभी पीछे नहीं मुड़ता, कहीं क्षण भर को नहीं रुकता, पौर पर आकर तुम्हारे थम गया है। अश्व चकनाचूर थक कर, और रथ की चूल-चूल हिली हुई, ढली पड़ी है—थके घोड़ों को जरा-सा थपथपा दो—और अपनाते दृगों से कहो, 'आओ घर तुम्हारा ?' —'यात्रांत' कविता

होने वाला आनन्द नहीं। पर इसके लिये समाधि की जरूरत न होकर संघर्ष को ओट कर आगे बढ़ने के साहस की जरूरत है। जीवन के प्रति प्रतिबद्ध होकर ही ऐसा सुखद 'यात्रांत' हासिल हो सकता है। और यदि यह सच है तो 'बहुत दिन बीते' काव्य-संग्रह सृजन का एक ऐसा कैनवास है जिस पर अंकित है दशकों भोगे हुए नियति संचालित जीवन का खट्टा-मीठा अनुभव। उसके प्रति धड़कते हुए परिपक्व दिल-दिमाग की प्रतिक्रिया और जीवन और इन्सान के प्रति प्रतिबद्धता का सफल संकल्प।[1] और इस सबसे ऊपर सर्वशक्तिमान के प्रति जीवन की सच्ची, सहज, ऋत-आस्था।[2]

अतः संक्षेप और साररूप में 'बहुत दिन बीते' कृति जगजीवन की गति व्यापने वाले एक जागरूक कवि के निश्छल आत्म-शोध और बोध की एक महत्वपूर्ण दस्तावेज है जिसे भविष्य की प्रबुद्ध और भावुक पीढ़ियाँ वर्तमान युग-जीवन के कटु-सत्य को समझने के लिये बार-बार पढ़कर भी ऊबेंगी नहीं।

× × ×

आलोच्य कृति की विषयवस्तु के प्रति इतना कह लेने पर तद्विषयक अभिव्यंजना पर कहना भी ज़रूरी हो जाता है। इसके लिये जो बात विशेष है वह है व्यंग के प्रयोग की। बच्चन के व्यंग को मैं 'डंक' की संज्ञा देना पसन्द करता हूँ। इस व्यंग में सौन्दर्य का पानी फेरने के लिये, उसे धारदार बनाने के लिये, कवि ने कुछ पैने-प्रतीकों का हत्था पकड़ा है। मिसाल के तौर पर 'भारत के साँप', 'दो प्रतीक', 'खलयुग का कोरस' आदि कई कविताएं पठनीय हैं। ये व्यंग कवि की दृष्टि का पैनापन तो प्रकट करते ही हैं लेकिन प्रायः वर्णन-विस्तार में व्यंग का असर हल्का भी हो जाता है।[3] शब्दों का डंक तो संक्षिप्ति में ही सार्थक होता है।[4] बच्चन व्यंग की जगह जब विवरण देते हैं, तब प्रवक्ता-से लगते हैं।

---

१. धागा-माला नहीं कि जीवन तोड़ दिया जाए जब चाहे, कवि की नियति यही, कवित्व से, कविता से, अपने से भी निर्वासित होकर, शापित इन्सानियत निबाहे। कविता 'कवि की नियति'

२. —जीवन गैर जरूरी कामों में ही बीत गया है, और सब जरूरी काम मेरे दूसरे जन्म की प्रतीक्षा कर रहे हैं। कविता 'जरूरी गैर जरूरी'

बाढ़ हट गई, उम्र कट गई, सपने-सा लगता बीता है, आज बड़ा रीता-रीता है, कल शायद उससे ज्यादा हो, अब तकिए के तले उमर-खैयाम नहीं है, जनगीता है ? कविता 'क्यों जीता हूँ'

३. देखें पहली कविता के 'दिन को रात' से लेकर 'गरुड़ या गिद्ध' तक वर्णन-विस्तार को।

४. शेक्सपियर ने ध्वनि सौंदर्य की स्थापना में 'ब्रिविटी इज़ दि सोल ऑफ विट' कह कर 'व्यंग' के प्रभाव को पैदा करने की जो कांटे की शर्त रखी बच्चन की अनेक व्यंगपरक कविताओं में उनका ध्यान रखा जाता तो व्यंग का सौन्दर्य बेजोड़ होता।

मुझे लगता है कि आलोच्य कवि की कविताओं में अभिव्यंजना का सर्वाधिक सौंदर्य ऋजुता में हैं। यहाँ कहीं पर अस्पष्टता की गाँठें नहीं हैं। कहीं पर प्लास्टिकी फूलों या नन्दन-कानन के कुसमों से अभिव्यंजना की सजावट नहीं की गई है। अधिकांश कविताओं[1] का अंत भी ऐसे नाटकीय ढंग से होता है जिससे एक-बारगी जग-जीवन का आस्तीन का साँप जैसा कोई सत्य या अजूबा आँखें नटेरता-सा बिल में घुस जाता है।

और अन्त में, आलोच्य कविताओं की अभिव्यंजना की अन्यतम विशेषता यह भी हैं कि वह कवि की किसी विशेष मनःस्थिति या उसके 'मूड' को इस तरह से संप्रेषित करती है कि वाह्य परिवेश और मानसिक प्रतिक्रिया की प्रक्षिप्ति अपने आप पाठक के मन-पटल पर अंकित हो जाती है। निश्चय ही ऐसी दशा में दार्शनिक मंतव्य से पृथक 'तुम' ही 'मैं' और 'मैं' ही 'तुम' हो जाता है, क्योंकि तब पाठक और कवि की मानसिक स्थिति तथा 'मूड' की ताल-मेल बैठ जाती है। इसे 'साधारणीकरण' होना कहा जा सकता है। यह साधारणीकरण इन कविताओं की अभिव्यंजना का प्राण है। अतः यहाँ 'तुम' की सीमा की बात करना ही व्यर्थ है। विषय तथा वाणी के विकास के क्रम की दृष्टि से आलोच्य कृति की अभिव्यंजना तक बच्चन ने साधारणी-करण को निभाया है और अपनी अभिव्यक्ति के प्रति जीवन की प्रतिबद्धता की पूरी ईमानदारी बरती है। इस ईमानदारी को नजरंदाज करने का मतलब होगा अपने को बेईमान बनाना। ऐसा कौन चाहेगा ?

---

१. जैसे 'कयामत का दिन', 'यात्राँत' वक्त का ऐलान, 'साठवीं वर्षगाँठ, 'क्यों जीता हूँ' आदि कविताएं।

बच्चन के गीतों में दुखवाद

बच्चन के गीतों में दुखवाद

सूक्ष्मतः दुख मन का वह मूलभाव है जो प्राणी को किसी अभाव से अवगत कराता है। यह अभाव पूर्णतः लौकिक हो सकता है और वह बहुत कुछ अलौकिक भी हो सकता है। लौकिक भाव स्थूल होता है। अतः उस के दुख में गहनता नहीं होती, सत-हीपन होता है। लेकिन अलौकिक अभाव सूक्ष्म होता है। प्रश्न उठता है कि दुख जीवन की गति का सम्बल है या अगति का विराम-चिन्ह? गति से तात्पर्य है जीवन की सक्रियता से और अगति से तात्पर्य है जीवन की निष्क्रियता से। दुख जीवन में सक्रियता का संचार भी कर सकता है और निष्क्रियता भी ला सकता है। बच्चन के गीतों में दुख की निष्क्रियता है। पर वहां जीवन की सक्रियता सहसा टक्कर भी मारती है। बच्चन के गीतों में व्यंजित दुख महादेवी के गीतों में व्यंजित दुख की तरह से व्यष्टिपरक है। किन्तु कौन-सा दुख और किसका दुख व्यक्तिपरक नहीं होता? पर उसकी प्रतिक्रिया और प्रभाव में अंतर हो सकता है। 'घायल की गति घायल जाने' उक्ति में व्यक्ति के दुख के सहवेदन, संवेदन और प्रसार की अनुभूति तथा अभिव्यक्ति की गई है। दुख का सहवेदन, संवेदन और प्रसार ही 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' कहने का कारण है। यही व्यक्ति के दुख के उदात्तीकरण का तरीका है। दुख ही व्यक्ति (कवि) की वाणी को समष्टि की वाणी बना देने का जीवन-तंत्र है।

× × ×

बच्चन के काव्य में ध्वनित दुख निश्चय ही बच्चन के जीवन का भुक्त दुख है। किन्तु किसी का भी दुख समाज से सर्वथा अछूता कब होता है? वह हो ही नहीं सकता। जीवन के दुख के समाज से अछूते क्षण सम्भवतः विरल होते हैं। अतः यह सोचना भ्रांतिपूर्ण है कि बच्चन के जीवन का दुख केवल उन्हीं का नितांत निजी है। दुख किसी का सगा नहीं होता। पर वह परायेपन को अपनेपन में बदलने की अद्-भुत क्षमता रखता है। यह ध्वनि हरेक कवि के दुख परक काव्य में होती है। अतः बच्चन और महादेवी के गीतों के कई आलोचकों की यह धारणा ठीक और ठोस नहीं है कि उनका काव्य व्यष्टि के दुख से ही घिराघुटा है, कि उसमें कुंठा या पीड़ा प्रधान है। पीड़ा या कुंठा व्यक्ति की नहीं, मन की वस्तु है। और मन किसके पास नहीं होता? इसलिये बच्चन के गीतों में ध्वनित दुख किसी आरोप अथवा आक्षेप से मुक्त है। दुराग्रह बात दूसरी है।

महादेवी वर्मा और बच्चन के दुखःपरक गीतों में वैयक्तिकता समानान्तर चलती है। किन्तु महादेवी का दुख अपने अज्ञात प्रिय से केन्द्रित है। वह दिव्य है, स्वयं

साध्य है; जबकि बच्चन का दुख या तो 'मैं' से यानी व्यक्ति के स्वयं से सम्बद्ध है या प्रणय-पक्ष में अपनी प्रिया से। महादेवी ने दुख की जो उदात्त अभिव्यक्ति की है वस्तुतः वैसी किसी अन्य कवि ने नहीं की। किन्तु बच्चन के दुख-गीतों में दुख का स्वर आत्मा से नहीं प्राण-मन से उभरता है। आत्मा, जिसकी ध्वनि दार्शनिक सुनते हैं। मन, जिसकी ध्वनि भोगी सुनते हैं। यहीं बच्चन और महादेवी के गीतों की दुख-ध्वनि एक दूसरे से पृथक पहचानी जाती है। इसके लिये एक तरफ महादेवी के दीप-शिखा व सांध्य-गीत के गीत पढ़े जा सकते हैं और दूसरी तरफ बच्चन के निशानिमंत्रण और सतरंगिनी के गीत पठनीय हैं। इन्हें पढ़कर यह पता चलता है कि महादेवी के गीतों से अगर मानवता की मांगलिक ध्वनि गूँजती है तो बच्चन के गीतों से मानवता के मन की ध्वनि गूँजती है। मांगलिकता के महत्व को जीवन में प्रायः कम ही महसूस किया जाता है। पर मर्म की ध्वनि को जीवन में महसूस न करने का अर्थ है मानव का सभी सम्बन्धों और सन्दर्भों की भावना से अर्थहीन हो जाना। बच्चन के गीत इसी सम्बन्ध भावना को ध्वनित करते हैं।

दुख-भोग के प्रति व्यक्ति या तो जीवन में निराशावादी हो जाता है या फिर संघर्ष-वादी। कहीं वह तटस्थतावादी भी होता है। इससे पृथक दार्शनिक दृष्टि होती है। पर यह दृष्टि प्रायः जीवनेतर-सी होती हैं जिससे यथार्थ जीवन कम सम्बद्ध होता है। इस दृष्टि का व्यापक प्रसार उपनिषदों में हुआ है। छायावादी काव्य में यह दृष्टि प्रधान रही है। मेरे विचार से दुख की अलंकृत अभिव्यक्ति भले ही हो सकती हो लेकिन निश्चय ही वह कृत्रिम होगी। कल्पना में दुख भोगने की ध्वनि चाहे कितनी भी उदात्त क्यों न कही जाय किन्तु वह संदिग्ध ही लगेगी। जीवन में सबसे बड़ा यथार्थ दुख भोगना है। भोगे हुए दुख में कल्पना कैसी ? महादेवी वर्मा के दुख-गीतों में प्रिय-विरह की छटपटाहट तो प्रतीत होती है पर चूँकि यहाँ इस प्रिय का प्रतीकार्थ प्रधान है अतः उसके दुख की अभिव्यक्ति अस्पष्टता के कारण संदग्धि बन जाती है और उसी अनुपात में कम मर्मस्पर्शी हो जाती है। किन्तु बच्चन के दुखपरक गीतों में चूँकि जीवन में भोगे हुए दुख के मनोभावों का विवंत होता है अतः वह सीधा मर्म को कुरेदता है। निश्चय ही इन गीतों की अभिव्यवित प्रायः अनंलकृत है पर वह पर-पीड़ा को छूकर उसे दर्द के दायरों से मुक्ति भी दिलाती है। एक दुखी के दुख को दुखी जितनी संवेदना से समझता है इसका अहसास करने में इस अभिव्यक्ति का प्रयोजन सिद्ध होता है। बच्चन के पूर्वाध के काव्य को आलोचकों ने प्रायः 'आह' का काव्य कहा है। अर्थात्, उस पर आरोप है कि उसमें जीवन के अवांछित विषाद को व्यक्त किया गया है। अतः उसमें क्षयी-रोमासं का राग है। किन्तु सत्य यह है कि केवल वच्चन ने ही पहली बार जीवन के दुख की यथार्थ अभिव्यवित की है और इस अभिव्यक्ति में दुख जीवन को विषाद की शृंखलाओं में जकड़ता नहीं है बल्कि मन में विषाद की जमी विषैली पर्तों को उधेड़ता है और सहज, सुखकर मानवीय संवेदना को

जगाता है। यों यहाँ जीवन में व्याप्त सुख-दुख की मनः-क्रीड़ा का राग है। इसके लिये कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

प्यार पास जाए प्यारों के सुख, सुखियों पर छाए
आशिष आशिषवालों पर, मुझ दुखिया पर दुख आए
(प्रारम्भिक रचनाएँ प्रथम भाग—दुखों का स्वागत गीत)

× × ×

तू अपने दुःख में चिल्लाता आँखों देखी बात बताता
तेरे दुख से कहीं कठिन दुख यह जग मौन सहा करता है
मुझसे चांद कहा करता है।

(निशा निमंत्रण : गीत ३१)

× × ×

साथी, साथ न देगा दुख भी !
काल छीनने दुख आता है, जब दुख भी प्रिय हो जाता है
नहीं चाहते जब हम दुख के बदले में लेना चिर सुख भी।

(निशा निमंत्रण : गीत ९६)

× × ×

मैंने गाकर दुख अपनाये !
कभी न मेरे मन को भाया जब दुख मेरे ऊपर आया
मेरा दुख अपने ऊपर ले कोई मुझे बचाए।

(एकांत संगीत : गीत १८)

× × ×

हरदंत समय का जो लगता मानो विषदंत नहीं होता
दुख मानव के मन के ऊपर सब दिन बलवंत नहीं होता।

(मिलन-यामिनी : मध्य भाग गीत १०)

× × ×

दुख की घड़ियों के स्वागत में छन्दों पर छंन्द सजाता हूँ
पर अपने दुख के दर्द भरे गीतों पर कब पछताता हूँ
जो औरों का आनन्द बना वह दुख मुझ पर फिर फिर आए
रसके भीगे दुख के ऊपर मैं सुख का स्वर्ग लुटाता हूँ।

(मिलन यामिनी, मध्य भाग गीत १३)

× × ×

बड़भागी है दर्द बसाए रह सकता है जिसका अन्तर
जो उससे वंचित हैं उनको फूंकों फूस-चिता पर धरकर
दुख की मारी दुनिया को ये क्या समझेंगे, समझायेगें।

(प्रणय पत्रिका गीत १८)

दुख से जीवन बीता फिर भी शेष अभी कुछ रहता
जीवन की अन्तिम घड़ियों में भी तुमसे यह कहता
सुख की एक साँस पर होता है अमरत्व निछावर।

(सतरंगिनी)

× × ×

बच्चन के निशा-निमंत्रण, एकाँत-संगीत और आकुल-अँतर के गीतों में जीवन के दुख का दुर्दमनीय स्वर है। लेकिन इस स्वर की शक्ति को प्राय: समझा नहीं गया। व्यक्ति के जीवन का एक सलोना नीड़ लुट गया। सत्य मिट गया, सपना टूट गया, संगिनि छूटी, संगी भी छूटा और वह एकदम अकेला रह गया और इस सारे दुख को झेलकर कवि ने जीवन में सदा दुखी रहने का आदर्श बनाने की बात भी सोची। पर यह आदर्श उसे थोथा लगा। इस थोथेपन की अभिव्यक्ति सहसा कवि के सतरं-गिनी गीत-संग्रह में हुई। पर दुख का महान मूल्य तो कवि ने पहले ही चुका दिया था साथ ही उसने अपनी सम्पूर्ण मानवीय शक्ति बटोर कर दुख से दुर्द्धर्ष संघर्ष भी किया। जीवन के सुख की खातिर दुख से संघर्ष करने के लिए जिस साहस और संकल्प को जुटाने की ज़रूरत पड़ती है, व्यक्ति को जितना 'वर्क अप' होना पड़ता है उसकी तीखी ध्वनि बच्चन के निशानिमंत्रण, एकाँत-संगीत और आकुल-अंतर के गीतों में सुनाई पड़ती है।इसके बाद सतरंगिनी जीवन के महान दुख पर फहराती महान सुख की विजय पताका-सी प्रतीत होती है। सतरंगिनी के गीत दुख की विदा और सुख के स्वागत के अनूठे स्वरों से युक्त हैं। पर जीवन में सुख के स्वागत का आधार दुख और उसके साथ व्यक्ति का संघर्ष है। इस प्रकार कुल मिलाकर बच्चन के काव्य में सुख-दुख का यथार्थ संसार ही गुंजित हो उठा है।

ईमानदारी से दुख-सुख की पूर्ण अभिव्यक्ति के क्षण भी तो सीमित होते हैं। अत: श्रेष्ठ सृजन का सीमित होना भी स्वाभाविक है।

संक्षेप में, बच्चन के दुख-गीत और गीताँश खड़ी बोली गीतकाव्य में प्रथम श्रणी के हैं। पर यह भी सच है कि ऐसी रचनाएँ संख्या में अधिक नहीं हैं। हो भी नहीं सकतीं।

★

अस्तित्व के दो अबुझ अंगारे

मधुकलश और हलाहल

अस्तित्व के दो अबुझ अंगारे

मधुकलश और हलाहल

व्यक्ति और उसके अस्तित्व के विषय में निश्छल आत्माभिव्यंजन करना बच्चन के काव्य का लक्ष्य है। व्यक्ति के अस्तित्व के विषय में, विभिन्न दार्शनिक सीमाओं में, भिन्न-भिन्न मत हैं। समाज-शास्त्र का दावा है कि समाज से अलग व्यक्ति का अस्तित्व कुछ भी नहीं है। नास्तिक, व्यक्ति (अर्थात् जीव) के अस्तित्व को स्वीकारता है। भारतीय शुद्ध आध्यात्मिक दर्शन जीव का जगत में आविर्भाव और अस्तित्व परम-शक्ति (ब्रह्म) की इच्छा का परिणाम मानता है। नाम-रूप की उपाधि से परे होकर चेतन (जीव) का अस्तित्व असीम में तिरोहित हो जाता है। यही जीव की मुक्ति है। यह शुद्ध आस्थावादी चिन्ता है, जिसमें जीव या चेतन का, 'मैं' या, अहम् का, (अर्थात् व्यक्ति का) अस्तित्व विराट् का विंदु प्रतीत होता है—

जल में, कुंभ कुंभ में जल है
जित देखो तित पानी
फूटा कुम्भ जल-जलहिं समाना
यह तत कह्यो गयानी

(कबीर)

'मैं' (अर्थात् जीव) ब्रह्म हूँ—'अहम् ब्रह्मास्मि' ! 'मैं' के इस अस्तित्व-बोध में अणु और असीम या जीव और ब्रह्म सूक्ष्मतः एक दूसरे से पृथक् नहीं हैं। मूलतः भेद में अभेद निहित रहना, यह तो 'मैं' का ही घनत्व है। इस प्रकार भारतीय चिन्ता में व्यक्ति का यानी मैं का अस्तित्व दुर्बल दृष्टि से नहीं देखा गया। अपने 'मैं' को भगवान् के समक्ष रखने के लिए भक्तों ने कवित्व-चातुर्य से उसे अत्यन्त दीन-हीन भले ही अभिव्यक्त किया है किन्तु, 'मैं' को नकारा कहीं भी नहीं है। 'मैं' की इससे बड़ी महत्ता और किस बात से सिद्ध होगी ? वर्तमान वैज्ञानिक प्रगति ने पुरानी अन्तर व बाह्य जर्जर मान्यताओं को दबा लिया है। आज जग, जीवन, प्रकृति, व्यक्ति और समाज के सूक्ष्म-स्थूल रूप का प्रत्येक पार्श्व वैज्ञानिक चिन्तन और अनुसंधान के आलोक से चमत्कृत हो उठा है। पुराने आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक रूढ़ संस्कार रेडियो धर्मी प्रकाश-पुंज के आघात से ढहने लगे हैं। इस ढहन प्रक्रिया में निश्चित ही मनुष्य का भीतरापन विघटित हो रहा है। व्यक्ति-व्यक्ति के मन में अपनी ही दुर्बलता का अहसास कचोटने लगा है। अपने अस्तित्व के प्रति उसे एक खतरा महसूस हुआ है। इस खतरे ने व्यक्ति-मन में अपने अस्तित्व को बनाये रखने की प्रबलतम् भावना का विस्फोट भर दिया एवं मानसिक

असंतोष ने व्यक्ति को विद्रोही बना दिया। इन विद्रोहियों का एक समाज भी बना। इस समाज ने जग-जीवन के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में क्रांतिकारी कर्म-कल्पना के तंतु बुने। विगत लगभग दो शताब्दियों का मानवीय कर्म-कल्पना का इतिहास इस बात का साक्षी है। औद्योगिक क्रांति, राजनीतिक क्रांतियाँ सामाजिक मूल्यों के उतार-चढ़ाव आदि के ऐतिहासिक तथ्यों को हम झुठला नहीं सकते। और अभी यह विद्रोही समाज रचनात्मक है। हम यहाँ परिणाम की बात नहीं करेंगे। परिणाम दो ही होते हैं, शुभ-या अशुभ! मानव समाज इन दोनों को समझता आया है और भोगता भी आया है। अनिष्ट की आशंका से कभी महान् सृजन और परिवर्तन नहीं रुका। यही सृजन की अद्‌भुत शक्ति है!

× × ×

बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में विश्व के व्यक्ति ने अस्तित्व की रक्षा का भाव अत्यन्त तीव्रता से अनुभव किया है। अस्तित्व की रक्षा के लिए डार्विन, मार्क्स, फ्रायड और जुंग आदि मनीषियों ने अनेक क्रांतिकारी विचार तथा सिद्धान्त सुझाये। अस्तित्व-वाद के दार्शनिक पक्ष की बौद्धिक गुत्थी को सुलझाने के लिए कुछ आचार्य सामने आये। स्पेंगलर ने साँस्कृतिक भाव-संस्कार के ध्वंस पर कहा कि वाह्य वैज्ञानिक विकास करना चाहिए जिससे कि अस्तित्व की रक्षा हो सके। जीवन के अस्तित्व के प्रति जो एक आँतरिक संकट पैदा हो गया था उससे बचने के लिए व्यक्ति को अपनी दुर्दमनीय शक्ति को जगाने और जानने की ज़रूरत पड़ी। यों अस्तित्ववादी दर्शन "मैं" की (या व्यक्ति की) सूक्ष्म-विराट् शक्ति का बोधक है। अब प्रश्न यह उठता है कि यह "मैं" या व्यक्ति का अस्तित्व क्या समाज का शत्रु नहीं है? इसका उत्तर यह है कि अस्तित्व-वादी दर्शन में व्यक्ति के अस्तित्व को अवश्य स्थापित किया गया है, किन्तु उस समाज से उसका कोई विरोध नहीं है जिसमें धार्मिक, राजनीतिक और आर्थिक आधार पर अन्याय अथवा अनीति नहीं है। व्यक्ति और समाज का विरोध तो वहीं पैदा होता है जहाँ नियमों और पाखण्डों की आड़ में व्यक्ति के जन्मसिद्ध अधिकारों का अपहरण या शोषण होता है। जब व्यक्ति को कालकोठरी में बंद कर दिया जाता है और वहाँ वह मुक्ति के लिए दीवारों से सर पटकता है। उसका यह सर पटकना ही अर्थात् कालकोठरी में मुक्ति की दमघोटू कामना करना ही 'काफ्का' के विचार से अस्तित्ववादी दर्शन की उग्र चेतना है। ज्यों पाल सात्र ने अपने ढुलमुल विश्वास के बावजूद बड़ी प्रबलता से यह स्थापित किया कि व्यक्ति में संघर्ष का अस्तित्व है और उसका मात्र कारण किसी कुछ का आभाव है। फिर कहें कि इस युग में अस्तित्ववादी व्यक्ति का मूल विरोध नये समाज से नहीं है। उसका विरोध तो उस बर्जुआ समाज से है जो वास्तविकताओं को झुठलाकर आदर्शों के खोखले भजन गाता है और जो जीवन की स्वाभाविक माँगों की उपेक्षा कर व्यक्ति को अभाव का अहसास कराता है—

प्राण प्राणों से सकें मिल किस तरह दीवार है तन
काल है घड़ियाँ न गिनता बेड़ियों का शब्द झन-झन

वेद लोकाचार प्रहरी ताकते हर चाल मेरी
बद्ध इस वातावरण में क्या करे अभिलाष यौवन ?

(कवि की वासना)

यहाँ अस्तित्ववादी दर्शन की इस संक्षिप्त-सी पृष्ठभूमि को जानकर हम बच्चन के व्यक्तिवादी काव्य पर एक दृष्टि डालेंगे।

बच्चन की अधिकाँश (विशेषत: पूर्वकालीन) रचनाओं में व्यक्ति के अस्तित्व की व्यंजना प्रधान है। कवि का मूल व्यापक भावदर्शन किसी माध्यम से, प्रतीक रूप में, अभिव्यक्त होता है। तुलसीदास जी का भाव-दर्शन राम के प्रतीक द्वारा मूर्तिमान हुआ है। तुलसीदास के काव्य को समझने के लिए राम को समझना और उसे आत्मसात करना आवश्यक है। प्रकारांतर से राम भी 'मैं' हैं। उन्हें 'मैं' से पृथक कर उनके महान जीवन चरित को समझने का दावा कौन करेगा ? तात्पर्य यह है कि काव्य में 'मैं' किसी खास व्यक्ति का सूचक नहीं है। वह तो एक माध्यम है, एक प्रतीक है, जिससे कवि का पूर्ण व्यक्तित्व व्यक्त होता है। और व्यक्तित्व के निर्माण में, समाज-शास्त्र की मान्यता के अनुसार, व्यक्ति में सामाजिक भले-बुरे दोनों प्रकार के तत्व समाहित होते हैं। मूलत: व्यक्ति 'बायलोजिकल' है। और इसलिए उसकी अपराधवृत्ति उसे अपराधों से सर्वथा पृथक नहीं कर देती। क्योंकि कोई भी व्यक्ति अपने आदिम संस्कारों से सर्वथा रिक्त नहीं हो पाता। अत: सामाजिक दृष्टि से व्यक्ति के बहुत से अपराध प्रत्यात्मक रूप में उसी के न होकर समाज के सभी व्यक्तियों के होते हैं। इसी तथ्य की प्रबल अभिव्यक्ति, सहजता से, मधुकलश के कवि ने की है—

क्या किया मैंने नहीं जो कर चुका संसार अब तक
वृद्ध जग को क्यों अखरती है क्षणिक मेरी जवानी
मैं छिपाना जानता तो जग मुझे साधू समझता
शत्रु मेरा बन गया है छल रहित व्यवहार मेरा

(कवि की वासना)

× × ×

इस कुपथ पर या सुपथ पर मैं अकेला ही नहीं हूँ
जानता हूँ क्यों जगत फिर उंगलियाँ मुझपर उठाता
मौन रहकर इस लहर के साथ संगी बह रहे हैं
एक मेरी ही उमंगें हों उठी हैं व्यक्त स्वर में···
पाप की ही गैल पर चलते हुए ये पाव मेरे
हँस रहे हैं उन पगों पर जो बँधे हैं आज घर में

(पथ भ्रष्ट)

असल में 'मैं' (चाहे वह अपराधी हो या उपकारी) को मजाक बनाकर नहीं उड़ाया जा सकता। सम्पूर्ण संत-काव्य में 'मैं' परमात्मा के पास पहुँचने का एक महत्वपूर्ण माध्यम रहा है, एक सुदृढ़ सेतु-सा ? 'मैं' को समझना, उसको धुनना और उसके

अस्तित्व के प्रति अटल विश्वास बनाये रखना बड़े जीवट का काम है। जो 'मैं' को समझ सकता है वह अपने जी से दूसरों के जी की बात जान लेने का दमदार दावा भी कर सकता है। 'मैं' को मिटाकर मरा जा सकता है, जिया नहीं जा सकता। जीने की सबसे बड़ी शर्त है 'मैं' की शक्ति को समझना, उसे परखना।—'मैं', जो जीव के अस्तित्व का अकेला और अमर साक्ष्य है।

× × ×

खड़ी बोली काव्य में 'मैं' के अस्तित्व को मैंने 'मधुकलश' में पहली बार कवित्व के माध्यम से समझा है। और मुझे सहज ही यह महसूस हुआ कि 'मधुकलश' के 'मैं' का कवि बहुत सशक्त, संघर्षशील और संवेदनशील (भी) है। वह बहुत टूटा है, पर अपने अर्थात् जीव के अस्तित्व को लघु जानकर भी वह उसे रचनात्मक समझता है, उसे महान मानता है—

अग्रसर होता अधर में कल्पना-खग पर सँवर जब
अश्व द्वादश अंशुमाली के न पा सकते मुझे तब
पल चढ़ा आकाश में हूँ, पल पड़ा पाताल में हूँ
चंचला को भी चपलता मिल सकी मुझ-सी भला कब ?
आज मिट्टी के खिलौने हाथ हैं मुझ तक बढ़ाते
छू नहीं सकते कभी वे स्वप्न में भी छाँह मेरी

(कवि का उपहास)

सोचता हूँ, व्यक्ति जब अपने आपको ही दर्पण, दृष्य और दृष्टा जान लेता है तब उसका सामाजिक ह्रास अथवा अलगाव क्या सम्भव है ? अपने को समझने की शक्ति बहुत महान होती है ! इसे समझ लेने पर सभी आलोचनाएँ ठंडी पड़ जाती हैं। 'मधुकलश' में मैं एक ऐसे ही कवि-व्यक्ति को देख सका हूँ—

मैं हँसा जितना कि खुद पर कौन हँस मुझ पर सकेगा
और जितना रो चुका हूँ रो नहीं निर्झर सकेगा
मैं स्वयं करता रहा हूँ जिस तरह प्रतिशोध अपना
मानवों में कौन मेरा उस तरह से कर सकेगा

'मधुकलश' व्यक्ति की विवशता के प्रति खीज और आक्रोश को रागात्मक पदों-छंदों में रूपायित करने का प्राणवंत प्रयास है। विशिष्टता यह है कि यहाँ संयम है, तटस्थता है। यहाँ सहृदयता है, सहजता है, भाव-त्वरा और सम्बद्धता है। देखिये—

जीवन में दोनों आते हैं मिट्टी के पल, सोने के क्षण,
जीवन से दोनों जाते हैं पाने के पल, खोने के क्षण,
हम जिस क्षण में जो करते हैं हम बाध्य वही हैं करने को
हँसने के क्षण पाकर हँसते हैं रोते पा रोने के क्षण

(मधुकलश)

'मधुकलश' के कवि में अपने सृजन के प्रति जिस आत्म-विश्वास का बोध व्यक्त

होता है वह किसी एक का नहीं वरन उन सबकी अनुभूति का सगा है जो अपने जी से दूसरे के जी की बात जानने की इच्छा रखते हैं। यों 'मधुकलश' के 'मैं' परक कवि का आत्म-प्रसार हुआ है, जो खोट मिला हुआ सोना नहीं, कुँदन प्रतीत होता है। देखिये—

उस जगह जलधार बहती जिस जगह पर है तृषाकुल
फ़ूल हैं उस ठौर फूले बोलती जिस ठौर बुलबुल......
वृष्टि का होना सफल यदि एक भी तृण हो धरणि पर
एक भी तरु मंजरित यदि व्यर्थ कोयल का नहीं स्वर
वायु का बहना निरंतर मैं नहीं कहता निरर्थक
एक सर लहरा उठे यदि कर उठे द्रुम एक मरमर.........

और अंततः कवि का आत्म विश्वास है कि—

है नहीं निष्फल कभी यह गीतमय अस्तित्व मेरा
प्रतिध्वनित यदि एक उर में एक क्षीण कराह मेरी

(कवि का उपहास)

'मधुकलश' के गीतों की उर में प्रतिध्वनित होती हुई यह कराह, यह चोट, यह चीत्कार, कृति को लोक प्रियता प्रदान करती है।

'मधुकलश' का कवि मानवीय सहज आकांक्षाओं एवं भावनाओं को खूब समझता है और उनकी क़द्र करता है। इस कवि ने इतने पर भी जीवन के किसी पक्ष के प्रति नकारात्मक या उपेक्षा के भाव-विचार व्यक्त नहीं किये। आप सारी रचनाएँ पढ़ जाइये, जीवन की परिक्रमा ही परिक्रमा प्रतीत होगी। इस कवि का काव्य कोरे कागज़ पर नहीं जीवन-मानस पर लिखा हुआ है। जीवनानुभूति के रस को ध्वनित करने के लिए मधुकलश का एक उदाहरण प्रस्तुत है। यहाँ शुष्क तर्क नहीं है प्रत्युत रसास्था है—भाव और बोध का सहज संतुलन इस अंश का आकर्षण है—

शंख की ध्वनि यदि ज़रूरी झांझ की झंकार भी है
काठ की माला ज़रूरी यदि, कुसुम का हार भी है
शुष्क ज्ञानी चाहियें तो चाहिये रस सिद्ध कवि भी
सत्य आवश्यक अगर है स्वप्न की दरकार भी है

(कवि का उपहास)

× × ×

एक स्थल पर किये हुए को अ-किया हुआ कहने करने की सामर्थ्य भी यदि मनुष्य में नहीं रहती तो नियति जन्य विवशता को स्वीकार करने में क्या फ़र्क पड़ता है? पर नियति से पराजित होकर भी अपराजेय, और क्रियाशील बने रहने का सन्देश मधुकलश के कवि ने सर्वथा नई भंगिमा से दिया—

पांव चलने को विवश थे जबकि विवेक विहीन था मन
आज तो मस्तिष्क दूषित कर चुके पथ के मलिन कण

मैं इसी क्या करूँ अच्छे-बुरे का भेद भाई
लौटना भी तो कठिन है चल चुका युग एक जीवन
हो नियति इच्छा तुम्हारी पूर्ण मैं चलता रहूँगा
पथ सभी मिल एक होंगे तम भरे यम के नगर में !

'मधुकलश' मनोनुकूल जीवन जीने की व्यक्ति की अदम्य महत्वाकांक्षाओं, क्षमताओं स्वच्छदंताओं और उसके लांछित किंतु अटूट अस्तित्व-व्यक्तित्व को प्रबल पदों-छंदों में रूपायित करने का एक अनूठा प्रयास है। यदि उसे व्यक्ति के अस्तित्व का चीत्कारित धूमकेतु या 'मैं' के अस्तित्व-बोध का उद्‌गीत कह दिया जाय तो अत्युक्ति न होगी। देखिये—

थी तृषा जब शीत जल की खा लिये अंगार मैंने
चीथड़ों से उस दिवस था कर लिया शृंगार मैंने—
राजसी पट पहनने की जब हुई इच्छा प्रबल थी......
वासना जब तीव्रतम थी बन गया था संयमी मैं
है रही मेरी क्षुधा ही सर्वदा आहार मेरा

(कवि की वासना)

× × ×

राग के पीछे छिपा चीत्कार कह देगा किसी दिन
हैं लिखे मधुगीत मैंने हो खड़े जीवन समर में

(पथ भ्रष्ट)

× × ×

देख भीगे होंठ मेरे और कुछ सन्देह मत कर
रक्त मेरे ही हृदय का है लगा मेरे अधर में.........
रक्त से सींची गई है राह मंदिर-मस्जिदों की,
किंतु रखना चाहता मैं पाँव मधु-सिंचित डगर में
है कुपथ पर पाँव मेरे आज दुनिया की नज़र में

(पथ भ्रष्ट)

× × ×

मधु-कलश को बारबार पढ़ कर मैंने यह सोचा है कि उसमें तो बच्चन नाम के कवि (व्यक्ति) ने अपने ही जीवन की घटनाओं, पीड़ाओं और उसे मुक्ति दिलाने वाली मानवीय शक्तिओं को ध्वनित किया है। जग-निंदा के प्रति कड़ी सफ़ाई भी पेश की है। फिर मधुकलश से हमारा क्या नाता है ? हमें उससे क्या मिलता है ? और मूल आपत्ति तो यह है कि मधुकलश नितांत व्यक्ति परक काव्य है। वहाँ एक बौना व्यक्ति समाज के प्रति कितना विध्वंसक है—

हाथ ले बुझती मशालें जग चला मुझ को जलाने
जल उठीं छूकर मुझे वे धन्य अन्तर्दाह मेरी।

निश्चय ही 'मधुकलश' में एक बौने व्यक्ति का विराट् से होड़ लेने का ओछा अभिव्यंजन है। लेकिन जब पिटे हुए, पुराने मूल्यों से प्रभावित पाखंडी समाज प्रतिभावान नवयुवक-वर्ग की क्षमता का अवमूल्यन करे, उसकी स्वच्छंद भावना को लांछित करें तब सिवाय विद्रोह करने के और चरा ही क्या रह जाता है? और व्यक्ति जब कवि हो तो यह विद्रोह काव्य-वाणी-बनकर व्यक्त होता है। नेता हो तो नारों-भाषणों में व्यक्त होता है। इसी प्रकार भिन्न-भिन्न प्रतिभाओं का विद्रोह भिन्न-भिन्न रूपों में प्रकट होता है। ऐतिहासिक संदर्भों में व्यक्ति-विद्रोह की ऐसी जलती हुई मिसालें क्या कम है? चाणक्य, महाराणा प्रताप, छत्रपति शिवाजी, झांसीकी रानी, मीरा, कबीर, तुलसी आदि ने जन-मन क्रांति की अभिव्यक्ति व्यक्ति के विद्रोह को जगाकर ही की है। यह दूसरी बात है कि प्रत्येक की ध्वनि-धारा और उसका दिशि-पथ पृथक हो। राजनीति में क्रांति समाज के स्वर से शुरू होती है, साहित्य में व्यक्ति के स्वर से ।

बच्चन ने अपनी सीमा में प्रायः व्यक्ति के विद्रोह को प्रबल वाणी दी है। 'मधुकलश' मुझे इस दृष्टि से हिन्दी का अपने ढंग का अकेला सृजन लगता है।

और हलाहल? हलाहल का स्वर व्यक्ति के खंडित अस्तित्व की जय का स्वर है।

गरल पी भी मेरी आवाज़ अमरता का गाएगी गान,

'हलाहल' में मधुकलश के स्वर की दुर्दमनीय झंझावत शक्ति प्रधान न होकर एक सूक्ष्म दार्शनिक चिंता भी चलती रहती है। इस चिंता का आधार जीवन का सत्य अथवा युग का यथार्थ है—

न जीवन है रोने का ठौर, न जीवन खुश होने का ठौर
न होने का अनुरक्त, विरक्त, अगर कुछ करके देखो गौर
रहे गुंजित सब दिन, सब काल, नहीं ऐसा कोई भी राग
गया उस देश न आया लौट, अरे, कितना उसका विस्तार
कि उसकी जब करता है खोज स्वयं खो जाता खोजनहार
ताज का एक-एक पाषाण कहा करता दिन रात पुकार—
मुझे खा जाएगी दिन एक इसी यमुना की भूखी धार

अणु-परमाणु के अस्तित्व और उसकी अपरिमित शक्ति (ऊर्जा) का लोहा आज का विज्ञानवादी स्वीकार करता है। परमाणु की शक्ति-ऊर्जा आज विराट् से होड़ ले रही है। यही सूक्ष्म सत्य 'अहम्ब्रह्मास्मि' सम्बन्धी दार्शनिक निरूपण में हमारे दिग्गज मनीषियों ने मथा है जो सम्पूर्ण भारतीय दार्शनिक चिंता का सार है और आधुनिक व्यक्तिवादी अस्तित्वबोध का सर्वस्व है। 'हलाहल' का भावबोध और किंचित कल्पना वैभव इसी चिंता के अंतरगत चलता है—

अहर्निश मेरा यह आश्चर्य कहाँ से पाकर बल विश्वास
बबूला मिट्टी का लघुकाय उठाए कंधों पर आकाश

और लघु मानव के अस्तित्व बोध की यह अभिव्यक्ति कितनी प्रबल है—

आसरा मत ऊपर का देख सहारा मत नीचे का मांग

अतः मेरा सुझाव है कि व्यक्ति के मर्म और उसके अस्तित्व को समझने के लिये 'हलाहल' का पाठ अपेक्षित है—

मरण था भय के अंदर व्याप्त हुआ निर्भय तो विष निस्तत्व
स्वयं हो जाने को है सिद्ध हलाहल से तेरा अपनत्व

तभी तो, एक बार जब मैंने अपने पेट के मेजर ऑपरेशन की ख़बर बच्चन जी को टेलीफ़ोन पर मरी-मरी सी आवाज़ में दी तो उन्होंने तपाक से कहा, 'हाँ-हाँ करालो। और देखो, आज रात तुम मेरा 'हलाहल' पढ़ना।'

दर्द बहुत था। रात भर नींद नहीं आई। मैं रातभर हलाहल पढ़ता रहा। और दूसरे दिन सबेरे डाक्टरों ने ऑपरेशन करने की कोई ज़रूरत नहीं समझी। दर्द दवाओं से एकदम दब गया। और अब सोचता हूं कि मुझ पर शायद हलाहल पाठ का ही यह 'सायकोलोजिकल' असर था। सच, मेरे लिये तो वह चमत्कार बन गया, पुर्नजीवन बन गया।

पर मुझे यह जानकर आश्चर्य नहीं खेद होता है कि हमारा पाठक अभी तक केवल 'मधुशाला के कवि को ही जानता है। शायद वह 'मधुकलश' और 'हलाहल' के पास तक पहुँ-चने में कतराता है। तो क्या यह असमर्थता है? क्या हमारी रुचि, रूढ़ि-ग्रस्त है?

× × ×

'हलाहल' की पूर्ण कवित्व शक्ति को समझने के लिए जीवन के निर्मम भुक्त से, व्यतीत से और क्रूर काल-कर्म से व्यक्ति को जूझने की तीव्र प्रेरणा और मानवीय शक्ति अर्जित करती होगी। यदि व्यक्ति का व्यक्तित्व इस प्रकार का बन चुका है, यदि उस का व्यतित्व काल-कर्म-जयी बन गया है तो 'हलाहल' की कवित्व-शक्ति को समझना कठिन नहीं होना चाहिए। पर ऐसी कितनी कृतियाँ होती हैं, और कितने कवि जीवन को इस भांति जीकर आस्थावान और सृजन-रत रहते हैं? जो सचमुच ऐसे हैं, 'हलाहल' का उन्हें सौ-सौ बार निमंत्रण है। पर एक खास बात भी है—

सुरा पीने को थी बाजार
हलाहल पीने को एकाँत,
सुरा पीने को सौ मनुहार
हलाहल पीने को मन शाँत
हलाहल पीकर भी यदि साथ
किसी का चाहो, तो नादान,
अकेलापन है पहला घूंट
हलाहल का लो इसको जान!

अपने चारों ओर की युगीन (राजनीतिक, साहित्यिक, सामाजिक) परिस्थितियों और परम्पराओं से मधुकलश का कवि इतना जागरूक था कि उसे अपना पथ निश्चित करना कठिन हो गया। उसे पिटी चीजें पसन्द नहीं थीं। अपने लिए वह

'नवीनता' का पथ चाहता था। मन में, तन में, जीवन में सब जगह प्यास थी। और उसे उस प्यास के लिए मधु अथवा विष, जो कुछ भी हो, जुटाने की, उसे पी जाने की प्रबल आकांक्षा थी। क्योंकि सबसे बड़ी बात ये थी कि उसे अपने कवि पर सभी कवियों से अधिक बड़ा विश्वास था। देखिए—

स्थल गया है भर पथों से
नाम कितनों के गिनाऊं
स्थान बाकी है कहाँ पथ
एक अपना भी बनाऊं
विश्व तो चलता रहा है
थाम राह बनी-बनाई
किन्तु इस पर किस तरह मैं
कवि-चरण अपने बढ़ाऊं ?
राह जल पर भी बनी है
रूढ़ि, पर न हुई कभी वह
एक तिनका भी बना सकता
यहाँ पर मार्ग नूतन !

'जल पर राह बनने पर भी वह कभी रूढ़ि नहीं बनती'—इस भाव-विचार के बल पर इस कवि ने छायावादी-रहस्यवादी काव्य से कट कर 'मधु-काव्य' की रचना की। और निश्चय ही बच्चन की मधु-काव्य की संर्जना स्वयं किसी और के लिए तो क्या, उनके लिए भी रूढ़ि न बन सकी। इसके उपरान्त बच्चन ने कुछ और तरह से लिखा है। पर उनके मधुकाव्य का मूल्य अपने में स्थिर है। और कुल मिलाकर बच्चन के सम्पूर्ण काव्य-सृजन में 'मधुकलश' अजेय पौरुष का प्रतीक-सा अनुभव होता हैं। और हलाहल ? वह तो अजेय मन का मंथित पदार्थ है, प्रसाद है। हलाहल, मधु का सहजन्मा, उसका सहोदर ! जिसे पानकर शिव अमर हैं, असीम है, महिमावान हैं।

हलाहल पीकर लेगा जान कि तू है कितना महिमावान
नहीं है उनमें तेरा स्थान कि जिनका होता है अवसान
हुई है फिर-फिर जग की सृष्टि हुआ है फिर-फिर जग का नाश
कि तू दोनों स्थितयों से भिन्न तुझे हो फिर-फिर यह विश्वास

इन पंक्तियों का गम्भीर अर्थ अथवा महत्व तो शैवागमों का कोई गम्भीर ज्ञाता ही बता सकता है। किन्तु प्रतिभावान तथा समर्थ व्यक्ति के अजेय व्यक्तित्व को और उसके मनस्तत्व को समझने के लिए 'हलाहल' का मूल्य और महत्व स्थाई है। यों मेरा मत है कि अस्तित्ववादी दर्शन की यदि सशक्त अभिव्यंजना आपको देखनी है तो पहले कवि की इन पंक्तियों को ध्यान से पढ़ा जाना चाहिए—

एक में जीवन सुधा-रस दूसरे कर में हलाहल

अर्थात् एक हाथ में मधुकलश और दूसरे में हलाहल ? और अब आप इन्हें

साथ-साथ पढ़ियेगा। क्योंकि जग-जीवन में मधु और हलाहल को (भावात्मक स्थिति में) पृथक-पृथक समझना अत्यंत कठिन है। पर इन दोनों के प्रति समरसता का भाव अनुभव करते हुए उनका रसास्वादन करना एक महान स्थिति है।

मधुकलश और हलाहल की व्यक्ति परक अभिव्यजना के पीछे मनुष्य की नियति है। आगे जग-समाज का क्रूर विधान है। बीच में आकांक्षाओं के धधकते हुए अंगारे हैं। इस सबकी अभिव्यक्ति अनिवार्य थी नहीं तो व्यक्ति-विस्फोट हो जाता अतः नियति-समाज-जन-जीवन और अर्न्तदाह के परिवेश में कवि की (जीव की) महत्वाकांक्षा का, उसके आत्म-साहस और संघर्ष का, उसके टूटे-जुड़े अस्तित्व के प्रखर स्वर का मुखरण बच्चन के कवि को खड़ी बोली की सभी समर्थ कवियों से पृथक कर देता है। यह पृथकता उसके कृतित्व और व्यक्तित्व को समाज और सृजन की दृष्टि से 'इनफ़ीरियर, या 'आयसोलेट' सिद्ध नहीं करती बल्कि उसका 'सिगनिफिकेन्स' सिद्ध करती है। कई मानो में वह 'सुपिरियर' भी है। चोट खाए हुए अहम् तथा अस्तित्व की कितनी भावशवलताएँ और कितनी दुर्दमनीय दर्पोक्तियाँ होती हैं, संदर्भवश कहूँ कि बच्चन कृत एकाँत संगीत तथा मधुकलश के गीतों को पढ़कर पता चलता है। इन गीतों में विपिन्नता की हीन अनुभूति से ग्रस्त मध्यवर्गी महत्वाकांक्षी युवक-वर्ग की 'मानसिक हलचल ध्वनित होती है। इस स्वर पर' आत्म-केन्द्रिकता' का सामाजिक आरोप लगाया गया है। किन्तु कौन व्यक्ति आत्म-केन्द्रित नहीं होता ? महात्मा गांधी कितने होते हैं ? व्यक्ति की दुर्दमनीय महत्वाकांक्षा की तथा संकटकाल में धैर्य रखने एवं संघर्ष करने का संकल्प करने की अभिव्यक्ति करना क्या औरों के लिए प्रेरणाप्रद नहीं है ?

और इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए इन दोनों कृतियों को पढ़ना अपने आप में लघु व्यक्ति को विराट् रूप में देखने, समझने की भावत्मक दृष्टि बनाना है। (इस विषय में आगे लेख संख्या आठ भी पठनीय है।)

●

बच्चन की काव्य-भाषा

बच्चन की काव्य-भाषा

बच्चन कोर्स के किताबी-कवि नहीं है। वे लोक-प्रिय कवि है। उनकी कविता मन की वस्तु है। अतः शायद ही कहीं बच्चन की कविता को समझने के लिए कोष कन्सल्ट करने की आवश्यकता पड़ती हो। उनकी कविता का प्रत्येक शब्द ऐसा लगता है मानो हमारी बोलचाल का हो। साधारण बोलचाल की भाषा में जैसा उत्कृष्ट काव्य बच्चन जी ने लिखा है वैसा खड़ी बोली के किसी अन्य प्रसिद्ध कवि ने नहीं रचा। तात्पर्य यह है कि उनकी काव्य-भाषा की विशिष्टता है सामान्यता, ऋजुता, सरलता। और भाषा की ऋजुता-सरलता में भावों की उत्कृष्टता समायी होती है। खड़ी बोली के प्रायः सभी समर्थ कवियों के काव्य की अपेक्षा बच्चन के काव्य में संधियों व समासों का प्रयोग नगण्य-सा है। छायावादी कवियों के बीच रह कर भी यह कवि छायावादी डिक्शन या इडियम से पृथक लोक-जीवन की भाषा में अपने उत्कृष्ट काव्य की सर्जना करने के लिए अग्रसर हुआ, यह उसकी भाषागत नवीन स्वच्छंद प्रवत्ति का सूचक है। निश्चय ही जन-मन को वश में करने वाली अद्भूत सरलता जितनी बच्चन की काव्यभाषा में है वह समग्रतः अपना उदाहरण आप है। छायावाद के उत्तरार्ध के समर्थ कवियों (दिनकर, नेपाली अंचल, नरेन्द्र शर्मा) का काव्य वैशिष्ट्य पूर्व छायावादी कलात्मक अभिव्यंजना के रूपों के सरलीकरण में है। और इससे भी विशेष बात यह कि इन कवियों ने जन-जीवन के यथार्थ को अभिव्यक्त करने के लिए जन-भाषा अर्थात् आमफ़हम भाषा का सहज, सशक्त और सार्थक प्रयोग-उपयोग किया। और इस दृष्टि से बच्चन की काव्योपलब्धि अपने समकालीन सभी समर्थ कवियों की काव्योपलब्धि से कहीं अधिक महत्वपूर्ण है। पर अभी तो नयी कविता और पुरानी कविता के प्रतिमान निश्चित करने की कशमकश चल रही है। जब कभी इससे नजात मिलेगी तब कहीं छायावाद के उत्तरार्ध के इस कवि की काव्योपलब्धि का सम्यक विवेचन हो सकेगा।

इस संदर्भ में हम पहले काव्यभाषा और उसकी शक्तियों के विविध पहलुओं पर विचार करेंगे और छायावाद तथा उसके उत्तरार्ध की काव्य-भाषा पर एक तुलनात्मक दृष्टि डालेगे ताकि उसके परिप्रेक्ष्य में उत्तरार्ध के प्रतिनिधि कवि बच्चन की काव्य-भाषा का सही व स्वतंत्र मूल्याँकन-महत्वाँकन हो सके :—

× × ×

भाषा का निर्माण शब्दों द्वारा होता है। शब्द विहीन भाषा की महत्ता या कल्पना रचानात्मक कभी नहीं हो सकती। शब्दों के सुव्यवस्थित प्रयोग से भाषा में

ऐसी अद्भुत शक्ति आ जाती है कि वह मानव के अन्तरजगत के अनंत अर्थ-आशयों को अभिव्यक्त करती है। अतः यदि भाषा अर्थ-आशय को अभिव्यक्त करने वाली अद्भुत शक्ति है तो शब्द-प्रयोग उसकी रचना का मूल तंत्र है। इससे यह तथ्य निकलता है कि काव्य का प्रथम प्रभाव उसमें प्रयुक्त शब्दों द्वारा ही पड़ता है। शब्द-शिल्प एक ऐसा विधान है कि जिसका मात्र ऊपरा महत्व ही नहीं वरन रसिक या सामाजिक के लिए उसका मानसिक महत्व भी है। इतना ही नहीं स्वयं कवि अपनी शब्द-क्षमता से प्रेरित होकर कव्य-रचना के लिये प्रवृत्त होता है।

× × ×

काव्य-सृजन में अर्थ प्रधान है या शब्द, यह प्रश्न इसलिए महत्वपूर्ण नहीं है क्योंकि एक के अभाव में दूसरे की सत्ता कुछ नहीं है[1]। अब तक शब्दहीन काव्य की रचना नहीं हुई है और न अर्थहीन काव्य ही रचा गया है। सामाजिक या रसिक तो शब्द-योजना अर्थात् काव्य-भाषा (डिक्शन) के माध्यम से ही काव्य का रसास्वादन करता है। आलोचकीय दृष्टि से पृथक काव्य की सामाजिक शक्ति की कसौटी काव्य-भाषा है। किन्तु इस कसौटी पर काव्य का अर्थ रूपी स्वर्ण ही कसा जाता है। अर्थात् काव्य के अर्थ का सामाजिक महत्व अन्तिमरूप से है। पर उसकी प्रारम्भिक कसौटी तो भाषा ही है। संस्कृत काव्यशास्त्र के दिग्गज आचार्य भामह के इस सूत्र में काव्य के लिए शब्द के बाद अर्थ की सहितता का मेरे विचार से यही प्रयोजन है। जादू वह जो सिर पर चढ़ कर बोले—'शब्दार्थौ सहितो काव्यम[2] पर संश्लिष्टतः काव्य-सृजन और रसास्वादन के लिए शब्द और अर्थ का सम्बन्ध समान, पराश्रित और अटूट है। एक के अभाव में दूसरा नहीं हो सकता। अलोचक एच. रीड, के विचार से काव्यार्थ तथा शब्दार्थ में कुछ भी भेद नहीं है। वे तो यहाँ तक कहते हैं कि जो शब्द का अर्थ है वही काव्य का भी अर्थ है।[3] अर्थात् शब्द की जो अभिधा नाम की शक्ति है, जिसके आधार पर सामान्य जन अपना सामाजिक जीवन वर्तता और व्यवहार में लगाता है, वही काव्य में महत्वपूर्ण है। किन्तु यहीं काव्य के सन्दर्भ में भाषागत मतभेद पैदा होता है।

यहाँ तक तो ठीक है कि काव्य-सृजन में भाषा अथवा शब्द-प्रयोग का निर्विवाद महत्व है। किन्तु क्या यह प्रयोग रूढ़िमय रूप में ही होना चाहिए? इससे तो काव्य को क्षति पहुँचने का खतरा है। शब्द की सामान्य शक्ति का नाम 'अभिधा है। उसका वाहक कहलाता है वाचक शब्द या पद। इस अभिधा शक्ति से प्रसूत अर्थ 'वाच्यार्थ' कहलाता है। जैसे—

---

१. **गिरा अरथ जल बीच सम कहिअत भिन्न न भिन्न**
तुलसीकृत रामचरित मानसः बालकाँडः दोहा १८।

२. **काव्यालंकार प्रथम परिच्छेद, १६।**

३. **फार्म इन मोडॆन पोयट्री : पृ० ४५ : एच० रीड।**

रीतिकालीन आचार्य देव ने साफ़-साफ़ अभिधा का समर्थन ही नहीं किया है अपितु लक्षणा-व्यंजना वाले काव्य की अच्छी भर्त्सना की है।[१]

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और गुलाबराय दोनों ही ने अभिधा के काव्यात्मक महत्व को माना है। गुलाबराय जी का कहना है कि—'लक्षणा और व्यंजना अभिधा पर ही आश्रित रहते हैं।'[२] आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने कहा है—'कवि को ऐसी भाषा लिखनी चाहिए जिसे सब कोई सहज में समझ ले और अर्थ को हृदयंगम कर सके—यदि इस उद्देश्य की सफलता न हुई तो लिखना ही व्यर्थ हुआ। इसलिये क्लिष्ट की अपेक्षा सरल लिखना सब प्रकार वाँछनीय है—मुहावरों का भी विचार रखना चाहिये।'[३] और काव्य-भाषा की सरलता के प्रति तो महाकवि तुलसीदास जी भी आकर्षित रहे—

सरल कवित कीरति बिमल सोइ आदरहिं सुजान[४]

उपर्युक्त विचारों के परिप्रेक्ष्य में यह स्पष्ट होता है कि काव्य-भाषा के प्रयोग में काव्य की अभिधा शब्दशक्ति का मूल महत्व स्वीकार किया गया है। किन्तु 'वाच्यार्थ' मात्र से उत्कृष्ट अथवा महान काव्य नहीं रचा जा सकता। कारण यह है कि उसके प्रयोग से काव्य में नवीन उद्भावनाओं का अर्थ-सौन्दर्य उत्पन्न नहीं हो सकता जिससे रस निष्पन्न होता है।

माइकेल राबर्ट्स के विचार से 'भाषा की सम्भावनाओं की तलाश का नाम ही कविता ह।[५]

इस कथन से जहाँ काव्य में भाषा का अन्यतम और अन्तिम महत्व इंगित किया गया है वहीं उसकी शक्ति का आयाम असीमता से भी जुड़ता है। निस्सन्देह काव्य-रचना में कवि सामान्य शब्दों के द्वारा महान सत्यों और कल्पनाओं को रूपायित कर देता है। शब्द की गूँज अर्थ की विराट् परिक्रमा करने पर भी विलीन नहीं होती, इसे सिद्ध करना प्रत्येक कवि के बस की बात नहीं होती। कालिदास, तुलसीदास कबीर, ग़ालिब और शेक्सपीयर अधिक तो नहीं होते। महान कवियों का सम्पूर्ण

---

१. अभिधा उत्तम काव्य है, मध्य लक्षणा लीन। अधम व्यंजना रस कुटिल उलटी कहत नवीन।

शब्द रसायनः षष्ठेय प्रकाशः पृष्ठ ७२: आचार्य देव।

२. सिद्धान्त और अध्ययनः २१६ । गुलाबराय।

३. रसज्ञ रंजनः कवि के कर्त्तव्य के अन्तर्गत (भाषा) महावीर प्रसाद द्विवेदी। उद्धरण लिया-आधुनिक साहित्य की व्यक्तिवादी भूमिका: पृ० १२५: डा० बलभद्र तिवारी।

४. रामचरित मानस-बालकांड-दोहा १४ (क)

५. दे फेबरिट बुक आफ़ मार्डन वर्स। सम्पादक माइकेल राबटर्स की भूमिका: पृ० १८: सन् १९३६

कवित्व-शिल्प और उनका विषय-व्यक्तित्व उनकी भाषा में ही समाया होता है। उनकी भाषा का शब्द-शब्द नूतन सृजन की सम्भावनाओं की तलाश होती है। उनकी भाषा में अभिधा शक्ति, जिसे शब्द की मूल शक्ति कहना चाहिये, होते हुए भी शब्द-प्रयोग की ऐसी भंगिमा होती है (ग़ालिब का अंदाजे बयां) जिसमें अलंकार, वक्रोक्ति, ध्वनि और औचित्य सभी कुछ समन्वित होकर व्यक्त हो जाता है। यहाँ यह कहने की गुंजायश नहीं होती कि यह लक्षणा प्रधान काव्य है, यह व्यंजना प्रधान काव्य है। यहाँ अभिधा में लक्षणा-व्यंजना का महत्व आप द्योतित होता है—जैसे स्वच्छ सरोवर के जल में आकाश की नीलिमा तथा चन्द्र-किरणों की रंगीन आभा आप ही झलमलाती है। जहाँ भाषा की सरलता-ऋजुता को हेय समझ कर कवि लक्षणा-व्यंजना के सौंदर्य के लिये नवीन उक्तियों एवं प्रतिबिम्बनाओं की खोज में लग जाता है वहीं अर्थ से अनर्थ होने लगता है। ऐसी कृतियों के पठन-पाठन में कोई सहज रुचि नहीं रखता।

संक्षेप में काव्य-भाषा का सरल होना नितांत आवश्यक है। इसके लिए शब्द की मूलशक्ति अभिधा की महता का बोध होना अनिवार्य है। किंतु मात्र अभिधा ही काव्यभाषा के लिए उपयुक्त नहीं है। इसके लिये उसमें अभिव्यक्ति के अन्य तत्व, अलंकार, छन्द, ध्वनि, वक्रोक्ति और औचित्य आदि का सहज समाहार होना चाहिये। किन्तु यह सब कुछ आयासजन्य नहीं होना चाहिये नहीं तो उससे अनुभूति का दम घुट जायेगा।

महान कोटि के कवियों में अनुभूति के संगीत को मुखरित करने के लिये शब्दों के प्रयोग आप से आप इस तरह होते हैं जैसे अनेक साज़ एक मधुर आवाज़ के साथ उसके प्रभाव और सौंदर्य को बढ़ाने के लिये बजते जाते हैं। ऐसा तभी होता है जबकि कवि में विभिन्न भावों को सहज ढंग से व्यक्त करने वाले शब्दों की समाहार शक्ति होती है। देशकाल और वातावरण के प्रभाव से कवि बच नहीं सकता। आधुनिक युग में तो यह बचाव कभी भी सम्भव नहीं।

हिन्दी साहित्य के प्रथम महाकवि चन्द्रबरदाई की काव्य-भाषा में विविध भाषा के शब्दों की समाहार शक्ति का अद्भुत परिचय मिलता है। मध्यकालीन संत-भक्त कवियों के काव्य में इस शब्द-समाहार-शक्ति का परिचय मिलता है। कबीर का काव्य इसका ज्वलंत प्रमाण है। तुलसीदास जैसे कवि ने उर्दू-फ़ारसी के शब्दों का प्रयोग किया है। रीतिकालीन कवियों ने तो भाषा की समाहारशक्ति का खूब परि-

---

१. 'षट् भाषा पुराणं च। कुरानं कथितंमया।'
संक्षिप्त पृथ्वीराज रासो
आदि पर्व श्लोक २५
सम्पादक हजारी प्रसाद द्विवेदी
तृतीय संशोधित संस्करण १९६१

चय दिया है । छायावाद-पूर्व काव्य में समाहार शक्ति का परिचय मिलता है । किन्तु छायावादी युग में कवि संस्कृतनिष्ठ पदावली रचने की ओर प्रवृत्त हुए । और इसमें अति हो गई । भाषा की ऋजुता समाप्त हो गई । भाषा की ऋजुता का तात्पर्य है असंयुक्त शब्द, सीधे विशेषणों से युक्त पदावली तथा अलंकारों बिम्बों से अधिक अभिव्यक्ति में अनुभूति की तीव्रता का अंकन । पर छायावादी काव्य में इस ऋजुता का ध्यान नहीं रखा गया है ।

शब्दों में ध्वनि विस्फोट होता है, एक नाद होता है । वैयाकरणों के विस्फोटवाद, नाद-विन्दु और शब्द-ब्रह्म की दार्शनिक व्याख्या न कर हम यहां केवल यह संकेत देना चाहते हैं कि इस दृष्टि से 'ध्वन्यात्मकता' का काव्य में विशिष्ट स्थान है । व्यंजना शक्ति का सम्बन्ध भी इसी ध्वन्यात्मकता से है । काव्य शास्त्र में ध्वनि का दर्जा 'रस' के बराबर माना गया है । ध्वनि सम्प्रदाय के प्रथम आचार्य आनंदवर्धन हैं । वे उसी काव्य को महान मानते हैं जिसमें ध्वन्यार्थ प्रधान हो । वे अभिधा और लक्षणा का क्रिया-व्यापार केवल शब्द से सम्बन्धित मानकर व्यंजना को उससे ऊपर की सूक्ष्म शब्द-अर्थ वस्तु मानते हैं । किन्तु मेरे विचार से शब्द की अभिधा शक्ति ही व्यंग्यार्थ की नींव की ईंट है । किसी वास्तविक वस्तु या कथ्य को मानसिकता में मूर्त करने वाली शक्ति मूलतः अभिधा ही है । यदि कवि के पास वास्तव में कुछ कहने की वस्तु है तो उसके कथ्य को कथन में रूपायित करने वाली शब्द-शक्ति अभिधा ही हो सकती है । और यदि वास्तव में कुछ कहने की वस्तु होगी ही नहीं, सब कुछ कल्पनामय होगा, तो निश्चय ही कवि चमत्कारपूर्ण उक्तियों का प्रयोग करेगा । ऐसी दशा में यह समझ लेना चाहिए कि वहाँ केवल शब्द का मोहजाल ही बुना गया है । इस क्रम में क्रोचे का एक महत्वपूर्ण मत रखना उचित होगा । वे लिखते हैं—

'He who has notbtng definite to express may try to hide his emptiness with a fiood of words.1

इस परिप्रेक्ष्य में छायावादी काव्य में निश्चय ही शब्दों का व्यामोह या मोहजाल प्रधान है जिसे आलोचकों ने लक्षणा-व्यंजना के सौन्दर्य-शास्त्र के सिद्धान्तों द्वारा बहुत सराहा है । किन्तु चूँकि उत्तरार्ध के तरुण कवियों के पास जग-जीवन की अन्तरमंथित कुछ वस्तु थी अतः उन्होंने मानसिकता को मूर्त करने वाली शब्द की अभिधा शक्ति द्वारा ही कवित्व की रचना की है । इस प्रकार वहाँ अभिव्यक्ति में कुछ छिपाने की भंगिमा नहीं है और न शब्दों का करामती शिल्प । अभिधामूलक ध्वनि के असंलक्ष्यक्रम व्यंगध्वनि और संलक्ष्यक्रम व्यंग ध्वनि के मूल में वाच्यार्थ ही सक्रिय रहता है । ध्वनि निश्चय ही भाषा की वह सूक्ष्म शक्ति है जिससे काव्य की पदावली सरस और

---

1. Aesthetic—Intution end Repression page 99/D : Bendetto Cвoce.

सुन्दर बनती है। काव्य की ध्वन्यात्मकता से अर्थ मूलत: भाषा की भंगिमा से है जिससे कवित्व में कवित्व के गुणों की प्रतिष्ठा होती है। कवित्व की आत्मा अनुभूति है और इस आत्मा की अभिव्यक्ति का स्वर ध्वनि ही है। इस स्वर में निखार लाने के लिए कवि अनेक अलंकारों तथा बिम्बों की खोज करता है। पर यहीं एक खतरा है कि इस खोज में ही इसका खोजनहार स्वयं कहीं खो न जाए। शाब्दी या आर्थी व्यंजना-व्यापार के द्वारा जब कवि अर्थ-सूक्ष्मता के आकाश पार करने लगता है अथवा प्रतीकों, बिम्बों, रूपकों, विशेषण-विपर्ययों, मानवीकरणों एवं फ़ीगर्स-आ-फ़ साउन्डस (नाद-सौन्दर्य) सूचक वर्णों-व्यंजनों-स्वरों का प्रयोग 'अति' से करने लगता है तभी अनर्थ होने लगता है। शुद्ध छायावादी काव्य में इसकी अति हो गई थी। अत: उसका ह्रास अवश्यंभावी था। काव्य-भाषा विषयक विवेचन के परिप्रेक्ष्य में जब हम छायावाद के उत्तरार्ध के गीतों पर दृष्टि डालते हैं तो स्पष्ट ज्ञात होता है कि वहाँ छायावादी काव्य की तुलना में भाषा का स्तर बदलता गया है। उदाहरण के रूप में छायावादी गीत-काव्य में इस प्रकार के बहुत से शब्दों का प्रयोग किया गया है जिनका उच्चारण करते समय सामाजिक को जीभ और जबड़े में या तो एकदम रिक्तता-सी अनुभव होती है या तनाव पैदा होता है। ये कुछ शब्द इसके प्रमाण हैं—

(मुखरण में रिक्तता-सी अनुभव कराने वाले शब्द) स्वन, स्मृति, स्तब्ध, सस्नेह स्थित, दिक्, अनुक्षण, आदि। (मुखरण में तनाव-सा अनुभव कराने वाले शब्द) गुह्य, मूर्छना, भर्त्य, जीर्ण, हविष्य, जाड्य, आदि। तात्पर्य यह है कि छायावादी पदादली और उसका छंद-विधान सामाजिक को उच्चारण की दृष्टि से मुख-सुख सुविधामय प्रतीत नहीं होता। भले ही उसमें कितना भी कलात्मक सौन्दर्य का भाव अर्थ क्यों न निहित हो। पर उत्तरार्ध के गीतकाव्य में शब्दावली का प्रयोग जन-जिव्हा एवं जबड़े के अनुकुल बैठता है। वहाँ संयुक्त वर्ण-व्यंजन का रबर-सा तनने और सिकुड़ जाने वाला प्रयोग न होकर सीधा और सहज प्रयोग हुआ है। छायावादी काव्य-भाषा में व्याकरण के सर्वनाम, लिंग, वचन, क्रिया पद, विशेषण तथा विस्मयादि बोधक शब्दों का शिल्पमय प्रयोग करने का विशेष आग्रह लक्षित होता है। पर छायावादोत्तरार्ध के प्रतिनिधि कवि बच्चन के काव्य में इनका प्रयोग छायावादी आँतक के स्तर का नहीं हुआ है। यों भाषा विज्ञान की दृष्टि से इस कवि की काव्यभाषा में विकास के लक्षण प्रतीत होते हैं। छायावादी आलोचक और वैयाकरण सम्भवत: इसे ह्रास का लक्षण कहें किन्तु भाषा-विज्ञान और काव्य-विकास की दृष्टि से यह विकास का लक्षण ही कहा जा सकता है। छायावादोत्तरार्ध के कवि की भाषा अभिव्यक्ति के आँतक से मुक्ति पाने की तलाश है। इस काव्य को व्यंजना रहित काव्य कहना असंगत है। आलोच्य काव्य की मुख्य विशेषता यही है कि यहाँ जिस भाषा का प्रयोग किया गया है उसमें अभिधार्थ के आधार पर ही वाँछित व्यंग्यार्थ का द्योतन हुआ है। कोरी व्यंजना का कमाल दिखलाने का कमाल उत्तरार्ध के कवियों ने नहीं दिखलाया।

अनुभूति के आलोक में इन कवियों ने मन को मथने वाले अंतर्द्वंदों को भाषा द्वारा व्यक्त किया है। अतः प्रतीयमान अर्थ के चमत्कार और वायवीपन से पृथक इन्होंने ऐसी पदावली की रचना की है जिसे पढ़कर सामान्य पाठक अभिभूत होता जाता है। उसे वह अपने मन की भाषा की भंगिमा ही प्रतीत होती है। यहां व्यंजना अनुभूति सापेक्ष रही है। कल्पना यहाँ गौण है। यही कारण है कि उत्तरार्ध के गीतों में एक ही भाव को अनेक बार दुहराया भी गया है। अतः वहाँ नवीन अभिव्यक्ति की संकीर्ण परिधि भी प्रतीत होती है। किन्तु इससे श्रेष्ठ रचनाओं के प्रभाव को कोई क्षति नहीं पहुँची। बच्चन, दिनकर, नरेन्द्र शर्मा, अंचल तथा नेपाली की अनेक रचनाएँ इस दृष्टि से महान हैं। पर इनके अनुकरण पर जो रचनाएँ रची गईं उनका मूल्य संदिग्ध है।

× × ×

बच्चन की काव्य-भाषा का सर्वाधिक महत्व उसकी शब्द-समाहार-शक्ति में निहित है। छायावादी काव्य की भाषा संस्कृत पदगर्भित है। उसमें अभिजात्य तत्व विशेष सक्रिय रहा है। अतः सामान्य जनता के बोलचाल के शब्दों का प्रयोग वहाँ वर्जित-सा रहा। किंतु उत्तरार्ध के सम्पूर्ण गीतकाव्य की भाषा में सामान्य बोलचाल की शब्दावली प्रयोग में लाई गई और अनेक मुहावरों, उपभाषाओं तथा अंग्रेज़ी के शब्दों का प्रयोग तक किया गया है। इस प्रयोग की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह भाव और भाषा की प्रकृति के सर्वथा अनुकूल बैठा हैं। यहाँ प्रयोग में ऋजुता है। कहीं पर भी आयास आभासित नहीं होता। कहीं पर भी न्यूनपदत्व, निरर्थक विशेषण, शिथिल क्रियापद, अव्यय लोप, लिंग अथवा छंद विपर्यय-दोष देखने में नहीं आता। शब्द की समाहार शक्ति तथा मुहावरों के प्रयोग एवं भाषा-ऋजुता की दृष्टि से बच्चन का योगदान महान है। इस दृष्टि से बच्चन का काव्य अपनी तुलना नहीं रखता। दिनकर', नेपाली, 'अंचल', नरेन्द्र शर्मा ने भी इस दिशा में महत्व पूर्णयोगदान किया है।

ध्वन्यात्मकता की दृष्टि से आलोच्य काव्य छायावादी काव्य की अपेक्षा दुर्बल है। कारण यह है कि उत्तारार्ध के गीतकार कवियों की मूल पूँजी उनकी अनुभूति थी जिसे व्यय करना ही उनका ध्येय रहा। अतः कोमलकांत पदावली, विम्ब-विधान नूतन अलंकृतियाँ एवं प्राकृतिक दृष्यों का छाया-प्रकाशमय सौन्दर्य यहाँ छायावादी काव्य की कोटि का नहीं है। किंतु यहाँ अनुभूति की ऐसी ध्वनि है जो सहज ही मन को आन्दोलत करती है। सम्प्रेषण की शक्ति इस काव्य में इतनी है कि पदावली स्वतः मन में मँडराने लगती है। निश्चय ही यहाँ उदात्त स्तर की ध्वन्यात्मकता नहीं है। किन्तु निश्चय ही वह ऐसे स्तर की है जिससे सामान्य जन-मन अपने श्वासों एवं स्वरों का साझा अनुभव करता हैं।

कुल मिलकर छायावाद के उत्तरार्थ के गीतों की भाषा के विषय में कुछ विशेष निष्कर्ष हाथ आते हैं—

१. उत्तारार्ध के गीतों की शब्द-शक्ति जीवन के आनुभूतिक सत्य के परिप्रेक्ष्य में परखी जा सकती है। मूलतः वहाँ शब्दशक्ति का प्रयोजन प्रतीयमान अर्थ को ध्वनिन करना नहीं है वरन ईमानदार अभिव्यक्ति की प्रतिबद्धता को मुखरित करना है।[1]

और यदि काव्य अंततः जीवन का जीवन के लिये सृजन है तो आलोच्य गीत-काव्य की अपरिमित शब्दशक्ति पर सन्देह नहीं किया जा सकता, फिर चाहे वह व्यंजना रहित और अभिधामय ही क्यों न कही जाय।

२. उत्तरार्थ के गीतकाव्य में लोक-व्यवहार में आने वाले जितने और जितने प्रकार के शब्दों-मुहावरों का समाहार हुआ है वैसा खड़ी बोली के सम्पूर्ण गीतकाव्य में नहीं हुआ है, यह निर्विवाद सत्य है। जीवन की प्रत्येक अनुभूति को व्यक्त करने में छायावाद के उत्तरार्ध की काव्य-भाषा समर्थ है और इसके अनेक ज्वलंत प्रमाण अकेले बच्चन के काव्य से ही दिये ज़ा सकते हैं। छायावादी काव्य-भाषा के गोरखधंधे से पृथक इस कवि ने काव्य की भाषा का एक नया अंदाज़ और नया पथ निर्मित किया। यह वह पथ था जिसको निर्मित करने के सूक्ष्म संकेत माखनलाल चतुर्वेदी ने छायावादी युग में ही अपने काव्य द्वारा दिये थे और आगे नवीन एवं भगवतीचरण वर्मा ने इस दिशा में स्फुट प्रयास किया। किंतु बच्चन ने शब्द-समाहार-शक्ति का एक नूतन आदर्श-पथ ही निर्मित कर दिया। उनकी काव्य-भाषा का अनुकरण कर बहुत से तरुण कवियों ने गीत-काव्य रचा किंतु बच्चन का काव्य इस दृष्टि से सर्वथा सदैव गत्यात्मक रहा—

मैं जिस थल पर था कल उस थल पर आज नहीं
कल इसी जगह फिर पाना मुझको मुश्किल है[2]

दिनकर, नेपाली, अंचल, नरेन्द्र शर्मा, उत्तरार्ध के इन चार कवियों के काव्य में भी शब्द समाहार शक्ति के नूतन आयाम आभासित होते हैं किंतु उसकी महत्ता बच्चन की उपलब्धि की अपेक्षा आंशिक ही सिद्ध होता है।

३. उत्तरार्ध के गीत-काव्य की ऋजुता ही उसके सम्पूर्ण शिल्पविधान की विशिष्टता है। भाषागत ऋजुता के कारण ही इस काव्य की अभिव्यक्ति में भाव-संम्प्रेषणीयता की अद्भुत शक्ति आ गई है। इसी ऋजुता के कारण पदावली अभिधार्थ का सहज अति-

---

१. **जो किया उसी को करने की मजबूरी थी**
जो कहा वही मन के अंदर से उबल चला।

मिलनयामिनी: बच्चन।

या—**मैं रोया तुम कहते हो गाना, मैं फूट पड़ा तुम कहते छंद बनाना।**

आत्मपरिचय कविता: बच्चन।

या—**राग के पीछे छिपा चीत्कार कह देगा किसी दिन**
हैं लिखे मधुगीत मैंने हो खड़े जीवन समर में।

(मधुकलश: बच्चन)

२. **मिलनयामिनी: बच्चन।**

क्रमण कर पाठक को अनुभूति के अर्थ-रस की भूमिका में लीन कर लेती है। इसी ऋजुता के कारण यहाँ प्रकृति की पृष्ठभूमि इतनी परिचित-सी प्रतीत होती है कि मनोभावों के राग को गूँजने का एकांत अवकाश मिलता है।[1] इसी ऋजुता के कारण इस काव्य में छायावादी छंद और भाषा की शिल्पगत कृत्रिमता एवं क्लिष्टता न होकर प्रसाद गुण सम्पन्न एवं लिंग, विशेषण, क्रियापद, अव्यय आदि दोषों से रहित अभिव्यक्ति की पूर्णता, सुकरता और छंद-प्रास का लायलालित्य अर्थात् गेय पदावली का वैशिष्ट्य बना रहा है।

४. आलोच्य काव्य में अलंकृतियों और प्रतिबिम्बनाओं के मायावी तत्व प्रधान नहीं हैं। अत: वहां ध्वन्यात्मकता अधिक नहीं है। इसके अभाव में नि:संदेह इतस्तत: कवित्व को क्षतिग्रस्त भी होना पड़ा है। अनुभूति की पूंजी के व्यय होने पर अनेक रचनाओं में भौंडापन भी आ गया है। घिसी पिटी नीरस गूँजें भी सुनाई पड़ती हैं। फिर भी छायावादी ध्वन्यात्मकता से कुछ लाभ उठकर अंचल ने अपने भावभीने गीतों का सृजन किया है। समकालीन कवियों से पृथक, निश्चय ही अंचल के गीतों की ध्वन्यात्मकता

---

१. अस्त हुआ दिन, मस्त समीरण मुक्त गगन के नीचे हम तुम।

मिलनयामिनी: बच्चन।

× × ×

चांद चमकता, वायु ठुमकती छन-छन हिलती तरु की छाया।

मिलनयामिनी: बच्चन।

× × ×

मधु पीलो मौसम आज बड़ा प्यारा है।
अठखेली करती चलती है आज हवा मदमाती
पत्ती पत्ती गीत प्रीति का झूम-झूम कर गाती
उभर-उभर उठती सुख सांसों से पृथ्वी की छाती। मधु पी लो—

मिलनयामिनी: बच्चन।

× × ×

चाँदनी रात के आंगन में कुछ छिटके-छिटके से बादल
कुछ भटका-भटका-सा मन भी।
जब सारी दुनिया सोई है तब नभमंडल पर चांद जगा,
कुछ सपनों में डूबा-डूबा कुछ सपनों में उमगा-उमगा
उसके पथ में अनचाहे-से कुछ बेबस बादल के टुकड़े
पर पूजन, स्नेह-समर्पण से कब सुन्दरता को दाग लगा
जैसे ये बादल के टुकड़े सुखमा का आंचल थामे-से
अनजान किसी पर न्यौछावर क्या शोभन स्वागतमय होगा
मेरे मन का पागलपन भी ?

मिलनयामिनी: बच्चन।

मांसल भावों के सूक्ष्म स्तर तक पहुंच कर मन को रोमांस के समुधुर भावों-स्तरों में लीन कर देती है। अंचल की रचनाओं में छायावादी काव्य के जैसे वायवी बिम्ब न होकर मन के मांसल बिम्ब उतरे हैं। अलंकृतियों, विशेषणों, सम्बोधनों, नवीन क्रियापदों, उपमाओं, रूपकों तथा रूप-हास-रस-गंधमय एन्द्रिक ध्वनियों के मुखरण में 'अंचल' उत्तरार्थ के कवियों में अपने विषय की अभिव्यंजना में अग्रणी हैं।[1]

नेपाली और नरेन्द्र शर्मा के गीतों में भाव-एवं स्वर की शिल्प संगत ध्वन्यात्मकता है। किन्तु 'बच्चन' के गीतों की ध्वन्यात्मकता में जीवन के सच्चे साज़ की एक ऐसी सुव्य-वस्थित झंकार है जिससे मन की निस्तब्धता बरबस झंकृत ही उठती है। इन गीतों में कहीं पर भी शिल्प या अभिव्यंजन की गांठ नहीं पड़ी—वे एकदम भाव-स्वर के समन्वय के पृष्ठ पर लिखे जीवन के गीत हैं।

संक्षेप और सार रूप में छायावाद के उत्तरार्घ के गीत-काव्य की भाषा जनमन रंजनकारी भाषा है। इस काव्य-भाषा से जनमन अनुभव करता है कि उसमें उसी के अंतरजगत का अविकल काव्यानुवाद है। इस दृष्टि से बच्चन का गीत-काव्य अपना समकक्षी नहीं रखता। काव्य-भाषागत कुछ इन्हीं कारणों से उत्तरार्घ के गीत-काव्य का जन-जन व्यापी प्रभाव पड़ा और छायावादी काव्य अपनी शक्ति-सीमा में सिमट कर रह गया।

यहां तक हमने छायावादी और छायावाद के उत्तरार्ध की काव्य भाषा के विषय में कुछ तुलनात्मक तथ्य प्रस्तुत किये जिनको प्रस्तुत करने का प्रयोजन प्रकारांतर से बच्चन की काव्य-भाषा की शक्तियों को परखना है। इस दृष्टि से अब बच्चन की काव्य-भाषा पर स्वतंत्र विचार करना उचित होगा—

प्रारम्भिक रचनाएँ भाग १-२ से ही बच्चन की कविताओं में भाषा-विकास

---

१. चुप रहो! सौन्दर्य की बहती विजनगंधी हवा
चुप रहो! सौन्दर्य के टूटे सृजन की शर्बरी
दूर अनजाने अनिद्रित कूल की भीगी हुई
चुप रहो! प्रत्यूष की भटकी किरण यायावरी—
चुप रहो! नीले कुहासे में डुबोये गीत ओ—
चुप रहो! ओ बालुका के स्वप्न पंखी मारुती
चुप रहो! वैधव्य में डूबी विवशता के रुदन
चुप रहो! वन पंखियों की रूपगंधी ओ हवा।
आज तो कुछ भी कहीं कोई नहीं है—चुप रहो।
चुप रहो! अनुगूंजते ओ 'शंखवर्षी बादलों
गुनगुनाती ओ गुफाओं, कन्दराओं चुप रहो।

प्रत्यूष की भटकी किरण-यायावरी: अंचल

के बीच बिखरे दीखते हैं। यहाँ कुछ रचनाओं में छायावादी शैली-शब्दावली को छोड़कर जैसे—

बाल-पल्लव अधरों से बात,
ढकेंगी तरुवर गण के गात

× × ×

चुरा खिलती कलियों की गंध,
कराएंगा उनका गंठबंध,
पवन पुरोहित गंध सुरज से रज सुगंध से भीन।

यहाँ समस्त शब्दावली ऐसी है जिसमें न समास है, न तत्सम रूप है न क्लिष्टता है, न प्रतीक, न रूपक, न श्लेष, न उपमा और न शब्दों में कला की पालिश है। बस, भाषा एकदम खुदी खान की वस्तु प्रतीत होती है। पृष्ठ २५ पर 'स्वतन्त्र आज़ाद' शब्द एक ही जगह एक ही अर्थ की अभिव्यक्ति कर रहे हैं। इसी प्रकार 'डर-वाती' शब्द का प्रयोग पृष्ठ १२४ पर हुआ है जो उचित नहीं लगता। लेकिन 'प्रारम्भिक रचनाओं' में इस प्रकार की शिथिलता का कोई अर्थ नहीं होता। लेकिन प्रारम्भिक रचनाओं के दोनों भागों की कविताओं को पढ़कर बच्चन की काव्य-भाषा के विकास क्रम का अच्छी तरह पता चल जाता है। कवि की प्रारम्भिक रचनाओं के दोनों भागों की कविताओं में जिस भाषा का स्वरूप सामने आता है और जो वर्तमान कविताओं में अपने परिपक्व और पूर्ण रूप से विकसित है, उसकी विशेषताएँ मुख्यतः ये हैं—

१. भाषा में ओज माधुर्य गुण तो नहीं के बराबर है पर प्रसाद गुण पूर्णतः है।

२. प्रारम्भिक रचनाओं के दोनों भागों में कुछ उर्दू, अंग्रेजी और कुछ गंवारू अनगढ़, अनपोलिश्ड शब्दों का प्रयोग जैसे डरवाती (पृष्ठ १२४ प्रा० र० प्र० भ०) बैठाल (पृष्ठ २५ प्रा० र० दू० भा०) नाज, नफ़ीरी, आवाज़ (पृ० ३७ प्रा० र० दू० भा) लंप (पृष्ठ ८१ प्रा० र० प्र० भ०) रिकार्ड (प्रा० र० प्र० भा०) दीवाना (पृ० ७८ प्रा० र० प्र० भा०) आदि।

६. बच्चन की प्रारम्भिक कविताओं से ही चलते मुहावरों का कहीं कहीं पर प्रयोग बड़ी सफाई से होना शुरू हो गया था। आगे चलकर काव्यभाषा जहाँ भी मुहा-वरेदार हुई है वहीं कविता चमक उठी है। सिर पर कलंक लगना और सिर से कलंक उतारना मुहावरा खड़ी बोली में प्रयुक्त होता है। प्रारम्भिक रचनाएँ पहला भाग की 'जेल में रक्षा बन्धन' शीर्षक कविता में उसका प्रयोग यों हुआ है—

भूलेगा हमको संसार,
पूरा होगा ध्येय हमारा,
उतर कलंक जायगा सारा
प्रेम-शीश से हम दोनों के कारण जिसका भार!

आगे चलकर बच्चन की काव्य भाषा में न केवल मुहावरे बल्कि प्राचीन कवियों की उक्तियाँ, लोकोक्तियाँ और परिभाषिक शब्दों का भी प्रयोग होने लगा

जो अपने स्थान पर सारगर्भित लगता है। जैसे—निशा निमंत्रण के एक गीत में बच्चन ने तुलसीदास जी की एक प्रसिद्ध चौपाई का संकेत दिया है—

सहसा यह जिह्वा पर आई
घन-घमण्ड वाली चौपाई
जहाँ देव भी काँप उठे थे क्यों लज्जित मानवता मेरी।

इसी प्रकार 'आरती और अंगारे' कृति में विद्यापति की 'जनम अवधि हम रूप निहारल नैन न तिरपत भेल कहेगा' पंक्ति ज्यों की त्यों काम में लाई गई है। इस प्रकार के भाषागत अभिनव प्रयोग कवि की "आरती और अंगारे" नामक कृति में अधिक देखने को मिलते हैं।

बच्चन की प्रारम्भिक रचनाओं के दोनों भागों की कविताओं में जो अनगढ़पन या छायावादीपन था वह आगे की कृतियों से सहसा साफ हो गया लगता है। हां, उर्दू शब्दों का उचित प्रयोग बराबर बना रहा। प्रारम्भिक रचनाएं दूसरे भाग की अन्तिम कविता से ही इसका आभास होने लगता है कि कवि उर्दू के शब्दों का आगे सफल प्रयोग कर सकेगा—

"हर कलिका की क़िस्मत में जग जाहिर व्यर्थ बताना।"

मधुशाला की भाषा का लोच ललित्य, उससे उत्पन्न संगीत की झंकृति के माध्यम से वातावरण की सृष्टि तथा भाषा के प्रसाद-माधुर्य गुण का सूक्ष्म समन्वय आदि ऐसे गुण देखने को मिलते हैं जिन्होंने न केवल बच्चन की कविता को लोकप्रियता दी वरन समस्त परवर्ती खड़ी बोली कविता की भाषा के रंगीन पंख लगा दिये। मधुशाला की भाषा भंगिमा में छायावादी भाषा की झंकार और कला, व्यवहारिक भाषा की सुबोधता और मन की भाषा की मिठास देखिए—

१०

सुन कलकल, छलछल मधु-
घट से गिरती प्यालों में हाला,
सुन, रुनझुन, रुनझुन चल
वितरण करती मधु साकीबाला,
बस आ पहुँचे, दूर नहीं कुछ
चार कदम अब चलना है,
चहक रहे, सुन, पीनेवाले,
महक रही, ले, मधुशाला!

११

जल तरंग बजता, जब चुम्बन
करता प्याले को प्याला,
वीणा झंकृत होती, चलती
जब रुनझुन साकी बाला

डांट-डपट मधुविक्रेता को
ध्वनित पखावज करती है,
मधुरव से मधु की मादकता
और बढ़ाती मधुशाला।

१२

मेंहदी रंजित मृदुल हथेली
पर माणिक मधु का प्याला
अंगुरी अवगुंठन डाले
स्वर्ण वर्ण साकीबाला
पाग बैंजनी, जामा ढीला,
डाट डटे पीने वाले
इन्द्र-धनुष से होड़ लगाती
आज रंगीली मधुशाला।

उक्त रुबाइयों की भाषा में शब्दों की झंकृति, मिठास, मादकता और कलात्मकता का नया जादू है जो बच्चन से पूर्व के छायावादी कवियों, प्रसाद पन्त, निराला और महादेवी के काव्य में नहीं मिलता। प्रकारांतर से स्वयं बच्चन ने "आधुनिक कवि" में अपने पाठकों से मधुशाला की भाषा की स्थापना का संकेत किया है। वे लिखते हैं कि संघर्ष की भाषा, व्यक्ति और समाज के संघर्ष की भाषा, बोलने का कुछ अभ्यास 'नवीन' और भगवतीचरण वर्मा कर रहे थे। जाने-अनजाने अपने उन्हीं दो अग्रजों से संकेत पाकर मैंने जिस माध्यम को यथाशक्ति परिपूर्ण करके १९३५ में 'मधुशाला' में दिया उसने हिन्दी काव्य-संसार में एक नई आवाज़ का आभास दिया।'

एक प्रकार से बच्चन की काव्यशाला का मोहक स्वरूप 'मधुशाला' से प्रारम्भ हो जाता है। मधुबाला की भाषा में शब्द-शिल्प की व्यवस्था मधुशाला से मिलती जुलती है। अन्तर इतना प्रतीत होता है कि मधुबाला में आकर कवि विविध गीतों में भी अपनी रंगीली-रसीली भाषा का प्रयोग कर सक पा रहा है। मधुकलश में भाषा के प्रवाह में प्रौढ़ता आती प्रतीत होती है। कवि के शब्दों में भावों को व्यक्त करने की क्षमता बढ़ी प्रतीत होती है। आगे निशानिमंत्रण, आकुल-अन्तर और एकाँत संगीत की कविताओं की भाषा में काफी सादगी आ गई है। किन्तु निशा-निमंत्रण की भाषा बिम्ब विधायनी अधिक हो गई है और इसके साथ ही उसमें मानवीय भावमयता का सहज स्वर भी निसृत होता प्रतीत होता है जो कम से कम तब हिन्दी गीत काव्य के लिए नया था। यहाँ न भाषा अलंकारिक है, न चमत्कारिक, न प्रतीकात्मक है और न अधिक चित्रमय। इन कृतियों में जिस भाषा का प्रयोग किया गया है वह एकदम उद्‌गारों की वाहिनी है—उसमें व्यक्ति की पीड़ा की वीणा का राग है।

साथी, साथ न देगा दुख भी !
काल छीनने दुख आता है
जब दु:ख भी प्रिय हो जाता है
नहीं चाहते जब हम दुख के बदले में लेना चिर सुख भी !
साथी, साथ न देगा दुख भी !

उक्त उद्धरण 'निशा निमंत्रण' के गीत का है जिसकी भाषा में उन सभी तत्वों का समावेश है जिनकी हम ऊपर चर्चा कर रहे थे। एकाँत-संगीत और आकुल-अन्तर कृतियों के गीतों की भाषा पिछली कृतियों की अपेक्षा रुक्ष हो गई है। लेकिन यहाँ कुछ गीतों में निराश व्यक्ति की शक्ति के स्वर-संदेश में पहली बार भाषागत ओजगुण आया है और उसमें निराश किन्तु अविजित, अविचलित मानव का जीवित-जाग्रत अहं का आकार जैसे मूर्तिमान कर दिया जाता है। इन कुछ ही इस प्रकार की कविताओं का भाषा-भावगत-मूल्य बहुत है। इसके लिए ये उद्धरण देखिए—

अग्नि पथ ! अग्नि पथ ! अग्नि पथ !
वृक्ष हों भले खड़े
हों घने, हों बड़े
एक पत्र छांह भी माँग मत, मांग मत, माँग मत।
यह महान दृष्य है
चल रहा मनुष्य है
अश्रु-स्वेद-रक्त से लथपथ, लथपथ लथपथ!

× × ×

प्रार्थना मतकर, मतकर, मतकर
झुकी हुई अभिमानी गर्दन
बंधे हाथ, नत निष्प्रभ लोचन ?
यह मनुष्य का चित्र नहीं है, पशु का है, रे कायर !

इन उद्धरणों से यह स्पष्ट है कि यहाँ तक आकर बच्चन की काव्य-भाषा भाव-प्रकाशन और भाव का जीवंत चित्र खींच कर रख देने में पूर्णत: समर्थ हो गई थी। किन्तु उसमें रस-रंग और रूप पहले जैसा नहीं झलक रहा था। बच्चन जीवन के कवि हैं। अतः जीवन का एक मधुर स्वप्न टटूने पर उनके पास जो शेष बचा उसका प्रकाशन इसी रूप में और इसी प्रकार की भाषा में होना स्वाभाविक था। किन्तु इससे उनकी भाषा में शैथिल्य आने की कल्पना नहीं करनी चाहिये।

आकुल-अन्तर के अन्त तक एक ज्वार-भाटा आया, चला गया। फिर 'संतरंगिनी' की सुषमा कवि को दिखलाई पड़ी। उसके साथ ही कवि की काव्य-भाषा में फिर लालित्य लौट आया। इस कृति के गीतों से बच्चन की काव्य भाषा में पिछली रचनाओं की अपेक्षा उर्दू के शब्दों का प्रयोग अधिक हो गया लगता है। लेकिन उर्दू के शब्दों का प्रयोग हिन्दी के साथ इस सफ़ाई के साथ किया लगता है

कि उनकी अलग कोई सत्ता प्रतीत नहीं होती। इसके लिए 'अंधेरे का दीपक' शीर्षक कविता का अंतिम पद पढ़ा जा सकता है जिसमें उर्दू के शब्दों से निर्मित पूरी चार पंक्तियाँ ही हिन्दी की पंक्तियों के साथ मिलकर अपनी सम्पूर्ण सत्ता उनमें विलीन किए हुए हैं। यों हिन्दी कविता में उर्दू शब्दों के प्रयोग की यह सफ़ाई किसी दूसरे आधुनिक कवि में देखने को नहीं मिलती।

वातावरण का चित्रण

बच्चन की काव्य-भाषा में शब्दों के द्वारा वातावरण का चित्रवत चित्रण कर देने की अनूठी क्षमता प्रकट होती है। इस चित्रण में शब्दों की ध्वनि का विशेष हाथ है। 'मधुशाला' में इसके अनेक उदाहरण मिलते हैं। वातावरण के यह चित्रण कहीं ठोस हैं तो कहीं तरल हैं तो कहीं कलात्मक हैं। लेकिन यहाँ इतिवृत कहीं नहीं है। उनमें अनुभूति की सच्चाई या जीवन की धड़कन है। कोरी कल्पना के आधार पर शब्दों द्वारा चित्र-काव्य रचने की प्रवृति इस काव्य में देखने को कहीं नहीं मिलती। यहां कुछ उदाहरण प्रस्तुत करने होंगे—लोहा पीटने वाले के अंग-गठन का ठोस चित्र ये है—

गर्म लोहा पीट, ठंडा पीटने को वक़्त बहुतेरा पड़ा है।
सख्त पंजा, नस-कसी, चौड़ी कलाई,
और बल्लेदार बाहें
और आँखें लाल, चिन्गारी सरीखी,
चुस्त औ' सीधी निगाहें,
हाथ में घन और दो लोहे निहाई
पर धरे तो देखता क्या,
गर्म लोहा पीट ठंडा पीटने को वक्त बहुतेरा पड़ा है। (आरती और अंगारे)

और ये है वातावरण का एक तरल चित्र—

चांद निखरा, चन्द्रिका निखरी हुई है
भूमि से आकाश तक बिखरी हुई है
काश, मैं भी यों बिखर सकता भुवन में।
चांदनी फैली गगन में, चाह मन में। (मिलनयामिनी)

और ये है एक विराट् चित्र—

मानसर फैला हुआ है, पर प्रतीक्षा
के मुकर-सा मौन औ' गम्भीर बनकर
और ऊपर एक सीमाहीन अम्बर
और नीचे एक सीमाहीन अम्बर
औ' अडिग विश्वास का है श्वास चलता
पूछता सा डोलता तिनका नहीं है—

प्राण की बाजी लगाकर खेलता है जो
कभी क्या हारता वह भी जुआ है ?
कौन हंसनिया लुभाए हैं तुझे ऐसा कि तुझको मानसर भूला हुआ है ?

कहीं-कहीं पर बच्चन की काव्यभाषा की सरलता भी ऐसे अनूठे वातावरण की सृष्टि कर देती है कि जिसका गद्य में कथन ही नहीं हो सकता। लेकिन उसमें काव्य का पूर्ण अभिव्यंजन होता है। इस प्रकार के अनेक चित्र उनकी कविताओं से लिए जा सकते हैं। देखिये—

तीर पर कैसे रुकूँ मैं
आज लहरों में निमन्त्रण !
रात का अंतिम पहर है,
झिलमिलाते हैं सितारे
वक्ष पर युग बाहु बांधे
मैं खड़ा सागर किनारे
वेग से बहता प्रभंजन
केश-पट मेरे उड़ाता
शून्य में भरता उदधि
उर की रहस्यमयी पुकारें,
इन पुकारों की प्रतिध्वनि
हो रही मेरे हृदय में
है प्रतिच्छायित जहां पर
सिन्धु का हिल्लोल कम्पन ! (मधुकलश)

इस उद्धरण में रात का अंतिम पहर, झिलमिलाते, सितारे, सागर का किनारा वहाँ वक्ष पर बाहें बाँधे खड़ा एक मनुष्य, सनसनाता हुआ तूफान, उस मनुष्य के उड़ते हुए केश-पट, आकाश में अपनी रहस्यभरी पुकारों को भरता हुआ वह सागर, और उसकी प्रतिक्रिया से प्रताड़ित कवि का हृदय ! और उस हृदय में सिंधु के कंप-कपाते हुए असीम जल-समूह का प्रतिबिम्ब ! यों एक ही पद में इतने भावसंकुल चित्रों की अलग-अलग स्पष्ट रेखाएँ गुँफित होकर मन के पटल पर अपनी जीवित छाप छोड़ देती हैं। मिलन-यामिनी के तीसरे भाग की कविताओं में इस प्रकार के सरल शब्दों में कलात्मक चित्र खींचे गए हैं जो जड़ नहीं जीवन की धड़कन से पूर्ण है।

× × ×

बच्चन की काव्य-भाषा में लक्षणा या व्यंजना शायद कहीं-कहीं पर ही मिले सारा काव्य अभिधा का ही कलेवर है। जैसा हम पूर्व विवेचन कर आए हैं, शब्द की अभिधा शक्ति के अस्तित्व से इंकार नहीं किया जा सकता। अर्थ-आशय का सारा व्यवहार और व्यापार शब्द की इस शक्ति पर निर्भर है। लेकिन उत्तम काव्य में अभिधा अपना रूपान्तर भी करती है। स्वयं कवि की प्रतिभा से रंजित होकर वह अपनी

नई भंगिमा धारण करती है। सूरदास कबीरदास मीरा आदि के पदों में अभिधा ही काव्य की कांति बन गई है। यह ठीक है कि लक्षणा-व्यंजना से काव्य में और ही आभा झलकने लगती है लेकिन इस सत्य से इन्कार नहीं किया जा सकता कि लक्षणा-व्यंजना प्रधान काव्य में मन-जीवन के अर्थ-आशय और भाव सहज रूप में व्यक्त नहीं हो पाते। उनको समझने के लिये काव्य के गुण-दोष जानने वाली आलोचक-वृत्ति की अपेक्षा होती है। 'टैक्स्ट' में रखने के लिये ऐसी कविताओं की महत्ता हो सकती है किंतु मन-जीवन को प्रभावित करने के लिए वही काव्य काम का है जिसमें अभिधा की कांति उद्भासित होने लगती है। बच्चन की काव्य-भाषा में इसी प्रकार की अभिधा दर्शित होती है। काव्य में अभिधा को कांतिमय बनने के लिए पहले कवि की प्रतिभा, फिर शब्दों के उपयुक्त अर्थ-आशय की पहुँच-पकड़ की शक्ति का विशेष हाथ होता है। बच्चन की काव्य-भाषा में यही विशेषता देखने को मिलती है। इस प्रकार से अभिधा स्वतः ही ऐसे शब्दों को खींच लेती है जो किसी बिम्ब, प्रतीक या परिपूर्ण अर्थ-आशय के बोधक होते हैं और उनमें से एक भी न तो पर्याय चाहेगा, न स्थान परिवर्तन। काव्य की वह शब्दावली ही अपने में इतनी पूर्ण और भाव-विचारों से परिपक्व होगी कि उसमें किसी प्रकार का हस्तक्षेप, काट-छाँट और परिवर्तन और तो और स्वयं कवि करने में असमर्थ हो जाता है। बच्चन की कविता में अभिधा का प्रयोग, उसकी प्रौढ़ता, परिपक्वता और गम्भीरता का यह चमत्कार विदेश प्रवास के उपरांत की रचनाओं में, यानी मिलन यामिनी के उपरांत की कविताओं में, देखने को मिलता है। वाणी और अर्थ का सजीव रूप बच्चन की भाषा में पिछले दस-बारह वर्ष की काव्य-साधना में विशेष देखने को मिलता है। मुक्त लय में लिखी उनकी कविताओं में यह बाणी-विशिष्टता प्रधान रूप में मिलती है। 'बुद्ध और नाच घर' तथा, 'त्रिभंगिमा' की कविताएँ इसके लिये पठनीय हैं। एक उदाहरण लीजिये, पंक्तियाँ त्रिभंगिमा की 'कवि से' शीर्षक कविता से हैं—

> **अर्थ-आखर-बल**
> **अगर तुझको मिला है,**
> **तो नहीं उपयोग उसका यह**
> **कि तू अपनी व्यथाओं को बढ़ाकर कह।**
> **वे अधिक दयनीय, करुणा-पात्र,**
> **औ' हक़दार हैं संवेदना के,**
> **जो कि जीवन-भार**
> **जग के जाल,**
> **काल-कठिन-कँटीली गाठ से**
> **दबते, उलझते, देह चिरवाते**
> **चले जाते अकेले**

बिना बोले,
भाव-धावों की निशानी
वे दिखाये,
वे अधिक सुकुमार तलवे थे
कि जो कुसुमावली के पाँवड़े की आस ले
चुनते गए
वन पंथ घन कुश-कंटकों को
और विष के बुझे शूलों को,......

उक्त उद्धरण में शब्दों की कसावट, उनका नियोजन और उनकी अर्थ-शक्ति अपने आप बोल रही हैं।

× × ×

बच्चन की भाषा में अलंकरण-तत्व अधिक नहीं हैं। "तिमिर समुद्र कर सकी न पार नेत्र की तरी" जैसे विशुद्ध अलंकारिक भाषा के प्रयोग बच्चन के काव्य में अधिक और अधिक बढ़िया नहीं मिलेंगे। किंतु बच्चन की भाषा में व्यंग्य देखने को मिलता है। पूर्वकालीन कविताओं में यह व्यंग अधिक नहीं है। किंतु जब से बच्चन की मुक्त छंद रचने की प्रवृत्ति प्रकाश में आई है तबसे भाषा के साथ व्यंग ने दृढ़ गठ-बंधन किया है। इधर भाषा के साथ-साथ प्रतीक और रूपक भी लग गये हैं। त्रिभंगिमा की महागर्दभ, इंसान और कुत्ते, विकृत मूर्तियाँ, दीपक, पतिंगे और कौए, सड़ा हुआ कमल, खजूर आदि शीर्षक कविताएँ पठनीय हैं। बच्चन की भाषा में जो व्यंग है वह जीवन, समाज और युग की विकृतियों तथा मान्यताओं और स्थितियों पर करारी चोट करता है। यह ठीक है कि उसमें हृदय कम मस्तिष्क, अधिक है। किंतु भाषा की शक्ति और प्रौढ़ता किसी टीका टिप्पणी की आवश्यकता नहीं रखती।

बच्चन की पदावली की भाषागत एक अन्य विशेषता यह है कि वहाँ क्रियापद, अव्यय, कारक, ह्रसत्व-दीर्घत्व तथा लय की एकतानता बनी रहती है। 'मिलन-यामिनी' के गीतों में यह विशेषताएं देखने को मिलती हैं। इससे उनके छंद-विधान में एक गति एवं श्वासों के अनुरूप आरोह-अवरोह का सौंदर्य पैदा हो गया है।

बच्चन की भाषा छायावादी काव्य संसार में पलकर उत्तरोत्तर युग और मन-जीवन के अनुकूल परिवर्तित होती गई। उसमें लोकतत्वों का समाहार अधिक होता गया और उसकी सीमा है लोक गीतों की शैली में गीत-सृजन। बच्चन के लोकधुनों पर आधारित गीतों में ग्रामीय भाषा और आधुनिक खड़ी-बोली के फासले को घटाने का आभास मिलता है। जैसे—

कहना, सोन बरन की नारी
होती जाती दिन-दिन कारी
तुमने ऐसी याद बिसारी, वह जीती कि मरी !

यहाँ शब्द ग्रामीयता लिये है। खड़ी बोली के भी हैं जिनका योग काव्य भाषा की नवीनता का सूचक कहा जायेगा। बच्चन की भाषा में इतस्ततः अंग्रेजी के चलते शब्द भी प्रयुक्त होते रहे हैं जो अधिकांश खपे लगते हैं किंतु कुछ कहीं अखरते भी हैं। इस संदर्भ में यह कहना उचित होगा कि अधिक बोल-चाल के शब्दों व मुहावरों के प्रयोग की झक में कहीं-कहीं बच्चन की कविता को भारी क्षति भी उठानी पड़ी है। उनके 'सूत की माला' और 'खादी के फूल' कविता संग्रहों में इसके अनेक सस्ते प्रमाण मिल जाते हैं। ऐसी दशा में बच्चन की भाषा नितांत अनगढ़, सपाट तथा असाहित्यिक प्रतीत होती है। उदाहरण देना पर्याप्त न होगा। भाषा का भौंडापन कवित्व के किसी भी संदर्भ में स्वीकृत नहीं किया जा सकता। इस दृष्टि से यदि बच्चन का कवि कुछ नियंत्रण रखता तो बहुत अच्छा होता। एक प्रकार से बच्चन की काव्य-भाषा में उन सभी प्रचलित उर्दू, ग्रामीय, अंग्रेजी तथा तत्सम, अर्धतत्सम एवं प्रतीकवाची शब्दों का समाहार है जिससे उनकी कविता की अभिव्यंजना शक्ति तथा शैली का अपने ढंग से विकास हुआ है। कलात्मकता उनकी भाषा में नहीं है। सरलता ही बच्चन की कविता है।

बच्चन की कविता में सबसे सफल प्रयोग उर्दू के शब्दों का हुआ है। ऐसा खड़ी बोली के शायद किसी कवि के काव्य में नहीं मिलता। बच्चन की कविता में उर्दू के शब्दों के होते हुए भी वे हिन्दी भाषा-परिवार के ही अभिन्न अंग लगते हैं। अपनी काव्य भाषा में, जैसा कि प्रत्येक सफल कवि करता है, बच्चन ने कुछ क्रिया-पदों तथा मुहावरों आदि को तोड़ा-मरोड़ा भी है, जैसे होड़ करने से होड़ूँ, उपदेश देने से उपदेशे, स्वीकार करने से स्वीकारे आदि। लेकिन ऐसे गढ़े या तोड़े मरोड़े शब्दों का निर्माण काव्य भाषा के ह्रास का नहीं विकास का सूचक है। इस दृष्टि से आलोच्य कवि का योगदान विशेष है।

सरल-शब्द योजना के द्वारा श्रेष्ठ काव्य का सृजन हो सकता है—इस परिप्रेश्य में जब खड़ी बोली काव्य की समीक्षा का कभी समय आएगा तो मेरा अनुमान है कि बच्चन का काव्य अद्वितीय सिद्ध होगा। बच्चन की पदावली में उत्तर भारत की प्रचलित प्रायः कई प्रांतों की बोलियों के लोक प्रचलित इतने अधिक शब्दों और मुहावरों का प्रयोग हुआ है कि खड़ी बोली के किसी अन्य कवि की पदावली में नहीं हुआ।

और कुल मिलाकर बच्चन का काव्य लोक-प्रिय काव्य है। उनकी भाषा भी लोक-भाषा (बेसिक शब्दावली से निर्मित) या जन-भाषा है। और शायद उनकी जन भाषा को ही यह श्रेय प्राप्त है कि बच्चन को आज का लोक-प्रिय कवि मान लिया गया है। लोकप्रियता की दृष्टि से बच्चन की कविता न तो किसी आह के युग की है, न वाह के युग की। वह तो कवि के युग-वय की राह की सीधी-सच्ची प्रतिध्वनि है। और इस प्रतिध्वनि की सार्थकता की कुंजी उनकी काव्य भाषा है। सूत्र रूप में कहें तो बच्चन का प्रायः सम्पूर्ण काव्य जीवन को शब्द-शब्द की शक्ति के द्वारा धुन देने का एक महाप्राण प्रयास है।

और अंत में, शास्त्रीय दृष्टि से सर्वथा पृथक भाषा-अध्ययन के परीक्षण का परम्परा से पिंड छूट जाता है। तब उसका धरातल लोक-जीवन का व्यवहारिक पक्ष होता है। और जीवन का व्यवहारिक पक्ष भाषा के उसी रूप को मान्य ठहराता है जो सीधा प्रभावशाली हो। जो अनुभवों को शब्दार्थ का जामा पहना सके। लेकिन कृतित्व के सृजन के लिये यह एक क्रांतिकारी कदम है। इसे सृजन का स्वच्छंद बोध कहा जाना उचित होगा। पर इसको क्रियान्वित करना टेढ़ी खीर है। प्रायः साहित्य सृजेता भाषा की आंतरिक गरिमा के प्रदर्शन पर अपनी सारी शक्ति लगा देता है पर उसका व्यवहारिक पक्ष समृद्ध और शक्तिशाली नहीं बन पाता। इस कर्म में वे ही सर्जक सकलता पाते हैं जो लोक-जीवन के अनुभवों के साथ जीते हैं और तद्नुकूल अपना सृजन करते हैं। वे अपनी पूर्ववर्ती साहित्य की भाषा का कम से कम अर्जन कर अपने लोक-जीवन के अनुभवों से प्रसूत भाषा में सृजन करते हैं। इस प्रक्रिया में आपसे आप उनकी भाषा निर्मित होती चलती है। इससे उनके व्यक्तित्व की छाप सबसे पृथक पहचानी जाती है। मध्य-काल में कबीर और आधुनिक काल में उपन्यास के क्षेत्र में प्रेमचंद और कविता के क्षेत्र में बच्चन की तुलना अन्यत्र नहीं की जा सकती। बच्चन की काव्य-भाषा जीवन के अनुभवों के अनुरूप चली है। बच्चन के काव्य की विशिष्टता जीवन के अनुभवों को अभिव्यक्त करने की दृष्टि से है। ये अनुभव जिस तरह की भाषा में व्यक्त हुए हैं उनकी मूक अनुभूति सभी में होती, सभी उसे उन्हीं शब्दों में अभिव्यक्त करने की छटपटाहट भी महसूस करते हैं लेकिन विवशता यह है कि वे कवि नहीं होते। पर जिस कवि ने उनकी इस विवशता को, इच्छा को, शब्दों में रूपायित किया है, स्वाभाविक है कि वे उसे पढ़ेंगे और प्यार करेंगे। बच्चन के बेशुमार पाठकों के होने के पीछे उनकी काव्य-भाषा का यही रहस्याकर्षण है जो उन्हें व्यवहार में जीते हुए भी काव्यानन्द का सहज-साझीदार बना देता है।

बच्चन की कविता में बासीपन की बू कहीं नहीं आती। क्योंकि उनकी भाषा में नवीन शब्द-योजना अनुभवों की अभिव्यक्ति करने की प्रबल प्रेरणा से प्रसूत होती है।

मेरा विचार है कि इस दृष्टि से बच्चन की कविता का परीक्षण करने पर ऐसे अनेक प्रयोग हाथ लग सकते हैं जो खड़ी बोली की अभिव्यंजना शक्ति को बढ़ावा देने वाले सिद्ध होंगे। बच्चन ने ऐसे बेशुमार मुहावरों का अपने काव्य में प्रयोग किया है जिनका हम दैनिक व्यवहार में प्रयोग कर अपनी वाक्शक्ति का परिचय देते हैं।

संक्षेप में, काव्य के माध्यम से बच्चन ने खड़ी बोली की अंतर-बाह्य प्रकृति को लोक व्यवहार में व्यापकता देने की दृष्टि से बेजोड़ काम किया है जिसका जब स्वतंत्र रूप से सम्यक और निष्पक्ष विवेचन किया जायेगा, उसकी गरिमा का सही पता चलेगा।

पुरातन पिपासा का मुखरण : मधु-काव्य

पुरातन पिपासा का मुखरण : मधु-काव्य

मधु के कोष सम्मत कई अर्थ हैं। मधु, पानी को भी कहते है, मकरन्द को भी, दूध को भी, बसन्त ऋतु को भी, शहद को भी और शराब को भी। कुल मिला कर मधु का शाब्दिक अर्थ सूक्ष्मता, तरलता, मृदुता और सुस्वादिता से घुला-मिला है। लेकिन काव्य में इस शब्द का लक्ष्यार्थ और व्यंग्यार्थ भी निकलता है। और यह तभी निकलता है जब कि हम उससे जागरूक हों, उसके प्रति जिसासु हों—जड़ न हों।

काव्य में शब्द का साधारण अर्थ साधारण जनों के लिए आन्ददायक हो सकता है। लेकिन जो सर्वसाधारण की कोटि से कुछ ऊपर उठकर काव्य का रस-रहस्य अनुभव करना चाहते हैं उनके लिए काव्य के शब्दों-पदों का लक्ष्यार्थ या व्यंग्यार्थ महत्वपूर्ण हो जाता है। शब्द-ध्वनि काव्य की कसौटी है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि उत्कृष्ट काव्य में कवि अपने प्रमुख पदों-शब्दों में साधारण अर्थ का निर्वाह करते हुए भी कुछ 'उदात्त' अभिव्यक्ति करता जाता है। कबीर ने कहा है कि—

जहवां से आयो अमर वह देसवा।
पानी न पान धरती अकसवा
चाँद न सूर न रैन दिवसवा।

इस अभिव्यंजना के साधारण अर्थ के पीछे जो रहस्यमय 'उदात्त' अभिव्यक्त हुआ है उसे क्या कहा जा सकता है ? क्योंकि कबीर ने तो अकथित को यहाँ कथित किया है। अब इससे कम कथित हो ही नहीं सकता। कहने का तात्पर्य यह है कि सहजता के स्वर में लिखा गया उदात्त काव्य साधारण हृदय में भी स्पंदन पैदा कर सकता है और असाधारण हृदय को भी हिला सकता है। यहाँ इसी दृष्टि से हम 'मधु-काव्य' पर विचार करेंगे।

× × ×

खड़ी बोली काव्य में प्रतीक रूप में 'मधु' का व्यापक प्रयोग हुआ है। और शायद ही कोई कवि ऐसा हो जो इस 'मधु' से अपने काव्य को वंचित रख सका हो। रस को 'ब्रह्मानन्द' सहोदर मानने वाला आचार्य भी शायद मधुवादी काव्य को ही अपनी कसौटी पर फिर-फिर कसता रहा होगा। 'मधु' यानी रस! मधुवादी काव्य यानी रसवादी काव्य! खड़ी बोली काव्य में मधु अधिकाँशतः रस का ही पयार्य रहा है। सोम रस, मदिरा या हाला का प्रयोग और अर्थ रूढ़िवादी रूप में कहीं पर भी अभिलक्षित नहीं होता। यह बात दूसरी है कि उसे रूढ़ि रूप में कुछ लोगों ने प्रायः

मदिरा या शराब का ही स्थानापन्न कहा और समझा। और इस तरह कई कवियों और उनके सुन्दर काव्य को लांछित भी किया गया।

मधु न जाने कबसे लोगों का 'पेय द्रव बना चला आया है। मानव सृष्टि के आदि पिता कहे जाने वाले मनु, जो मन के भी प्रतीक कहे गये हैं, सोमपान की लालसा से अभिभूत हैं—

"ललक रही थी ललित लालसा
सोम पान की प्यासी।" (कामायनी कर्म सर्ग)

हमारे पुराण-इतिहास के अनुसार मधुपान या सोमपान प्राचीन पुरुषों, देवों, किन्नरों, गंधर्वों, सम्राटों, सामन्तों और मध्य-निम्न वर्ग के लोगों ने सुख-भोग के लिये खुलेआम किया, मदिरापान से अपने को उल्लसित किया या अपने किसी विषाद को विस्मृत किया, गम गलत किया। बात चाहे कुछ हो, लेकिन अभिजात्य कोटि से लेकर निम्न कोटि तक मदिरापान, चाहे क्षणिक सुख की लालसा को लेकर ही सही, किया जाता रहा है। इस सत्य के साथ एक और भी सत्य जुड़ा हुआ है—मदिरापान की वर्जना का, उपेक्षा का, आलोचना का, अधार्मिकता का और असमाजिकता का! मदिरापान और मदिरा पर प्रतिबंध—ये दो द्वंदात्मक सत्य समाज में सदा साथ रहे हैं। भारत में प्रायः मदिरा का विरोधीपक्ष प्रबल रहा है। यहाँ आशर्दवाद का प्रबल आग्रह है।लेकिन संभवतः मदिरपान कम नहीं रहा है। विदेशों में मदिरापान को असामाजिक अथवा अधार्मिक कृत्य प्रायः नहीं समझा गया।

पर काव्य में 'मधु' की अभिव्यंजना व्यापकता से हुई है। अंग्रेजी और इस्लामी काव्य में तो सुरा और सुन्दरी का महत्व और मूल्य किसी आलोचना की आवश्यकता ही नहीं रखता। वहाँ मधुवादी काव्य की परम्परा सदियों पुरानी है। सैकड़ों वर्ष पूर्व उमर खैयाम की मधुशाला खुल चुकी थी और मधुबाला प्रस्तुत हो चुकी थी। इतना ही नहीं, सूफी फ़कीरों ने मस्ती-मुहब्बत को मदिरा की संज्ञा से परे की चीज नहीं समझा। सूफी फ़कीरों का सम्पूर्ण आध्यात्मिक दर्शन सुरा और सुन्दरी के व्याज से वाणी पा सका है। सूफियों के 'इलहाम' में (मूर्छना में) सुर्ख-सुन्दरता और सुर्ख-सुरा का ही तो 'वज्द' है, उन्माद है, इश्क है, बक़ा है, फ़ना है। इस प्रकार समस्त सूफी-दर्शन के पट पर सुरा-सुन्दरी का अनवरत नर्तन चल रहा है। सूफी कवियों ने इसी आध्यात्मिक दर्शन को अपने क़लाम यानी काव्य में ध्वनित किया है। उर्दू के शायरों और उनकी शायरी पर सुरा-सुन्दरी का गहरा नशा चढ़ा हुआ है। उर्दू के महान कवि ग़ालिब के दीवान में से यदि सुरा-सुन्दरी गायब हो जाय तो क्या रह जायेगा? कहने का तात्पर्य यह है कि मधुवादी काव्य में मधु, मधुबाला और मधुशाला-प्याला आदि उपकरण संज्ञा-सूचक नहीं हैं। न वे शराब नामधारी द्रव के ही द्योतक हैं। सूक्ष्मता से वहाँ वे इस काव्य-आस्वाद्य और आध्यात्म के भावमय प्रतीक हैं। वे नये नहीं हैं। उनकी एक सुदीर्घ परंपरा है। वैसे तो काव्य में न कोई विषय नया होता है न कोई पुराना। कवि के कहने में कितनी कला-

कुशलता है, कवि कितना कल्पना और भावना प्रवण है, उसके कथन में कितनी शक्ति, सहजता, संवेद्यता है, यह बात वस्तुतः महत्वपूर्ण होती है।

जैसा कि कहा गया है, मधु-काव्य नया नहीं है। हिन्दी काव्य के इतिहास में संत कबीर पहले क्रांतिदर्शी कविर्मनीषी हैं जिनके काव्य में सूफी फ़कीरों के आध्यात्मिक दर्शन का भी चटकीला रंग है। उनकी अभिव्यंजना में सूफ़ियाना इश्क-आशिक़ी की ध्वनि भी गूँजती है,। मधु उसका मोहक माध्यम है—

हिरदे में महबूब है हर दम का प्याला।
पीयेगा कोई जौहरी गुरुमुख मतवाला ॥
पियत पियाला प्रेम का सुधरे सब साथी।
आठ पहर झूमत रहै जस मैगल हाथी ॥

(कबीर ह० प्र० द्विवेदी)

× × ×

मन मस्त हुआ तब क्यों बोले।
सुरत कलारी भई मतवारी मदवा पी गई बिन तोले।

(कबीर : ह० प्र० द्विवेदी)

अन्य संत कवियों (दादू, नानक आदि) ने भी इतस्ततः मदिर भावों की खुलकर अभिव्यंजना की है। इन संत कवियों ने भक्ति-रस या हरि-रस को मदिरा के नशे से उपमित भी किया है। मीरा बाई ने भी मधुवादी भाव व्यक्त किये हैं। इनका लक्ष्य कृष्ण के प्रेम-मिलन-विरह और रूप राग-रस की अभिव्यक्ति करना ही रहा है। मीरा ने अपनी शुद्ध मस्ती में अपने प्रियतम कृष्ण को मधु का विक्रेता तक कह दिया है—

मधुवन जाय भए मधुबनिया,
हम पर डारो प्रेम का फंदा।

इन संत कवियों ने सूफियों की तरह मधु को आध्यात्मिक रस-दर्शन के बहुत कुछ अनुकूल व्यक्त किया है, यद्यपि उसकी सहज चिंता भारतीय रही है। पर भारतीय उर्दू-फ़ारसी काव्य में शराब की अभिव्यंजना व्यापकता से हो रही थी। फ़ारसी काव्य में व्यक्त रहस्यवाद में शराब का ही अस्तित्व है। भारत के सूफ़ी कवियों, (जायसी, कुतुबन और मंझन) के काव्य में मधुवादी भावों का पर्याप्त प्रकाशन हुआ है। लेकिन यहाँ मधु 'उदात्त' बना रहा है। हाँ अष्ठछाप के कवियों ने प्रायः मधुवन की बात तो कही है, मधुप की बात भी कही है, मधुरस की बात भी कही है, पर 'द्रव-मधु' की बात शायद नहीं कही है। अपवाद कहीं हो तो हो। महाकवि तुलसीदास जी ने भी 'सुरा' शब्द को अपने पवित्र काव्य में महत्वपूर्ण स्थान दिया है—

करत मनोरथ जस जियँ जाके। जाहि सनेह-सुराँ सब छाके।
सिथिल अँग पग मग डगि डोलहिं। बिहबल बचन पेम बस बोलहिं।

रीतिकाल के रस-सिद्ध कवियों ने मधु काव्य का सृजन किया है। इन कवियों

पर प्रायः उर्दू-फ़ारसी के कवियों का नाजुक अन्दाज़, उक्ति-चमत्कार और महफ़िली ठाठ हावी हुआ लगता है। यहाँ मदिरा में आध्यात्मिक गहराई नहीं के बराबर है। कहीं-कहीं प्रेम की पीर मदिर भाव के माध्यम से कौंध कर रह जाती है। जहाँ तक उर्दू शायरी की बात है, इस समय मधु के माध्यम से वह विकल मन की तीखी अभिव्यक्ति कर रही थी। साक़ी और शराब के माध्यम से उर्दू के शायर शायद अपने ग़म से नजात पा रहे थे, खुदा की असीमता का अन्दाज़ा लगा रहे थे—ग़ालिब कहते हैं—

कल के लिये कर आज न खिस्सत शराब में।
यह सूए-जन है, साक़िए-कौसर के बाब में।

और यह देख कर कुछ आश्चर्य होता है कि इस युग के महान दार्शनिक और मनीषी कवि श्री अरविन्द के काव्य में भी मधु विषयक अनेक उक्तियाँ है। अपनी 'स्वर्णिम ज्योति' कविता में एक स्थल पर वे कहते हैं कि **"मेरे शब्दों ने पी ली है अमुल-सुरा।"**

वृहदारण्यक उपनिषद में 'मधु-विद्या' की गम्भीर परिचर्चा आई है। वहाँ मधु, जीव या प्राण का पर्याय या प्रतीक है। रूपक के माध्यम से वहाँ जीवों को 'मधुभोक्ता पक्षी' भी कहा गया है। मधु, अर्थात् 'जीव-प्राण' अनेक योनियों में भिन्न-भिन्न रूप बदलता है। इस प्रकार इस उपनिषद् में वैदिक 'मधु-विद्या' का रहस्य गम्भीर बताया गया है। चूँकि प्राण या जीव या जीवन सभी को प्रिय है, अतः मधु के प्रति आकर्षण जब तक जीवन की पिपासा है, अमर है (अशोक वाजपेयी के शब्दों में कहूं—जहाँ तक इस जीवन की प्यास, तुम्हारी मधुशाला है संग!) अस्तु: इस सबसे यह तो स्पष्ट ही है कि मधु का केवल बाज़ारू मतलब ही नहीं वरन् उसका प्रतीक अथवा रूपकगत गम्भीर दार्शनिक बोध भी है। अतः मधु का सस्ता व सरल काव्यार्थ निकालना गम्भीर दृष्टि से भ्रामक है। उसका दार्शनिक-मनोवैज्ञानिक अस्तित्व हमारे वाङमय में व्यक्त हुआ है। काव्य में 'मधु' नितांत भाववाचक प्रतीक है—यह मैं कई बार देहराना चाहूँगा।

× × ×

अब से लगभग ढाई हजार वर्ष पूर्व चीन के कवियों ने जीवन की मस्ती के प्रतीक रूप में मदिरा का व्यंग्यमय वर्णन किया था। 'टी० यू० एच० यू०' कवि की रचनाओं से इसका पता चलता है। एक उदाहरण देखिये—

They say that clear wine is a saint.
Thick wine follows the wayof sage,
I have drunk deep of saint and sage.
What need then to study the sprits and fairies ?
Take a whole eugful-I and the world are one.
(A Treasury of Arian literature. by
John D. Yohannan. Page 259)

इस प्रकार विश्व में मधु (या शराब ?) सम्बन्धी काव्य की एक लम्बी परम्परा और रचनात्मक स्थिति रही है। यह बात दूसरी है कि उसे यहाँ की तरह 'हालावादी' काव्य नहीं कहा गया। खड़ी बोली काव्य में जिस आलोचक ने 'हालावादी काव्य' के बाद का नारा उठाया उसने कुछ अनर्थ ही किया। सच तो यह है कि 'हालावादी' काव्य कुछ भी नहीं है। काव्य में हाला की अभिव्यक्ति मन की मस्ती व भौतिक-भोगवादी रोमांटिक रुचि को व्यक्त करती है। जिस अर्थ में काव्य में हाला, प्याला, मधुबाला और मधुशाला आदि का प्रयोग हुआ है उसका रूढ़िवादी सस्ता अर्थ लेने से अनर्थ और अन्याय होने का खतरा है। काव्य में मधु का प्रयोग शुद्ध साँकेतिक है और इसी अर्थ में उसे समझना-परखना भी चाहिये। पर जहाँ वह सस्ता है, सँकीर्ण है, उसे काव्य के अन्तर्गत रखना भी उचित न होगा। वस्तुतः वह काव्य काव्य ही नहीं कहा जा सकता जिसमें किसी पदार्थ के प्रचार की ध्वनि आती हो। काव्य की मूल शक्ति कवि की भावनाओं में होती है—कोरे शब्द, द्रव या किसी पदार्थ विशेष में नहीं। काव्य कोटि में रखा जाने वाला काव्य वही होगा जिसमें शब्द, द्रव या पदार्थ न केवल भाव बन गया हो वरन् वह सर्वसाधारण के लिये रस बन गया हो। काव्य में 'मधु' (और उसके अन्य उपकरण भी) तरह-तरह के भावों का प्रतीक बनकर व्यक्त हुआ है। प्रसंगवश फिर कहूँ कि अपने परिपूर्ण रूप में यह मधु संत-सूफी कवियों के लिये आध्यात्मिक आनंद का बोधक रहा है। और खैयाम के अनुसार ये मधु क्षणिक सुख-भोग का संगी या साथी-सा बनकर व्यक्त हुआ है।

रोमांटिक कवियों पर खैयाम के काव्य-दर्शन का अधिक प्रभाव पड़ा है। खैयाम की रूबाइयों का विश्व में व्यापक प्रभाव है। खड़ी बोली में (कुमारावस्था में ही) खैयाम की रूबाइयों के कई भावानुवाद प्रकाशित हुए हैं। और तो और राष्ट्रकवि स्व० मैथिलीशरण गुप्त और 'स्वर्ण-चेतना' के कवि सुमित्रानन्दन पंत तक ने खैयाम की रूबाइयों का भावानुवाद किया है। कहूँ कि इन अनुवादों में कविवर बच्चन का अनुवाद जनसाधारण तक अधिक पहुँचा है। कहना होगा कि बच्चन का किशोर-कवि 'खैयाम की मधुशाला' से अत्यधिक आकर्षित हुआ था और सम्भवतः इसके परिणाम स्वरूप आगे उस के काव्य की एक मुक्त मधुधारा ही बह चली।

मेरा अनुमान है कि स्वयं बच्चन सन् १९३२ के आस-पास से लेकर सन् १९३७ (मधुकलश) तक मधुवादी काव्य-धारा में तेजी से बहते रहे। सन् १९३५ अर्थात् खैयाम की मधुशाला के अनुवाद से उनका सर्जक रूप सामने आया। इससे पूर्व कि बच्चन के मधुवादी काव्य पर मुक्त रूप से कुछ कहा जाय यह आवश्यक है कि खैयाम की मधुवादी सूक्ष्म चिंता को संक्षेप में कुछ समझ लिया जाये और उसके साथ ही बच्चन से कुछ पूर्व के और उनके समकालीन (छायावादी) कवियों ने जो मधुवादी काव्य रचा उसके विषय में एक धारणा बना ली जाये। मधुवादी काव्य के महत्व और मूल्य को जानने-समझने के लिये तो यह उपयोगी होगा ही साथ ही बच्चन के मधुवादी काव्य के स्वतन्त्र मूल्य और महत्व को जानने में भी सुविधा होगी।

फिट्जरेल्ड ने खैयाम की जिन रुबाइयों का अनुवाद अंग्रेजी में किया है उन्हें और उनके हिन्दी काव्यानुवादों को पढ़कर संक्षेप में यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि खैयाम के पास तरुण प्यास नहीं है, बृद्ध प्यास है। खैयाम कल के या भविष्य के जीवन पर अधिक आस्था नहीं रखता। उसकी मान्यता है कि इस क्षण में ही जो सुख मिले उसे भोगा जाये। खैयाम का सुख क्षण के काँपते हुए कण पर ठहरा हुआ है।

Ah, fill the Cup!—what boots it to repeat.
How Time is Slipping underneath our feet.
Unborn To morrow, and dead yesterday,
Why fret about them if to day be sweet.
(Edward Fitz Gerald)

खैयाम के क्षीण-स्वरों में बृद्ध, अभावग्रस्त, मृत्युग्रस्त, भयातुर, और थकित पिपासा कुल जीव का दुर्दमनीय आवेश प्रतिध्वनित होता है। वहां जीवन के प्रति आस्था कम है, भ्रांतिपूर्ण सुख-भोग की लालसा तीव्र है। खैयाम का काव्य तीव्रतम् पिपासा का काव्य तो है पर निसन्देह वह पौरुष का काव्य नहीं है। खैयाम की प्रकृति और नियति, उस का जगत, मानव और जीव क्रूर-काल के प्रहार से पीड़ित है। खैयाम जीवन-मदिरा के इस तन रूपी प्याले को तलछट तक से चाट जाना चाहता है। उसे जीवन के सौन्दर्य को अमर पिपासा है। पर दुख तो यही है कि उसका अस्तित्व क्षण-भंगुर है। उसका प्रेम अमर है, लेकिन वह मर जायेगा। कुल मिलाकर खैयाम के काव्य-दर्शन में क्षणिक सुख को ही शाश्वत महत्व दे दिया गया है और भोग की भावना को तूल दिया गया है। वहां सुरा और सुन्दरी सुखोपलब्धि के क्षणिक साधन-मात्र होकर भी शाश्वत से लगते हैं। खैयाम का यह दृष्टिकोण भारतीय चिंता की दृष्टि से स्वस्थ्य नहीं है। हमारे यहाँ जीवन के आनंद को अंततः क्षणिक नहीं माना गया है। खैयाम का सुख वैयक्तिक है। उसे उदात्त नहीं कहा जा सकता। फिर खैयाम की सुखवादी धारणा में एक निष्क्रियता है जो ज़ीवन को पंगु बनाने वाली कही जायगी। सम्भवतः इसीलिये भारत में खैयाम के काव्य-दर्शन की लहर आई और चली गई। फिर भी उसके काव्य का कुछ ऐतिहासिक महत्व तो है ही।

खैयाम के काव्य को पढ़कर सूक्ष्म प्रतिक्रिया यह होती है—

१. इस काव्य में जीवन का अभावात्मक दृष्टिकोण प्रधान है।

२. इस काव्य में क्षणिक सुख-भोग की लालसा की तीव्र अभिव्यंजना है।

३. इस काव्य में किसी दीन, दुर्बल और बृद्ध प्रेमी-कवि का दुर्दमनीय आत्म-चीत्कार है। इसे फस्टेशन या कामप्लेक्स या कुंठा की अभिव्यंजना कह सकते हैं।

४. इस काव्य में मुक्त रूप, सौन्दर्य और प्रेम-रसपान की कभी न बुझने वाली पिपासा है। इसलिये उसमें सपनों का एक कवि-कल्पित सरस संसार उद्भासित होता है।

५. इस काव्य में काल और नियति का भय और आंतक गहरा छाया हुआ है। यहां हर आने वाला कल जैसे काल का प्रतीक है। जैसे हर भागता हुआ क्षण

सुख का साकी है। जैसे एक साँस ही, एक घूंट ही, एक चितवन ही जीवन की चरम उपलब्धि है।

६. इस काव्य में सुरा, साक़ीबाला, मधुशाला, प्याला, आदि पात्र आत्मा, देह, जग, रति, लालसा आदि के जीवंत प्रतीक हैं। वे इस कटु जगत को भुलाने और अभाव ग्रस्त कुँठित मन को बहलाने के प्रयोजन को सिद्ध करने वाले मात्र साधक हैं। यहाँ जीवन का साध्य बस एक अर्थ हीन शून्य है, रिक्तत्व है।

७. इस काव्य में व्यक्त एक मिथ्या मादकता है जो मूलतः आयु की उदासीनता को व्यक्त करती है। क्षणिक-सुख का स्वर भी सूक्ष्मतः वहाँ दमित विलाप या प्रलाप ही-सा लगता है।

...और यह निसंदेह कहा जा सकता है कि बच्चन के मधु-काव्य-सृजन का उत्स खैयाम काव्य का आकर्षण है। बच्चन की 'प्रारम्भिक रचनाएँ' (दूसरा भाग) में जहाँ अनेक विषयों पर कविताएँ हैं और जिनका मुख्य स्वर छायावादी भाव-शिल्प के बीच से उभरता प्रतीत होता है वहीं मधु का सहज, मन्द्र स्वर भी प्रायः सुनाई पड़ता है। संग्रह के अन्त में कवि की तीन रुबाइयें रखी हैं जिनसे उसके आगामी मधुवादी काव्य-क्षितिज का पूर्वाभास मिलता है। बच्चन के आगामी मधुवादी काव्य-सृजन की यह रुबाइयां जैसे तीन कुँजियां हैं। यह पंक्तियां ज़रा ध्यानपूर्वक पढ़िये—

मैं एक जगत को भूला
मैं भूला एक जमाना...
मैं भूल न पाया साकी—
जीवन के बाहर जाकर
जीवन में तेरा आना

× × ×

हर कलिका की क़िस्मत में
जग जाहिर, व्यर्थ बताना,
खिलना न लिखा हो लेकिन
है लिखा हुआ मुर्झाना !

यहाँ यह भी ध्यान रहे कि बच्चन कवि से पहले एक कहानी कार के रूप में प्रकट हुए थे और इससे आगे बच्चन ने खैयाम की मधुशाला का अंग्रेज़ी से खड़ी बोली में अनुवाद प्रस्तुत किया जहाँ छायावादी शैली कुछ ढलती हुई-सी प्रतीत होती है। इसके उपरांत, सन् १९३३-३४ में कवि ने अपनी मौलिक 'मधुशाला' प्रस्तुत की।

इससे पूर्व कि मधुशाला पर स्वतंत्र पाठकीय प्रतिक्रिया प्रकट की जाये यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि बच्चन की मधु से सम्बन्धित काव्याभिव्यक्ति में खैयाम की चिंता का प्रभाव प्रकट नहीं है वरन मौलिक रचना करने की प्रेरणा प्रबल प्रतीत होती है। मधुशाला के "संबोधन" में इस प्रेरणा की स्वीकृति कवि के शब्दों से साफ़ प्रकट होती है—

"उस दिन दूसरे के प्रसून (अर्थात् उमर खैयाम की रुबाइयों का अनुवाद) जो मैंने तेरे चरणों में अर्पित कर दिये उससे मेरे हृदय का भार तो हल्का न हुआ, मेरे हृदय का बोझ तो न उतरा, मेरे हृदय को सन्तुष्टि तो न मिली।"

बच्चन के मधुकाव्य में खैयाम के काव्य के कुछ तत्वों का समाहार अवश्य हुआ है। खैयाम 'मधु' को जीवन के सुखवादी दृष्टिकोण का प्रतीक मानकर चले हैं और फिर यह भी मानते है कि सुख क्षणिक है जीवन भी क्षणिक है। उसका भोग अपनी क्षणसीमा में भी स्वर्ग प्राप्ति से बढ़कर है। बच्चन भी सीधे या प्रकारातंर से कुछ ऐसी ही बात स्वीकार कर जाते हैं। मधु-सुख-क्षण को खैयाम की तरह बच्चन भी व्यक्त करते हैं—

सुख की एक सांस पर होता
है अमरत्व निछावर।

बच्चन के काव्य में, खैयाम जैसा, जीवन के प्रति संसक्ति या आसक्ति का स्वर भी मुखरित हुआ है। पर खैयाम की संसक्ति या आसक्ति में वैयक्तिक कुंठा, पिपासा, वासना, खीज और काल के प्रति भय, शंका, निराशा और वीतराग की ध्वनि व्यापक है। यह बच्चन के मधुकाव्य में भी है, लेकिन व्यापक नहीं है।

खैयाम अपनी प्यास खाली प्याले से अधिक व्यक्त करता हुआ प्रतीत होता है। लेकिन बच्चन का कवि जीवन की भरी गागर से अपनी ललक-लपट व्यक्त करता दीखता है—

है आज भरा जीवन मुझ में
है आज भरी मेरी गागर।

खैयाम के काव्य में जग-जीवन के संघर्ष के प्रति सूक्ष्मतः थकान और पलायन व्यक्त होता है। पर बच्चन के काव्य में ऐसा स्वर प्रधान नहीं है। वहाँ जग-जीवन के संघर्ष में से ही मधु की धारा फूटती है—'**राग के पीछे छिपा चीत्कार कह देगा किसी दिन, हैं लिखे मधु गीत मैंने हो खड़े जीवन समर में**' कहीं-कहीं बच्चन के काव्य में खैयाम की भांति व्यक्ति-विषाद की व्यंजना गहरी हो जाती है। लेकिन उसका प्रभाव स्थाई नहीं रहता। खैयाम के काव्य में जिस प्रकार हाला, प्याला, साक़ीबाला और मधुशाला जीवन के प्रतीक बनकर उतरे हैं, बच्चन के काव्य में भी प्रायः उसी तरह से उनकी अभिव्यंजना हुई है।

खैयाम के काव्य में दार्शनिक आग्रह अधिक है। बच्चन के मधुकाव्य में अल्हड़ता है। फिर भी खैयाम के काव्य की प्रेरणा बच्चन के मधुवादी काव्य-सृजन की मूल शक्ति है। वास्तविकता यह है कि मधुशाला ने आलोच्य-सृजन को लोकप्रियता दी। उनकी अन्य मधु सम्बन्धी रचनाओं ने उन्हें काव्य-सृजन करते रहने का अर्थ-आखर-बल प्रदान किया। और मधु-काव्य ने उन्हें प्यार-जवानी-जीवन के जादू को मानने-मनवाने और गाने-झुमाने का सौभाग्यशाली अवसर प्रदान किया। यों बच्चन लोकप्रिय कवि हो गए।

बच्चन की मधु विषयक कविताओं में मिथ्या धर्मादर्शों के प्रति कटाक्ष एवं सुरा-सुन्दरी के प्रति भोगवादी पिपासा का खुलकर प्रकाशन हुआ है। उनकी 'मधुशाला' और 'मधुबाला' की मूलध्वनि यही है। इन कृतियों की इस मूलध्वनि की सूक्ष्मता हाफ़िज की इस अभिव्यक्ति के इर्द-गिर्द मँडराती है—

मावोस जुज लवे माशूक ओ जामे मैं हाफ़िज
अर्थात्— **कि दस्ते जुहद फरोशा खतास्त बौसींदन**

'ए हाफ़िज, तू शराब के प्याले और माशूक के अधरों के अलावा और किसी का चुम्बन न ले क्योंकि धर्म बेचने वालों के हाथ का चुम्बन लेना एक बड़ा पाप है।' इस परिप्रेक्ष्य में बच्चन का मधुवादी काव्य पढ़ते हुए यह कहना ठीक होगा कि उसमें खैयाम के काव्य की जैसी क्षणभंगुर जीवन की कुँठित दार्शनिकता न होकर जीवन के सुखभोग के प्रति सहज अल्हड़ता और मस्ती मुखरित हुई है। किन्तु इसका यह अर्थ लेना असंगत है कि बच्चन की मधुवादी काव्य की अभिव्यंजना का आधार पर्शियन काव्य है। यह तो मात्र तुलना है। सृजन की दृष्टि से बच्चन का मधुकाव्य अपने में मौलिक अधिक है—प्रेरणा कहीं से भी प्राप्त करने का कवि को अधिकार है।

तत्वतः बच्चन की मधुवादी अभिव्यंजना में रहस्य या दर्शन सम्बन्धी कोई दृष्टिकोण न होकर जीव की सहज पिपासा का मुक्त-मस्त (और त्रस्त भी) मुखरण हुआ है। खैयाम के अतिरिक्त विश्व प्रसिद्ध पर्शियन कवि हाफिज (एडी० १३२०—९१) ने भी प्रणय-हालावादी रचनाओं का सृजन किया था। इनका काव्य किसी धर्म-दर्शन अथवा वैराग्य भाव से ग्रस्त न होकर एकदम इहलौकिक अल्हाद को ध्वनित करता है। अतः सम्भवतः यह सोचना असंगत न होगा कि बच्चन की मधु-प्रणय विषयक अभिव्यक्ति हाफ़िज की इस प्रकार की मूल अभिव्यंजना के स्तर की है—

"I am no lover of hypocricy
Of All thc treasures that the earth can boast A briming cup of Wine I prigze thc most. This is euough for me.
(A Treasury of Asian literature Page 345)

☒ ☒ ☒

बच्चन को हालावादी कवि (चीप अर्थ में) होने का फतवा बहुत पहले दिया गया था। इसमें कोई शक नहीं है कि बच्चन ने एक साथ शुद्धमधु सम्बन्धी ये दो कृतियां दीं—

१. **मधुशाला**
२. **मधुबाला**

इन मधु-कृतियों में सन् १९३३ से लेकर १९३५-३६ तक की रचनायें संग्रहीत हैं। लेकिन बच्चन के मधुवादी काव्य-सृजन से पूर्व खड़ी बोली में खैयाम की मधुशाला के कई अनुवाद हो चुके थे जिनका जिक्र पहले हो चुका है। इधर बच्चन जी के अग्रज स्वर्गीय श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' और श्री भगवतीचरण वर्मा मधु से सम्बधित मस्ती और वेदना से पूर्ण कविताएँ रच चुके थे। इधर मैं आप का ध्यान छायावादी

काव्य के स्तम्भ स्वर्गीय जयशंकर प्रसाद रचित 'आँसू' काव्य की ओर भी आकर्षित करना चाहूंगा। 'आसू' की रचना सन् १९२५ से भी पूर्व हुई, लेकिन इस वेदना और प्रेम के भावों से पूर्ण काव्य में अनेक पद्य-पद्यांश मधु, मदिरा, प्याला और साक़ीबाला से सम्बन्धित हैं। इस काव्य में खैयाम की मदिरा का उन्माद-विषाद स्थल-स्थल पर उभरता है। बहुत से उदाहरण दे सकता हूँ, लेकिन कुछ प्रस्तुत कर रहा हूँ—

"यह तीव्र हृदय की मदिरा
जीभर कर छक कर मेरी
अब लाल आंख दिखलाकर
मुझ को ही तुमने फेरी।
× × ×
परिरम्भ-कुम्भ की मदिरा
निश्वास-मलय के झोंके
× × ×
काली आंखों में कितनी
यौवन के मद की लाली
मानिक-मदिरा से भरदी
किसने नीलम की प्याली?

प्रसाद जी के काव्य के अतिरिक्त निराला जी, पंतजी और महादेवी जी के काव्य में मधु की अभिव्यंजना बराबर होती रही। निराला जी की इन उक्तियों से मधु झर रहा है—

द्रुम-दल-शोभी फुल्ल नयन ये
जीवन के मधु गन्ध चयन ये।
× × ×
जगा देता मधु-गीत सकल
तुम्हारा ही निर्मम झंकार। (अपरा पृ० ९५)
× × ×

पंत जी ने तो सन १९२९ में 'मधुज्वाल' (जो बच्चन जी को समर्पित हुई है) पुस्तक में खैयाम की रुबाइयों का गीतान्तर ही किया है। इधर दीपशिखा (१९४२) से पूर्व महादेवी जी ने अपने काव्य में मधुस्नात अनेक गीत रचे हैं। सन १९३० से ३५-३६ तक के पाँच-छ: वर्षों में रचा गया यदि खड़ी बोली काव्य का सूक्ष्म अवलोकन किया जाय तो छायावादी काव्य में मधुभाव-धारा का अपना व्यापक महत्व है। महादेवी जी के अनेक पद्याँशों और कई गीतों की प्रथम पंक्तियों से मधु झरता है—

तब क्षण-क्षण मधु प्याले होंगे!
× × ×

विरह की घड़ियाँ हुई अलि मधुर मधु की यामिनी-सी।

× × ×

जाने किस जीवन की सुधि ले, लहराती आती मधु बयार।

× × ×

तेरा अधर विचुम्बित प्याला
तेरी ही स्मित मिश्रित हाला
तेरा ही मानस मधुशाला
फिर पूछूँ क्यों मेरे साकी
देते हो मधुमय-विषमय क्या ?

महादेवी जी की दीप शिखा (सन १९४२) के कई गीतों तक में मैंने मधु-भावों की पदचाप सुनी है; जैसे, गीत संख्या ४३ में 'मधु का ज्वार' आया है। गीत संख्या ४७ में में 'ये मधु-पतझर साँझ सवेरे' का मनोरम संकेत है।

कहने का तात्पर्य यह है कि जिस समय बच्चन अपने मधुवादी काव्य की रचना कर रहे थे उस समय और उससे कुछ पूर्व और उससे काफी आगे तक भी खड़ी बोली के प्रसिद्ध कवि अपने काव्य में मधु का अभिव्यंजन सीधे या प्रकारांतर से कर रहे थे। मैंने पहले कहा कि खैयाम के काव्य से बच्चन आकर्षित थे और वे अपने युग वातावरण तथा समकालीन कवियों के भी साथ थे। प्रतिभाशाली नवयुवक थे। अँग्रेजी के छात्र, रसिक, प्रेमी और फिर कायस्थ कुलोद्भव, पचहत्तर प्रतिशत रक्त में हाला ! इस प्रकार बच्चन के मधुवादी काव्य सृजन शुरू हुआ। सौभाग्य यह रहा कि समय और शोहरत ने उन्हें सुखद सपनों को पकड़ने की ललक प्रदान की। मधु की उपेक्षा करने वाले भी मधुशाला सुनकर उनकी सराहना करने लगे, झूमने लगे, गाने लगे और उसके कवि को 'पिट्ट' के यहाँ के रसगुल्ले' खिलाने लगे। निराश नव-युवक पीढ़ी को झूमकर जीने की उमंग मिली। कठमुल्ले कहते-सुनते रहे, बच्चन प्रसिद्ध होते रहे। तीखी आलोचनाओं और कठमुल्लों के कटाक्षों ने उनके यौवन और जीवन में संघर्ष की ज्वाला जगा दी। यह उनके मधुवादी काव्य का दिया हुआ भाव-उपहार था, सौभाग्य था। लेकिन अभिषाप रूप एक दुर्भाग्य भी जुड़ गया कि उन्हें हालावादी, मदिरा प्रचारक, पियक्कड़, धर्म पथ भ्रष्ट और छिछोरा कवि कहा-सुना जाने लगा। यह दुर्भाग्य बच्चन के काव्य-विकास के आड़े तो न आ सका पर इससे एक अहित जरूर हुआ कि हमारे हिन्दी के सुधी आलोचक वर्ग ने जीवन के एक अत्यन्त मर्मस्पर्शी कवि के महत्वपूर्ण काव्य का समय से उचित मूल्यांकन नहीं किया। और तो और बच्चन के मधु काव्य में जो शक्ति निहित है अभी तो उसे भी नहीं छुआ गया है। इधर दो दशकों से ऊपर जो कुछ उन्होंने लिखा है, उसका तो कहना ही क्या है ?

मधुशाला

मधुशाला बीसवीं सदी की, सम्भवतः, देश की भिन्न-भिन्न भाषाओं में रची

गई सर्वाधिक प्रसिद्ध कृतियों में से एक कृति है। यह सभी जानते हैं कि खड़ी बोली की यह पहली काव्य पुस्तक है जिसका पहली बार अनुवाद अँग्रेजी में अँग्रेजी की ही कवियित्री **Marjorie boulton** ने किया और स्वर्गीय जवाहरलाल नेहरू ने इस पर अपनी महत्वपूर्ण भूमिका लिखी। मधुशाला सन १९३३ में लिखी गई और १९३५ में उसका पहला प्रकाशन हुआ। इस कृति के अब तक अनेक संस्करण निकल चुके हैं जिससे उसकी पठन-पाठन की बढ़ती हुई रुचि का आसानी से अन्दाज़ लगाया जा सकता है। टैक्सट में लगी हुई कुछ काव्य-पुस्तकों की मैं बात नहीं करूँगा कि उनके कितने संस्करण निकल चुके हैं लेकिन सम्पूर्ण खड़ी बोली काव्य को ध्यान से पढ़कर मैं बड़े विश्वास से कह सकता हूँ कि मधुशाला को इस देश की जनता ने जितना पढ़ा है, जितना उससे रस लिया है उतना शायद दूसरी किसी काव्य कृति के बारे में सच नहीं है। मुझे कई परिचितों से पता चला है कि मधुशाला के पंजाबी, मराठी, बंगला, पर्शियन और अन्य कई भाषाओं में अनुवाद किए जा चुके हैं। खड़ी बोली की सम्भवत: किसी अन्य काव्य-कृति को इतनी रुचि से बच्चों, नवयुवकों और उनसे भी बड़ी उम्र के लोगों ने इतना नहीं पढ़ा जितना मधुशाला को पढ़ा है। बी० ए० एम० ए० आदि की परीक्षाओं को पास करने के लिए खड़ी बोली के अन्य श्रेष्ठ कवियों, गुप्त जी, प्रसाद जी, पंत जी, निराला जी, महादेवी जी आदि को पढ़ना तो जरूरी हो जाता है। बच्चन यहाँ ज़रूरी नहीं हैं। पर मुझे तो उनकी कविताएं पढ़कर ऐसा महसूस होता है कि जो ज़िन्दगी के इम्तहान में शामिल होता रहता है वही उन्हें पढ़ता है। उनकी मधुशाला जनता अब तक अपनी स्वतन्त्र रुचि से ही पढ़ती आई है। और उसके प्रति यह कामना करना भी शुभ है कि वह कभी कोर्स में न लगे।

'मधुशाला' के सम्बन्ध में स्वयं उसके कवि द्वारा लिखे-कहे गए मैंने कई किस्से जाने है। इधर उनके समवयस्क कवि बंधु या उनके प्रशंसक प्राय: लेखों या कवि सम्मेलनों में 'मधुशाला' के प्रथम सस्वर-पाठ की याद दिलाते हैं जो दिसम्बर १९३३ में काशी विश्वविद्यालय में हुआ था। प्राय: दोहराया जाता है कि तबसे अब तक मधुशाला का नशा वैसा ही है, कि वह गहरा होता गया है, कि मधुशाला मध्यवर्ग की नवयुवक पीढ़ी की चीज़ है। इसके साथ ही सन् १९३४ और ३६ और इसके उपरान्त भी समय-समय पर बच्चन की मधुशाला का जो उपहास, उसकी जो उपेक्षा भर्त्सना और प्राध्याकीय-पंडिताऊ-आलोचना पत्र पत्रिकाओं में होती रही है उसे भी मैंने थोड़ा-बहुत पढ़ा-सुना है। लेकिन मुझे यहां आग्रह-दुराग्रह की बात अधिक लगी है। 'मधुशाला' की लोकप्रियता के प्रति इस प्रकार की धारणाओं का फैलना मुझे अधिक अस्वभाविक भी नहीं लगता। लेकिन पिछले १०-१२ वर्षों में मधुशाला को कई बार पढ़कर और कवि-मुख से सुनकर मेरे मन में कुछ प्रतिक्रियाएँ उठी हैं। मधुशाला की लोकप्रियता के सम्बन्ध में जब-जब मैंने सोचा है तब-तब एक प्रश्न उभरा है कि 'मधुशाला' की लोकप्रियता का रहस्य कबि के कंठ में है या उसके

कवित्व में ? और इसका उत्तर मुझे अपने मन से यह मिला है कि कविता महज़ कान की करामात पर नहीं ठहर सकती। कवि का कंठ कुछ देर धोका तो दे सकता है और कुछ लोगों को दे सकता है। पर कविता की लोकप्रियता तो उसकी ही शक्ति से उत्पन्न होती है और वह शक्ति है विदग्धता !

कविता की लोकप्रियता के साथ ही, जिसका मूल सम्बन्ध मेरे विचार से उसकी विदग्धता से है, उसकी नित्यता अर्थात् स्थिर बनी रहने की बात भी उठती है। कोई राग, कोई गीत या कोई ललित सृजन कई बार के रसास्वादन के उपराँत अपनी रोचकता-रसमयता खोने लगता है। मन की 'मोनोटोनी' एक मनोवैज्ञानिक सत्य है। लेकिन जो कविता और पुरानी होकर भी और नशीली होती जाये उसकी नित्यता पर हमें कुछ सोचने के लिए सजग होना पड़ेगा। अब 'मधुशाला' की रचना हुए काफी समय बीत गया है। लेकिन कभी वे जो आज की नवयुवक पीढ़ी के पिता थे, और जिनमें लेखक के पिता भी एक थे, मधुशाला की प्रशंसा के पुल बाँधा करते थे उनकी नवयुवक पीढ़ी भी मधुशाला मजे से पढ़ती-सुनती है। और मज़ा यह है कि आज की नई उगती, खिलती, खेलती सन्तान भी मधुशाला पढ़ती-गाती है जिसमें लेखक के घर की एक बाल-पीढ़ी भी शामिली है—यामिनी, पूनम, आलोक, अश्विनी-अमिम आदि। ये बच्चे मधुशाला मास्टर जी के आग्रह पर नहीं पढ़ते-गाते। स्कूल में तो वे मैथिलीशरण गुप्त, प्रसाद, पंत, निराला और महादेवी आदि की रचनाएँ ही पढ़ते-समझते हैं। जब कभी इन बच्चों को मौज में मधुशाला पढ़ते-गाते देखता हूँ तो फिर मेरे दिमाग में वही प्रश्न उठता है कि मधु-शाला की लोकप्रियता का रहस्य कवि के कंठ में है या उसके कवित्व में ? और मैं अभी इस बच्ची से पूछ कर चुका हूं—'मधु-शाला तुम क्यों गाती हो ?' बच्ची हँसकर मौन हो गई है। जैसे उसका मौन ही एक अटपटा उत्तर है कि 'बस अच्छी लगती है ! पर बता नहीं सकती।' यानी मधुशाला में मन को खींचने वाली कोई अद्भुत शक्ति है। जैसा मैंने पहले कहा, मधुशाला में 'विदग्धता' है; उसमें कल्पना और भावना का सहज अभिव्यंजन है, उसमें मन को मुखरित करने वाली सरल ध्वनि है। मधुशाला की नित्यता के पीछे कोई प्रचार या विज्ञापन का बल नहीं है बल्कि यह उसका कवित्व-बल ही है जो उसे सरस बनाये है। उसे इस दृष्टि से पढ़ने पर हम उसकी लोकप्रियता के रहस्य को सरलता से जान सकते हैं।

मधुशाला का मूल स्वर मस्ती का है। मस्ती और मधुशाला, इन दोनों को प्रस्तुत संदर्भ में एक दूसरे का पर्याय भी कह सकते हैं। यह मस्ती, प्यार-जवानी-जीवन की मस्ती है। यह उस दीवाने की मस्ती है जिनकी कामना, वासना, भावना, कल्पना और सभी प्रकार की लालसाओं को बृद्ध समाज ने कुचल दिया है। मधुशाला की मस्ती उस एबसर्ड कवि (हीरो !) की मस्ती है जिसने ख़ैयाम के मदिर-मधुर संसार में विचरण किया है। जो स्वयं एक वैसा ही मनोरम संसार रचने को उत्सुक है। लेकिन सपनों का संसार बसाने वाला यह कवि जग-जीवन के सत्य-संघर्ष के अंगारों

से झुलसता ही चला गया। और एक दिन मधुशाला से मदिरा लाकर अपनी पिपासा से उसने कहा—

"आज मदिरा लाया हूं—मदिरा, जिसे पीकर भविष्यत् के भय भाग जाते हैं और भूतकाल के दारुण दुख दूर हो जाते हैं। जिसका पानकर मान-अपमानों का ध्यान नहीं रह जाता और गौरव का गर्व लुप्त हो जाता है, जिसे ढालकर मानव अपने जीवन की व्यथा, पीड़ा और कठिनता को कुछ नहीं समझता और चखकर मनुष्य श्रम, संकट, संताप सभी को भूल जाता है। आह, जीवन की मदिरा जो हमें विवश होकर पीनी पड़ती है, कितनी कड़वी है, कितनी! यह मदिरा उस मदिरा के नशे को उतार देगी, जीवन की दुखदायिनी चेतना को विस्मृति के गर्त में गिराएगी तथा प्रबल दैव, दुर्दम काल, निर्मम कर्म और निर्दय नियति के क्रूर, कठोर, कुटिल आघातों से रक्षा करेगी। क्षीण, क्षुद्र, क्षणभंगुर, दुर्बल मानव के पास जग-जीवन की समस्त आधिव्याधियों की यही एक महौषधि है। मेरा हृदय कहता है कि आज इसकी तुमको आवश्यकता है। ले, इसे पान कर; और इस मद के उन्माद में अपने को, अपने दुखद समय को और समय के कठिन चक्र को भूल जा। ले, इसे पी, और इस मधु से अपना जीवन नवोल्लास, नूतन स्फूर्ति और नवल उमंगों से भर। उफ, किसे ज्ञात है कि यह दूसरों को मदोन्मत्त कर देने वाला स्वयं कितने अवसादों का पुंज है। किसे मालूम है कि दूसरों को शीतलता प्रदान करने वाला स्वयं कितनी भीषण ज्वाला में दग्ध हुआ करता है।"

कवि के इस वक्तव्य का एक-एक शब्द 'मधुशाला' के सृजन की प्रेरणा के आधारभूत तथ्यों-सत्यों की ओर इंगित कर रहा है। इस वक्तव्य के पीछे जीवन की जो बाह्य-आंतरिक घुटन है, स्वच्छदता के लिये मन की जो छटपटाहट है, जो मदिरा जनित क्षणिक-सुख को ही प्राप्त करते जाने की तीव्र लालसा है, धार्मिक-सामाजिक रूढ़ आचार-विचारों के प्रति जो बलकता हुआ वाणी-विद्रोह है, उसी में निहित मधुशाला की कवित्व-शक्ति का रहस्य हाथ आता है। मधुशाला पढ़ते समय या उसके प्रति कोई निर्णय देते समय हम जब यह भूलते हैं तभी अनर्थ या अन्याय कर जाते हैं।

× × ×

'मधुशाला' को हिन्दी काव्य की कोई महान उपलब्धि कहना-समझना भूल होगी। 'मधुशाला' में न 'कामायनी' जैसा कवित्वमय मनस्तत्व है, न 'साकेत' जैसा विविध छंदी कवित्व कौशल, न निराला-काव्य जैसा निरालापन, न 'पल्लव' जैसा प्रकृति-वैभव, न 'दीपशिखा' जैसा कल्पना-पीड़ा-रहस्यमय रागत्व और न 'ऊर्वशी' जैसा प्रचण्ड वेग। इतना सोचकर भी मैं यह सोचने को मजबूर होता हूँ कि 'मधुशाला' में ऐसा क्या है जो जनमन को इतना अच्छा लगता है कि आए दिन मधुशाला के नये संस्करण छपते रहते हैं? इसी धुन में मैंने मधुशाला को अनेक बार पढ़ा है। मैंने अपने कई जागरूक मित्रों से मधुशाला के प्रति व्यक्तिगत प्रतिक्रियाएं भी प्रकट करने का अनुरोध किया है। मधुशाला के अच्छी लगने के बारे में कुछ मिलते-जुलते से मत भी मुझे मिलें हैं और बहुत से ऊल-जलूल भी! मधुशाला अच्छी लगने के बारे में

कुछ मिलते-जुलते-से मत इस प्रकार हैं—

१. मधुशाला में सरल शब्दावली (यानी पदावली) है।

२. मधुशाला के भावों को समझने में कोई कठिनाई नहीं होती।

३. मधुशाला में मस्ती और अल्हड़ता खूब है।

४. मधुशाला की शब्द-योजना में एक स्वाभाविक संगीत-ध्वनि का आकर्षण है।

५. 'मधुशाला' की रूबाइयों की अंतिम पंक्तियों में कुछ ऐसा जादू होता है जो मुग्ध कर लेता है।

इन साधारण मतों से यह स्पष्ट होता है कि जनता इस कृति के सहज गुणों को समझती है और यह भी कि उसमें सरल शब्दों और भावों का समन्वय है तथा सहज संवेद्यता है और मस्ती, अल्हड़ता तथा मनोरंजन का आलाप-मिलाप तो वहाँ है ही। अगर काव्य को हम गम्भीर दर्शन का सहोदर ही मानकर न चलें तो 'मधुशाला' के प्रति काव्य-रसिकों की यह प्रतिक्रिया भले ही विश्वविद्यालयों के अध्यापक-आलोचकों को मान्य न हो लेकिन उसकी महत्ता को यों ही तो नहीं झुठलाया जा सकता।

'मधुशाला' के कवित्व के प्रति मेरी अपनी एक विशेष प्रतिक्रिया है। और मुझे आश्चर्य न होगा यदि वह बहुतों की भी हो। 'मधुशाला' की मूल शक्ति समाज, धर्म और राजनीति की रूढ़ि-सीमा को तोड़ने वाली अभिव्यंजना में समाई है। और ऐसा क्यों नहीं हुआ कि बच्चन 'मधुशाला' के स्थान पर 'साकेत' जैसी कोई कृति लिखते ? बच्चन नामक मध्यवित्त परिवार का एक भावुक नवयुवक अनायास वाणी का अस्त्र चुनता है। वह कवि बन जाता है। इस नौजवान कवि के घर में मध्यकालीन अनेक मर्यादाएँ हैं। वहाँ नारी के लिये परपुरुष का साया पड़ना भी महापाप माना जाता था। इधर घर से बाहर, इस बीच, स्वतंत्रता-संघर्ष का ज़ोर था। तब देश में मुसलमानों के बीच मंदिर-मस्जिद सम्बधी साम्प्रदायिक दंगे हो रहे थे। अँग्रेजी भाषा, साहित्य और धर्म का भी प्रचार-प्रसार हो रहा था। लेकिन इन सबके विरुद्ध नवयुवक पीढ़ी जो कुछ जोश-खरोश दिखलाती थी वह सब घर, परिवार, समाज और सरकार के कठोर प्रतिबंधों के कारण ठंडा पड़ जाता था। उसके स्थान पर भावुक हृदयों में एक कुण्ठा और बलबलाहट मचलती रह जाती थी। बच्चन का तरुण कवि, संक्षेप में, इस दमघोटू वातावरण में मुखरित हुआ। छायावादी अन्य कवि भी इस विषम वातावरण में अपनी वाणी व्यक्त कर रहे थे, भले ही वे इस पार के संघर्ष से डर कर उस पार, और वहाँ के अज्ञात प्रियतम तथा प्रकृति की कल्पना द्वारा युग-अकुलाहट से मन को मुक्त कर रहे थे। लेकिन बच्चन का स्वर इस पार का ही स्वर था। 'उस पार' उसे 'क्या होगा' का भ्रम सताता था। उसका तारुण्य चाहता था कुछ नया-नया दरस-परस ! लेकिन मध्य युगीन मर्यादाएँ उसकी जैविक आकांक्षा पर गहरी चोट करती थीं। वह चाहता था अपने मन की मुक्ति और तृप्ति ! तब रूढ़ि तथा आदर्शों को कुचल कर यथार्थ में यह सम्भव भी नहीं लगता था। बच्चन के कवि

ने अंग्रेजी साहित्य-दर्शन का अध्ययन किया था। बूढ़े खैयाम की हस्ती-मस्ती से उसका मन-मस्तिष्क लबालब भरा हुआ था। फलस्वरूप, उसने वाणी का विद्रोह जगाया। यह विद्रोह उस व्यक्ति-कवि का विद्रोह था जो तत्कालीन समाज की रूढ़ियों और मर्यादाओं को तोड़कर प्रेयसि के साथ बेफ़िक्री से गाना चाहता था—

"अस्त हुआ दिन मस्त समीरण
मुक्त गगन के नीचे हम तुम !

(मिलनयामिनी)

लेकिन उस समय यह सम्भव नहीं हो पाया। उसकी एक प्रतीकात्मक प्रतिक्रिया वाणों के व्याज से व्यक्त हुई है; यही मधुशाला है। ऐसी दशा में 'साकेत' जैसी कृति मधुशाला का कवि लिख ही नहीं सकता था। जो मधुशाला में मदिरा नामधारी द्रव देखते हैं उनमें और एक मदिरापायी में शायद कुछ ही फ़र्क रह जाता है। निश्चय है कि 'मधुशाला' में भट्टी की शराब नहीं है, भावना की हाला है।

'मधुशाला' की पूर्ण कवित्व शक्ति सिर्फ सरल भावों या चित्र-विधायक शब्द-योजना में नहीं है। उसकी मूल शक्ति उस नई, नवयुवक और महत्वाकाँक्षी पीढ़ी के मन में समाई होती है जो परम्परा, पाखण्ड, थोथे आदर्श, कर्म-काँड, क्रूर राजनीति तथा खोखली नैतिकता के विरुद्ध विद्रोह करना अपना दायित्व समझती है।

संक्राँति कालीन युग-वातावरण तथा मध्यकालीन जर्जरित आदर्शों एवं विघटित मूल्यों-मान्यताओं के ऐतिहासिक परिवेश तथा परिप्रेश्य में मधुशाला में विकासवान व्यक्ति-मन की मुक्ति या स्वच्छंदता की पिपासा की एक दुदर्मनीय रागात्मक चीत्कार 'रिकार्ड' है, जो धार्मिक तथा सामाजिक खोखली धारणाओं को चुनौती देकर नयी पीढ़ी को नई अदा से सदा अपनी ओर बरबस खींचती रहेगी। मधुशाला वस्तुतः मस्ती-मादकता की प्रतीक पीठिका है। और मस्ती-मादकता के बिना भी कभी यौवन यौवन कहलाने की जुर्रत करेगा ? इसकी कल्पना कौन करेगा ! यौवन के प्रत्येक उल्लास, अवसाद तथा प्रणय-संघर्ष के पीछे मस्ती-मदिरा की शै प्रधान होती है।

'मधुशाला' की भाषा-शैली और उसके अन्तर में निहित भावान्दोलन का प्रभाव 'पियक्कड़ों' पर पड़ा हो, इसके लिए पूरा सन्देह या इन्कार भी किया जा सकता है। पर उससे निःसन्देह देश-भक्तों और स्वतन्त्रता संग्राम के सैनानियों और बलिदानियों ने अपने मानस-क्षेत्र में एक नई क्रान्ति, प्रेरणा एवं ऊर्जा का तीव्रता से अनुभव किया था। स्वतंत्रता-संग्राम के अमर सैनानी-बलिदानी देशभक्त पंडित रामप्रसाद 'बिस्मिल' रचित **'आजादी की मधशाला'** की ओर मैं आपका ध्यान खींचना चाहूँगा—

"हटा न मुल्ला और पुजारी
के दिल से पर्दा काला
कभी न मिलकर पीने देते
ये आज़ादी का प्याला
छुरी, कटारी चल पड़ती है

ज़रा-ज़रा-सी बातों पर
मन्दिर, मस्जिद आज बने हैं
भाई, भाई की बधशाला।

× × ×

दूर फेंक दो तुलसी दल को
तोड़ो गंगाजल प्याला
दुआ, फ़ातिहा, दान पुण्य का
मरे नाम लेने वाला
मेरे मुँह में अरे डाल दो
एक उसी सतलज का घूंट
जिसके तट पर बनी हुई है
भगतसिंह की बधशाला।

(बधशाला)

उक्त उद्धरणों को ध्यान में रखकर 'मधुशाला' की लोकप्रियता और उसकी 'गुह्य-शक्ति' पर विचार करके कुछ सहज परिणाम निकाले जा सकते हैं जिन्हें आज के जागरूक पाठक-वर्ग को बताने की कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं होती।

और मधुशाला अथवा मदिरा को समाज के खोखले आदर्श अथवा आडम्बर विधान के विरुद्ध शुद्ध प्रतीक रूप में यदि माना जाय तो उसके मूल में एक व्यक्ति (कवि) की व्यक्त आसक्ति, उसकी अस्मिता की ही प्रतिध्वनि कही जानी चाहिये।

और मधुशाला की सर्जना पर जब जब मैं कुछ सोचने लगता हूँ तब तब इस पद पर केन्द्रित हो जाता हूँ—

कुचल हसरतें कितनी अपनी
हाय, बना पाया हाला
कितने अरमानों को करके
ख़ाक, बना पाया प्याला
पी पीने वाले चल देंगे
हाय, न कोई जानेगा
कितने मन के महल ढहे तब
खड़ी हुई यह मधुशाला ?

मधुबाला

'मधुबाला' कृति यौवन की दबती-उभरती तृषा-तृप्ति की जैसे प्रबल पुकार है। 'मधुबाला' की प्यास-पुकार की ध्वनि तीखी है। उसमें यौवन की प्रणयासक्ति की ज्वाला प्रचण्ड है, उसमें निर्नियंत्रित आवेग तथा आवेश जन्य स्वर (नारे!) हैं।—

हर एक तृप्ति का दास यहां, पर एक बात है ख़ास यहाँ

पीने से बढ़ती प्यास यहाँ······(मधुबाला)

× × ×

कटु जीवन में मधुपान करो, जग के रोदन में गान करो,
मादकता का सम्मान करो·········(मालिक मधुशाला)

× × ×

हम बिना पिये भी पछताए, पीकर पछताने हम आए
(मधुपायी)

किंतु अभिव्यक्ति में जो पूर्णतः होना चाहिये था और जो केवल अन्त की कुछ कविताओं में ही ध्वनित हुआ है, वह है वाणी पर संयम। मधुबाला' की प्रारम्भिक पाँच रचनाओं का काव्याभिव्यंजन वाणी के असंतुलन का द्योतक है और जिससे पाठक कतराता है। जो वस्तुतः किसी कवि-मधुपाई का ही कवित्वसंगत अनर्गलत्व प्रतीत होता है। संक्षेप में, प्रत्येक रचना का पाठक पर अलग-अलग प्रतीकात्मक प्रभाव कुछ ऐसा पड़ता है—

'मधुबाला' भौगेच्छा रूपी नायिका के रूप में मुखरित होती है जो मधु-विक्रेता (रहस्यवादी के शब्दों में उसे प्रियतम परमात्मा कह लीजिये) की प्यारी है। मधु के पात्र (जीव कह लीजिये) उस पर आसक्त हैं। प्यालों (सांसारिक लागों) का उसके प्रति घोर आकर्षण है। यह यथार्थ संसार जिसे 'जला' देता है 'मधुबाला' उसका स्नेहपूर्वक उपचार भी कर देती है। वह गान-नृत्य निरत है। मानव-जीवन को क्षण-क्षण सुखी बनाने की उसमें अद्‌भुत क्षमता है। जब वह नहीं थी तब संसार तिमिर ग्रस्त था। सर्वत्र जड़ता व्याप्त थी। 'मधुबाला ने जीवन का जादू डाला। अतः सभी ने उसका जय-जयकार किया। जीवन की प्यास की महत्ता-सत्ता बढ़ती गई और तब से अब तक मधुबाला ने ऐसी पिपासा और आसक्ति जगाई है कि स्वप्न का संसार सत्य जगत से कहीं अधिक सम्मोहक हो गया है। यह सब करिश्मा 'मधुबाला' का ही तो है!

यों स्पष्ट है कि इस कविता में कवि का रूमानी (चाहें तो 'रहस्यवादी' कह लीजिये) दृष्टिकोण मुखरित हुआ है। यहां भाषा में छायावादीपन है, लेकिन वैसा उक्ति-उलझाव नहीं है। शब्द-योजना ह्रासोन्मुखी है—'बाँका', 'आँका', 'हर ओर मचा है शोर' आदि प्रयोगों से यह स्पष्ट है।

'मालिक मधुशाला' में एक ऐसा व्यक्ति (कवि बच्चन) अपनी आवाज़ उठा रहा है जो जग-जीवन और समाज सम्बन्धी सभी प्रतिबंधों को अँगूठा दिखाते हुए मदिरा-मस्ती का सन्देश सुना रहा है। एक अभाव ग्रस्त, कुँठित, दमित, परम्परानुगत, लालसा पीड़ित पीढ़ी है, जिसके अधिकांश सदस्यों को 'मालिक मधुशाला' ताड़ गया है कि वे मदिरा-मस्ती की उत्कट कामना रखते हैं। लेकिन वे विवश हैं। उन्हें

लेकिन भाव-गाम्भीर्य की दृष्टि से यह कविता बहुत छिछली है। मात्र पद ६ और ५ मार्मिक उतरे हैं। कविता में वाक्-संयम सर्वथा दुर्बल है। किन्तु ऐसा कुछ कभी-कभी काव्य-कला का अपरिहार्य तत्व बनकर भी व्यक्त होता है, तब, जब कि व्यक्ति कलाकार थोपी गई मिथ्या-मर्यादाओं के प्रति अपना आक्रोश-विद्रोह व्यक्त करने के लिए विवश हो जाता है। मधुबाला की कविताओं में, प्रतीक रूप में, मधु-सम्बन्धी उपकरण इसी आक्रोश-विद्रोह को ध्वनित करने जान पड़ते हैं। इस दृष्टि से अगली 'मधुपाई' कविता धार्मिक, सामाजिक, नैतिक, दार्शनिक व आध्यात्मिक दुर्बल पक्षों पर कड़ा प्रहार करती है। 'मधुपाई' स्पष्ट रूप से यहाँ वे लोग लगते हैं जो अपने वर्तमान समाज में सब तरफ पाखंडों और आडम्बरों का जाल फैला हुआ देखते हैं। उन्हें केवल एक 'मधुमार्ग' ही ऐसा जान पड़ता है जो आक्षेप या आपत्तिजनक ही सही पर वास्तविक तो है। जहाँ पुण्य के पीछे पाप नहीं लगा। जहां सत्य के पीछे धोखा नहीं लगा है। जहाँ आदर्श के नाम पर अनीति या अत्ति की कथा-व्यथा नहीं है। जहां केवल व्यक्ति (मधुपाई) की हस्ती-मस्ती है। वही वास्तविकता है। फिर चाहे वह आध्यात्मिक मुक्ति हो या राजनीतिक मुक्ति। इस वास्तविकता को महसूस करके कोई भी मुक्ति सस्ती मिल सकती हैं। 'मधुपाई' कविता की शब्द-योजना में छायावादी भाषा-भंगिमा के ह्रास का मात्र आभास ही नहीं मिलता अपितु यहाँ भाषा एक नवीन लोक प्रचलित साँचे में ढलती हुई प्रतीत होती है। लोक-प्रचलित साँचे-जैसे, 'बस हम दीवानों की टोली, 'दरवाज़ों पर आवाज़ लगाने हम आए' 'खुले खजाने' 'जीवन का सौदा खत्म करें' और 'मिल मुक्ति हमें जाए सस्ती।' आदि······

कविता के अन्त का पद कवि के इस जागरूक दृष्टिकोण का साक्षी है कि वह मधु-मादकता के अस्तित्व को जीवन में व्यापक नहीं मानता। वह तो उसे सपने-सा क्षणिक मानता है—"यह सपना भी बस दो पल है, उर की भावुकता का फल है।'

प्रसंगवश कहूँ कि 'मधुबाला' की प्रत्येक कविता का अन्तिम पद प्रायः प्रभाव-पूर्ण लगता है। वैसे तो बच्चन की अधिकाँश कविताओं के अन्तिम पद केन्द्रीय भाव-प्रभाव की दृष्टि से मार्के के उतरे हैं।

'पथ का गीत' मधुमार्ग पर चलने वाले पथिकों का गीत है। इसका कवि वह है जो 'जीवन-पथ की श्रांति मिटाता' है। जीवन की मधुशाला में यदि हलाहल भी होगा तो पीने वालों को अपने अस्तित्व पर इतना विश्वास है कि वे उसे भी पी लेंगे। अस्तित्व का यह बीज व्यक्तित्व का वृक्ष है जिसे मधुबाला के कवि ने जान लिया था और जो आगे परिपक्व रूप में 'मधुकलश तथा 'हलाहल' में अभिव्यक्ति पा सका है। इसकी विवेचना हम अलग से निबंध में करेंगे।

'सुराही, ऐन्द्रिक-सुखेषणा की प्रेरणा ही है। यह एषणा अनादि काल से आध्यात्मिकता के साथ छलना-सी बनकर छलती आ रही है। तमोगुण इसका दास है। रजोगुण इसका स्वामी है। सतोगुण इसका शिकार है। दूसरे शब्दों में मिट्टी की यह 'सुराही' आदमी की काया ही है। जिसमें जीवन की आकाँक्षा व अतृप्ति की

विविध रंगी झलक झलकाने वाली, झिलमिल-झिलमिल लौ जलली हैं। किन्तु कवि जानता है कि संसार इसकी क्षणभंगुरता की सूक्ष्म वेदना को नहीं समझता। वह केवल कविता में मधुपान' को प्रचार-मात्र ही मानता है। लेकिन कवि जीवन की वास्तविकता तो ये है—

तुमने समझा मधुपान किया
मैंने निज रक्त प्रदान किया
उर क्रंदन करता था मेरा
पर मुख से मैंने गान किया
मैंने पीड़ा को रूप दिया
जग समझा मैंने कविता की !

आलोच्य कविता में भाषा बोलचाल की है। प्रतीक रूप में सुराही का कथन जर्जर आदर्शों व आडम्बरों के प्रति विद्रोही व्यक्ति का तीखा स्वर है जिसे 'प्रलाप' कहना शायद अधिक संगत होगा।

इस प्रकार 'मधुबाला' की इन पहली पाँच कविताओं को पढ़कर लगता है कि कवि की इन्हें रचने की प्रेरणा के पीछे व्यक्ति का स्वच्छंदतावादी आवेश प्रधान है। यहाँ मध्यकालीन मिथ्या धर्माडम्बरों, नयी राजनीतिक विषम अवस्थाओं-स्थितियों-परिस्थितियों तथा जर्जर सामाजिक प्रतिबद्धताओं, रूढ़ियों, रीतियों, नीतियों के प्रति कवि विद्रोह भड़कना चाहता है। यहाँ आकुल, अधीर मन-बचन-कर्म का असंयम-असंतुलन मुखरित हो पड़ा है। और कुल मिलाकर यहाँ कवित्व के व्याज से राग-बुभुक्षित युवक पीढ़ी का अप्रबुद्ध मानसिक असंतोष और एक मुश्त गुबार कवि बच्चन ने व्यक्त किया है। कहना होगा कि मधुबाला की पहली पाँच कविताएँ भाषा और भावना के प्रभाविभिव्यंजन की दृष्टि से साधना जन्य नहीं लगतीं। कवि की अन्य मधु सम्बधी कविताओं की अपेक्षा ये कविताएँ निसंदेह सस्ती हैं।

मधुबाला की छठी कविता का शीर्षक "प्याला" है। इस कविता से कवि का कवित्व अपेक्षाकृत बल पकड़ता है। इधर की दस कविताओं में कविता संख्या ११ 'पाटल माल' और कविता संख्या १३ 'पाँच पुकार' जहाँ मधुसृजन-क्रम में सबसे दुर्बल कविताएँ लगती हैं वहाँ कविता संख्या आठ 'जीवन तरुवर', कविता संख्या बारह 'इस पार—उस पार' और कविता संख्या पन्द्रह 'आत्मपरिचय'—ये चार कविताएँ हिन्दी काव्य जगत की जगमगाती हुई मणियाँ हैं।

'प्याला' क्षणभंगुर जीवन का प्रतीक है। लेकिन यह तो मिट्टी का धर्म है कि जो भी उससे निर्मित है उसे अन्त में अपने में ही लयमान कर ले। इधर क्रूर काल का कठोर कर्म है विनाश करना। धर्म, अधर्म, पाप, पुण्य और मन्दिर-मस्जिद के झमेले से क्या बनता-बिगड़ता है ?—

मैं देख चुका जा मस्जिद में, झुक-झुक मोमिन पढ़ते नमाज।
पर अपनी इस मधुशाला में, पीता दीवानों का समाज।

वह पुण्य कृत्य, यह पाप कर्म,
कह भी दूँ, तो दूँ क्या सबूत !
कब कंचन मस्जिद पर बरसा ?
कब मदिरालय पर गिरी गाज ?
यह चिर अनादि से प्रश्न उठा,
मैं आज करूँगा क्या निर्णय ?
मिट्टी का तन, मस्ती का मन,
क्षण भर जीवन मेरा परिचय । (प्याला)

क्षण भंगुर जीवन में इन सब झमेलों में पड़ने की क्या आवश्यकता है ? जीवन जितना भी है, जैसा भी है सुख भोगने के लिए है—

आनन्द करो यह व्यंग भरी,
है किसी दग्ध उर की पुकार ! (प्याला)

इस प्रकार इस कविता का मूल स्वर निराशामय होते हुए भी जीवन के सुख-भोग के प्रति सीधा रागात्मक अभिव्यंजन लगता है । यहाँ कोई गम्भीर चिन्ता या सुकुमार कल्पना या उदात्त ध्वनि नहीं है । यहां तन की क्षणभंगुरता और मस्ती भरे मन की पारस्परिकता का सम्बन्ध हेतु 'प्याला' बहुत उपयुक्त और समर्थ प्रतीक लगता है । इस प्याले के सहज स्वरों में जीवन का उन्माद विषाद लुकता-छिपता प्रतीत होता है । और इस क्रम में पाठक कविता पढ़ते-पढ़ते विभोर रहता है ।

'हाला' शीर्षक कविता में 'हाला' जीवन में सुख की उद्धाम लालसा की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति कही जायगी । उद्दाम लालसा बाढ़ आई हुई नदी से कम भयंकर नहीं होती । उसकी शक्तिशाली ध्वनि इन पंक्तियों से स्पष्ट है—

उद्दाम तरंगों से अपनी,
मस्जिद-गिरिजाघर-देवालय ।
मैं तोड़ गिरा दूँगी पल में,
मानव के बंदीगृह निश्चय ।
जो कूल, किनारे, तट करते,
संकुचित मनुज के जीवन को ।
मैं काट सबों को डालूँगी,
किसका डर मुझको ? मैं निर्भय !
मैं ढहा-बहा दूँगी क्षण में,
पाखंडों के गुरू गढ़ दुर्जय !
उल्लास-चपल, उन्माद-तरल,
प्रतिपल पागल—मेरा परिचय ।

वस्तुतः जीवनानुराग के पक्ष में धार्मिक, नैतिक और सामाजिक पाखंडों के प्रति इतना अधिक विद्रोही स्वर मैं इस कविता में पहली बार पाता हूँ । अस्तित्ववाद

का बीज जैसे यहाँ प्रस्फुटित होता प्रतीत होता है—

लघुतम गुरुतम से संयोजित,
यह जान मुझे जीवन प्यारा।
परमाणु कँपा जब करता है,
हिल उठता नभ मंडल सारा।

इसी कविता में मुझे पहली बार, प्राकृतिक सौन्दर्य की हल्की-सी झलक मिलती है—देखें, पद संख्या ४, ५, ६,। और किसी बूढ़े आलोचक की खबर इन पंक्तियों के द्वारा क्या खूबी से ली गई है—

यह अपनी कागज़ की नावें
तट पर बाँधों, आगे न बढ़ो
ये तुम्हें डुबा देंगी गल कर
हे श्वेत केशधर कर्णधार !

'जीवन-तरुवर' शीर्षक कविता अस्तित्ववादी दृष्टिकोण से अत्यंत सशक्त और सुन्दर कविता है। यह जीवन का तरुवर स्वयं कवि के रचनारत जीवन का प्रतीक है। पहले पद में जीवन के सुन्दर अस्तित्व को बनाये रखने की स्पृहणीय व्यंजना है। दूसरे पद में 'शिव' अर्थात् कल्याणकारी कर्त्तव्य साधने की व्यंजना है। और अंतिम पद में हर प्रकार के संकट-संघर्ष में जीवन के अस्तित्व को अटल बनायें रखने और आत्म-विश्वास के आनन्द में लीन रहने की अनूठी व्यंजना है। कवि और व्यक्ति बच्चन के जीवन के रचनात्मक-पहलू का सहज आभास इस कविता में सत्यतः हुआ मिलता है। जीवन और व्यक्ति के अस्तित्व की रागात्मक ध्वनि इस पद में कभी क्षीण पड़ने वाली नहीं लगती—

विपदाओं की अंधवायु में
तने रहो, जीवन के तरुवर !
अपने सौरभ की मस्ती में
सने रहो, जीवन के तरुवर !

"प्यास" शीर्षक कविता में प्यास मानव की 'तृष्णा' का प्रतीक है। इस कविता में 'जीवन-तृष्णा' की व्यापक व्यंजना के लिये बादल, बिजली, सूरज, सर, निर्झर, सरिता, सागर आदि प्रकृति-रूपों का सहारा लिया गया है। प्रकृति चित्रण की दृष्टि से पद संख्या ४, ५, ७, ८, अच्छे लगते हैं। किंतु इनमें पँत, महादेवी, निराला और प्रसाद के प्रकृति-वर्णन जैसा सजीव सौन्दर्य देखने को नहीं मिलता। यहाँ वह सामान्य कोटि का ही कहा जायेगा। किंतु तृष्णा की व्यापकता सिद्ध करने के लिये उसमें और कुछ जोड़ने की गुंजाइश भी नहीं है। 'प्यास' शीर्षक कविता की मूल शक्ति लघुमानव की असीम तृष्णा और उसके अनन्त संघर्ष-प्रणय के भावों-अभावों में है—

जिस-जिस उर में दी प्यास गई
दी तृप्ति गई उस उस उर में

मानव को ही अभिषाप मिला
'पीकर भी दग्ध रहे छाती ।'

× × ×

मेरी तृष्णा तो मूर्तिमती
परिपूर्ण विश्व की आकांक्षा
मानव अशांति, मानव स्वप्नों
के गायन ही तो हूं गाता
गाऊंगा जब तक एक नहीं
होकर मिलते संघर्ष-प्रणय !

'बुलबुल' शीर्षक कविता में 'बुलबुल' व्यक्ति की अल्हड़ या स्वच्छंदतावादी रागात्मक अभिव्यक्ति का प्रतीक है। इस कविता में प्रकृति वर्णन (देखें, पद दो और छ०) और युग का यथार्थ वर्णन (देखें, पद चार और पाँच) बड़ा अनुकूल और प्रभाव-पूर्ण है। इस कविता में कवि की रागात्मक अभिव्यंजना के प्रति बहुत ऊँची आस्था व्यक्त हुई है—"सुरीले कंठों का अपमान, जगत में कर सकता है कौन ?"

इस बुलबुल के कंठ में क्रांति का राग भी है। इस राग से हमें प्यार भी होना स्वाभाविक है। क्योंकि—

हमें जग-जीवन से अनुराग
हमें जग-जीवन से विद्रोह
इसे क्या समझेंगे वे लोग
जिन्हें सीमा बंधन का मोह !'

इस जीवन के रागवाली बुलबुल की तन्मयता अखंड हैं। न वह निंदा से छीजती है, न प्रशंसा से फूलती है। बस, लीन होकर मुक्त गाते ही जाना उसका लक्ष्य है—

"करे कोई निंदा दिन रात
सुयश का पीटे कोई ढोल
किए कानों को अपने बंद
रही बुलबुल डालों पर बोल।"

पूरी कविता में भाव-तन्मयता है और शब्द-योजना चपल तथा सरस है।

'पाटलमाल' कविता इस क्रम की एक दुर्बल रचना है। इस कविता का छटा पद वस्तुतः जीवन का एक मार्मिक एवं भाव संकुल सत्य व्यक्त करता है—

"नयन में पा आँसू की बूंद
अधर के ऊपर पा मुस्कान
कहीं मत इसको हे संसार
दुखों का अभिनय लेना मान

नयन से नीरव जल की धार
ज्वलित उर का प्रायः उपहार

हँसी से ही होता है व्यक्त
कभी पीडित उर का उद्‌गार !

'इस पार—उस पार' शीषक कविता कवि की लोक प्रसिद्ध कविता है। 'मधुशाला' के उपरांत इस रचना ने प्रसिद्धि पाई। कितने जानते हैं कि इस लोकप्रिय कविता मे इसके कवि-जीवन का कितना आत्मपीडन चीत्कारता है। पूरी कविता मे इस पार के प्रति सिसकती हुई कितनी आसक्ति है और उस पार के लिये कितना गहरा सताप है। इस कविता मे क्षय ग्रस्त जीवन का विषाद, अपूर्ण सुख भोग के प्रति छटपटाहट, पूणभोग के लिये अदम्य लालसा, निर्मम काल, कठोर कर्म और कटु जगत के प्रति घोर चिंता व भय आदि सचारी भावो का ऐसा रेला है कि कविता हृदय को तीव्रता से मथती चली जाती है। छायावादी काव्य ने उस पार के आकषण के काल्पनिक उपकरणो से अपने आप को इतना उदात्त बना दिया था कि जग-जीवन के दुख-सुख का सहज स्वर यहाँ नही सुनाई पडता था। सम्भवत यह इसकी प्रतिक्रिया ही हो कि बच्चन ने 'इस पार-उस पार' शीषक इतनी लम्बी कविता रची जिसमे रूमानियत भी है, यथार्थ भी, किंतु दोनो एक दूसरे से पोषित। इस कविता मे कवि के जीवन की व्यथा कथा है। कवि ने अपनी मृत्यु का दश सहते-सहते सहसा उससे भी भयकर जीवन का एक दश पा लिया कि वह जी गया और जीवन सगिनी चल बसी, जिसके जीते रहने मे ही कवि के जीवन की साथकता थी। किंतु इस रचना मे स्थूल कथा गौण है व्यथा अत्यत मुखर और मार्मिक है। विशिष्टता यह है कि कविता का सम्पूण विषाद भी इतना मधुर लगता है कि पक्तियाँ आपसे आप मुखरित होती है। इस कविता को पढकर पहलीबार यह लगता है कि कवि बच्चन के हृदय मे काव्य-सृजन की आनुभूतिक क्षमता कम नही है।

'पाँच पुकार' रचना इस क्रम मे अधिक समर्थ रचना नही है। उसके अतिम पद मे "यमदूत द्वार पर आया ले चलने का परवाना" पक्ति ध्यान खीचती है। लगता है कही कुछ एकदम टूट गया है, छूट गया है। क्या यही पर मधु की मादकता समाप्त हुआ चाहती है ? क्या यही सुख-सपनो का आशियाना जड-जग-सत्य के क्रूर करो से उजड जाने को है ? तभी 'पगध्वनि' शीषक कविता पढने को मिलती है। 'मधु' का पिछला अभिव्यजन इस कविता मे गायब होता लगता है। यह 'पगध्वनि' बावरी मीरा के घुंघरू बधे पैरो से प्रसूत ज्ञात होती है। कवि इसे सुनना चाहता है। उसमे कुछ शातिदायक है, कुछ तापहारी है, और कुछ जीवन का नया सन्देश भी है—

"हो शात जगत के कोलाहल !
रुक जा री जीवन की हलचल !
मैं दूर पड़ा सुन लूं दो पल
यह चाल किसी की मस्तानी।

अतत कवि समझ गया कि उसका रहस्य तो उसके अपने अतर मे ही है, बाहर तो कुछ भी नही है। यह तो एक मनोवैज्ञानिक, अभाव जनित प्रतिक्रिया ही थी जो

उसे पगध्वनि का अहसास बाहर हो रहा था—

उर के ही मधुर अभाव चरण
बन करते स्मृति-पट पर नर्तन
मैं ही इन चरणों में नूपुर
नूपुर ध्वनि मेरी ही वाणी !

यह कविता भावों की त्वरा, सुसंम्बद्धता, कल्पना, कोमलकांत पदावली और गेयता के गुणों के शुद्ध समन्वय के सौन्दर्य से मंडित है। इसमें कहीं गाँठ नहीं लगती। इसमें प्रसन्न वाग्धारा का वह मनोरम भाव-प्रवाह है जो उच्च कोटि की कुछ ही गेय-प्रधान कविताओं में पाया जाता है। देखिये:—

उन मृदु चरणों का चुम्बन कर
ऊसर भी हो उठता उर्वर
तृण-कलि-कुसुमों से जाता भर
× × ×
उन चरणों की मंजुल उँगली
पर नख-नक्षत्रों की अवली
जीवन के पथ की ज्योति भली
जिसका अवलम्बन कर जग ने
सुख-सुखमा की नगरी जानी
× × ×
उन पद-पद्मों के प्रभ रजकण
का अंजित कर मंत्रित अंजन
खुलते कवि के चिर अंध नयन
× × ×
उन सुन्दर चरणों का अर्चन
करते आँसू से सिंधु नयन
पद-रेखा में उच्छ्वास पवन !

इतनी मुक्त-मनोरम कल्पना और जीवन के राग-रस से युक्त कविता मुझे खड़ी-बोली काव्य में दूसरी पढ़ने को नहीं मिली। मध्यकालीन कवियों (विशेषत: जायसी) में इस तरह की इमेजरी खूब पाई जाती है।

'मधुबाला' की अंतिम १५वीं कविता 'आत्म परिचय' शीर्षक से है। इसमें कवि ने अपने काव्य-सृजन के सूक्ष्म हेतुओं का संकेत दिया है। जीवन के अभाव ही जैसे उसके काव्य के माध्यम से मूर्त हुए हैं। अपूर्ण संसार से मुक्ति पाने के लिये वह सपनों का स्वरचित संसार लिये फिरता है। लेकिन उसे फिर भी शांति नहीं। क्योंकि सत्य कठोर होता है। सपने बहुत कोमल होते हैं। कठोर सत्य से टकरा कर जब वे काँच-से टूट जाते हैं तो वह रोता है, फूट पड़ता है। इसी को लोग गाना या छंद बनाना

कहते हैं—

"मैं रोया, इसको तुम कहते हो गाना
मैं फूट पड़ा तुम कहते छंद बनाना
क्यों कवि कहकर संसार मुझे अपनाए
मैं दुनिया का हूं एक नया दीवाना।"

स्पष्ट है कि अपने 'आत्म परिचय' में कवि ने अपने वास्तविक जीवन को महत्ता दी है जिसका अभिव्यंजन उसके काव्य का प्राण है।

यह विचार मुझे महत्वपूर्ण लगता है कि मनुष्य अपनी रचनात्मक और विघटक आवश्यकताओं के अनुसार ही जीवन जी पाता है। 'व्यक्ति के मनोविज्ञान' ग्रंथ में व्यक्त 'इग्नोनोकायला' के इस विचाराप्रकाश में यदि 'मधुबाला' के कवित्व की प्रतिक्रिया को समझा जाये तो सूक्ष्मतः बच्चन के रचनात्मक और विघटक जीवन का—कवि जीवन का—उसके साथ अन्योन्याश्रित सम्बन्ध ध्वनित हुआ लगता है। 'मधुबाला', काव्य-वैशिष्ट्य की दृष्टि से मुझे कोई विशिष्ट कृति तो नहीं लगी लेकिन उसके प्रतीक दबे-घुटे, विद्रोही स्वच्छंदतावादी व्यक्तियों के स्वरों का मुखरण करते जान पड़ते हैं। 'मधुशाला' जिस समय प्रकट हुई उस समय देश की आज़ादी के लिये अहिंसात्मक आदर्शोन्मुख संघर्ष के स्फुट परिणामों से कोई आशा नहीं झलक रही थी। अतः भावुक जनमन में विषाद और विद्रोह के साँप कुडली मारे फन फैलाए बैठे थे। 'अज्ञेय' का 'शेखर' इसी अवधि का है जिसकी विद्रोही व्यक्ति-निष्ठा-भावना और लालसा इस प्रसंग में मुझे रह-रह कर याद आती है। बच्चन के कवि ने तब मानसिक मुक्ति पाने के लिये 'मधु' के स्वरों का का सहारा लिया। परिवारिक और व्यक्तिगत विषम परिस्थितियों ने उसे कुछ और तीव्रता प्रदान की। 'मधुशाला' में यह अभिव्यंजन जहाँ अधिक रचनात्मक है, 'मधुबाला' में ऐसा नहीं है। 'कलकल छलछल' करती मधु-सरिता का मन्थर-मन्थर प्रवाह जैसा कि मधुशाला में लगता है वैसा यहाँ नहीं है, बल्कि यह अभिव्यंजन कर्दमयुक्त, भीषण बहाव जैसा है।

'मधुबाला' के भावों का क्षेत्र व्यापक नहीं है। वहाँ की सारी फसल जैविक तत्वों की है और वह भी अधिक स्वस्थ्य नहीं कही जा सकती।

'मधुबाला' की भाषा बहुत अल्हड़ है। अतः वहाँ जो भी स्वर है वह साफ़ है, सुलझा हुआ है। उसकी लपेट में जहाँ भी जीवन का कोई मार्मिक सत्य आ गया है वह मर्मस्पर्शी हो गया है। उत्तरार्ध की कविताओं में प्रकृति-चित्रण भी भावानुकूल बन पड़ा है। गीतों में आनुभूतिक व्यंजना-शक्ति कितनी प्रभावपूर्ण बन पड़ी है इसके लिये 'इस पार उस पार' और 'पगध्वनि' रचनाएँ अपना प्रतिद्वंदी नहीं रखती। मुझे तो ये दोनों कविताएँ, रागात्मक दृष्टि से, बच्चन की कुछ श्रेष्ठतम रचनाओं की कोटि में रखी जाने वाली ही नहीं वरन खड़ी बोली की कुछ ही श्रेष्ठतम रचनाओं की कोटि में रखी जाने वाली लगती हैं।

और कुल मिलाकर मैं 'मधुबाला' को एक 'द्वंद्वज काव्य-कृति' मानता हूं।

मधुकलश

'मधुकलश' का मूल स्वर लघुमानव-मुखरित अस्तित्ववादी अभिव्यंजना का स्वर है। 'मधु' का इस कृति में विशेष वर्णन केवल 'मधुकलश, नाम की पहली रचना में ही हुआ है। स्वयं मधुकलश के सातवें संस्करण में बच्चन ने कहा है—'मधुकलश' नाम को सार्थक करने वाली तो शायद सिर्फ पहली कविता है—है आज भरा जीवन मुझ में, है आज भरी मेरी गागर—इसका उचित स्थान सम्भवतः मधुबाला के साथ होता......।'

मेरी राय में यह बिल्कुल सच है। 'मधुकलश' बच्चन के मधुवादी काव्य सृजन-क्रम से एक तगड़ी छलांग लगाकर अलग हो गया है। उसका महत्व व्यक्ति के स्वच्छंद अस्तित्व की अभिव्यंजना में निहित है। 'हलाहल' में भी ऐसा है। अतः मधुकलश और हलाहल कृतियों का साथ-साथ समीक्षण समीचीन हो सकता है।

'मधुकलश' कविता वस्तुतः 'मधुबाला' की विशुद्ध मधु सम्बन्धी कविताओं की अपेक्षा अधिक कलात्मक, संगीतात्मक और नैसर्गिक तत्वों से निर्मित है। इस कविता में, जीवन में मधु का भाव कवित्व का रस बनकर निःसृत होता हुआ प्रतीत होता है। प्रत्येक पद-शब्द में जीवन के रस व उल्लास का रागमय मुखरण प्रकृति के सुकुमार वातावरण में उसी से अभिप्रेरित होकर हुआ लगता है—

'सर में जीवन है उससे ही
वह लहराता रहता प्रतिपल
सरिता में जीवन इससे ही
वह गाती जाती है कलकल

निर्झर में जीवन इससे ही
वह झर झर झरता रहता है

जीवन ही देता रहता है
नद को द्रुत गति, नद को हलचल

लहरें उठतीं, लहरें गिरतीं
लहरें बढ़तीं, लहरें हटतीं
जीवन से चंचल हैं लहरें
जीवन से अस्थिर है सागर !

इस कविता में भरा हुआ जीवन-मधु चेतना के मधुमय और रागमय उल्लास का ही प्रतीक है। प्रकृति, जीवन और उल्लास के वातावरण में हिरनी-सी कुदकती अनुभूति इसकविता को एक अभिनव आकर्षण प्रदान करती है। कवि समझ चुका है कि जीवन में हर कर्म का सूत्र काल-क्षण के हाथ में आकर बदल जाता है। अतः—

जीवन में दोनों आते हैं
मिट्टी के पल, सोने के क्षण,

जीवन से दोनों जाते हैं
पाने के पल खोने से क्षण,
हम जिस क्षण में जो करते हैं
हम बाध्य वही हैं करने को
हँसने के क्षण पाकर हँसते
रोते हैं पा रोने के क्षण!
बिस्मृति की आई हैं बेला
कर पांथ, न इसकी अवहेला
आ, भूलें हास-रुदन दोनों
मधुमय होकर दो-चार पहर!

कल्पना, सुरा और सपनों के संसार के वास्तविक अर्थ को समझकर कवि जीवन की विवशता और कटुता को भूलने के लिये आज (तब का) जो कुछ कह रहा है उसके कटु सत्य से कौन इन्कार करने का साहस करेगा? अनुभूति प्रवण सहृदय पाठक के लिये आलोच्य कविता के उल्लास के पीछे लगे जीवन के अवसाद को पहचानना कठिन न होगा। इस कवि की सरस, सहज तथा राग संकुल पदावली पूर्व-सृजन की अपेक्षा कुछ विशेष और विकासवान लगती है।

अंततः संक्षेप और सार रूप में कहें कि 'मधुशाला' में गीत नहीं हैं, रूबाइयाँ हैं। पर इन रुबाइयों में ध्वनियों तथा प्रतिविम्बनाओं का आकर्षण विशेष है। शिल्प-विधान की दृष्टि से यद्यपि यहाँ ध्रुव-अंतरादि अर्थात संगीत तत्वों का निर्वाह नहीं है तदपि इनमें गेयत्व प्रधान है। प्रत्येक रुबाई में एक अनूठी स्वर-लय संगति तथा झंकृति है। यहां गीत की आत्मपरकता तथा अनुभूति का रागात्मक उन्मेष है। अतः टेकनीक की दृष्टि से यहाँ शुद्ध गीत-विधान न होकर भी उन्मुक्त राग प्रधान है। और इस दृष्टि से मधुशाला को श्रेष्ठ गीतात्मक काव्य की कोटि में रखा जाना ही उचित होगा।

'मधुबाला' में मादकता के गीत हैं। मधु-मादकता को यहां जिस ध्वनि-वैशिष्ट्य द्वारा (पढ़ें 'पाटल माल' गीत) झंकृत किया गया है वह अद्वितीय है। सम्भवतः बच्चन को इस नवीन गुण के कारण ही 'हालावाद' का प्रवर्त्तक कवि कह दिया गया। 'मधुबाला' के गीतो में कवि ने हाला, प्याला, मधुबाला, सुराही आदि का प्रतीकात्मक प्रयोग कर यौवन की मस्ती-हस्ती को पूरी शक्ति से मुखरित किया है। इन कुछ प्रतीकों में ही जीवन की रंगीनियों-रंगरेलियों का एक नया ही संसार गुंजायमान हो उठा है। बच्चन के सम्पूर्ण काव्य में ही क्या प्रत्युत खड़ी बोली के सम्पूर्ण गीत-काव्य में इस प्रकार के गीत पहले तथा बाद में नहीं रचे जा सके। इन गीतों के प्रतीकों के व्याज से कवि ने जीवन की क्षणभंगुरता तथा भोगेषणा का यथार्थ मूल्य एवं महत्व ध्वनित किया है। 'मधुबाला' के गीतों में एक आडम्बरी दुनियाँ का तिरस्कार ध्वनित कर कवि ने ऐहिक जग-जीवन की स्वाभाविक सुखेषणा को तीव्रता से वाणी प्रदान

की है। प्रकारांतर से यह तत्कालीन खोखले आत्मदर्शन तथा पोपले सामाजिक-राजनीतिक विधान का वैयक्तिक स्वर में कटु-विरोध तथा विद्रोह था। छायावादी चेतना-चिन्ता की काट में इस स्वर ने पैनी-पतली आरी का काम किया—

दूर स्थित स्वर्गों की छाया से विश्व गया है बहलाया।
हम क्यों उस पर विश्वास करें जब देख नहीं कोई आया।
अब तो इस पृथ्वी तल पर ही सुख-स्वर्ग बसाने हम आए। (मधुबाला)

निःसन्देह इस प्रकार के स्वर कवि की ख़ामख़यालो के कारण नहीं फूटे। इनके पीछे युग-जीवन की भयंकर हलचल की आंधी है—

मेरे पथ में आ आकर के तू पूछ रहा है बार-बार,
क्यों तू दुनिया के लोगों में करता है मदिरा का प्रचार?
मैं वाद-विवाद करूँ तुझसे अवकाश कहाँ इतना मुझको।
'आनन्द करो' यह व्यंग भरी है किसी दग्ध-उर की पुकार।
कुछ आग बुझाने को पीते ये भी, कर मत इस पर संशय।
मैं देख चुका जा मस्जिद में झुक-झुक मोमिन पढ़ते नमाज।
पर अपनी इस मधुशाला में पीता दीवानों का समाज।
वह पुण्य कृत्य, यह पाप कर्म कह भी दूँ, तो दूँ क्या सबूत।
कब कंचन मस्जिद पर बरसा, कब मंदिरालय पर गिरी गाज। (मधुबाला)

एक आदर्शवादी आलोचक कुछ भी कहे पर युग की भीतरी-बाहरी विषमताओं को कवित्वमय वाणी देने में बच्चन के 'मधुकाव्य' ने कमाल किया है। तत्कालीन युग-परिवेश में इन कविताओं का लोगों पर भयंकर प्रभाव पड़ा होगा, इसमें सन्देह नहीं किया जा सकता। पर इन गीतों में कवित्व का राग खंडित नहीं है। यही इनका स्थिर पक्ष है। **(इसके लिए 'इस पार...उस पार' 'प्याला' तथा 'पग ध्वनि' शीर्षक गीतों का भाव-शिल्प-सौन्दर्य दृष्टव्य है।)**

'मधुबाला' के गीत लम्बे हैं। पर आश्चर्य तो यह है कि इन लम्बे गीतों में भी भावान्विति, ध्रुव-अन्तरा-तुक-ताल तथा लयादि का अद्भुत समन्वय है। कहीं पर भावत्वरा एवं तीव्रता ढीली नहीं पड़ी है। अन्य किसी गीतकार कवि के लम्बे गीतों में इस प्रकार की भाव-शिल्प संगत एकसूत्रता व सुसंम्बद्धता सृजन के उच्च धरातल पर टिकी प्रतीत नहीं होती **(इसके लिये मधुबाला के 'पगध्वनि' तथा 'इस पार—उस पार' गीत विशेष रूप से पठनीय हैं।)**

'मधुबाला' के गीतों में जीवन-यौवन का उद्दाम स्वर है तथा युग-विषमताओं, सामाजिक मिथ्याडंम्बरों तथा अत्याचारों के प्रति व्यंग-बाण चलाए गए हैं—

मतवालों ने कब काम किए जग में रहकर जग के मन के
वह मादकता ही क्या जिसमें बाकी रह जाये जग का भय (प्यास)
कहीं दुर्जय देवों का कोप कहीं तूफ़ान कहीं भूचाल
कहीं पर प्रलयकारिणी बाढ़ कहीं पर सर्व भक्षिणी ज्वाल

कह ानव के अत्याचार, कहीं दीनों की दैन्य पुकार
कहीं दुश्चिताओं के भार दबा कन्द्रन करता ससार
करें आओ, मिल हम दो-चार जगत-कोलाहल में कल्लोल
दुखों से पागल होकर आज रही बुलबुल डालों पर बोल (बुलबुल)

इस एक ही अंश में जैसे युग का सारा वैषम्य ध्वनित हो उठा है।

उद्दाम तरंगों से अपनी मस्जिद-गिरिजाघर-देवालय
मैं तोड़ गिरा दूंगी पल में मानव के बंदीगृह निश्चय
जो कूल, किनारे, तट करते संकुचित मनुज के जीवन को
मैं काट सबों को डालूंगी किसका डर मुझको ? मैं निर्भय
मैं डहा बहा दूंगी क्षण में पाखंडों के गुरु गढ़ दुर्जय !...... (हाला)

इन रचनाओं का सृजन वस्तुतः बच्चन ने मानसिक सामाजिक 'रिस्क' उठाकर किया होगा। मुख्य बात यह है कि यहाँ जग-जीवन के प्रति निषेधात्मक दृष्टिकोण सत-ही है। मूलतः तो यहां सामाजिक जड़ नियमों-उपनियमों एवं पाखंड़ों के विरुद्ध विद्रोह व्यक्त है। बच्चन के मधु काव्य में ध्वनित इस दृष्टिकोण को समझे बिना उसकी शक्ति को समझना सम्भव नहीं है।

आदर्श और सिद्धान्तों के मायावी जाल से मुक्त होकर हिन्दी के आलोचक को जीवन के सम-विषम स्वरों को जब स्वतंत्रता से सुनने-समझने का अवकाश होगा तब शायद इस 'मधुकाव्य' का सही मूल्यांकन हो सकेगा। पर जनता आलोचकीय अथवा अखबारी मूल्यांकान से कम प्रभावित होती है। वह कृति पढ़ती है और अपनी रुचि-अरुचि बना लेती है। बच्चन के मधुकाव्य के प्रति जनता कभी उदासीन नहीं रही। शायद आज भी नहीं है। इसका प्रमाण है इन कृतियों के नये-नये संस्करणों का निरन्तर निकलते जाना।

बच्चन के गीतों का सौन्दर्य मांसल बिम्बों एवं सहज ध्वनियों में है। इस दृष्टि से उनके मधुकाव्य में एक सम्मोहन व्याप्त है।

मधुबाला के गीतों का विषय सीमित होते हुए भी यहाँ जीवन की पिपासा का राग प्रबल है तथा जीवन की क्षणभंगुरता को ध्वनित करते हुए भी वीत राग अपने पाँव नहीं पसार सका है। मधुबाला के गीतों में मन की मादकता ही जैसे सामाजिक वर्जनाओं एवं विषमताओं को अगूँठा दिखती हुई गाती है, रिझाती है—

जिन्हें जग-जीवन से संतोष उन्हें क्यों भाए इसका गान ?
जिन्हें जग-जीवन से वैराग्य उन्हें क्यों भाए इसकी तान
हमें जग-जीवन से अनुराग हमें जग-जीवन से विद्रोह !
इसे क्या समझेंगे वे लोग, जिन्हें सीमा-बंधन से मोह
करे कोई निंदा दिन-रात सुयश का पीटे कोई ढोल
किए कानों को अपने बंद रही बुलबुल डालों पर बोल (बुलबुल)

मादकता के इस राग के कारण ही मधुबाला के गीतों की ताल-लय का विधान आकर्षक तथा अनूठा है। और इसकी पुष्टि में कोई भी गीत पढ़ा जा सकता है।

मधुबाला की भाँति मधुकलश में भी लम्बे गीत हैं। ये केवल १२ हैं। मधुबाला के गीतों का जैसा शिल्पविधान इन गीतों का भी है। किन्तु विषय की दृष्टि से मधुकलश के गीतों में मुख्यत: तन्मयता की ताल तथा स्वर लहरी का तार झंकृत होता प्रतीत होता है। मधुकलश के गीत पढ़ते हुए लगता है कि सहसा एक सपनिल समा बदला गया है, कि समाज ने एक सुखी दिल का झंकृत तार एक झटके से खंडित कर दिया है, कि अब उस साज़ से चिंगारियां फूट निकली हैं। यों 'मधुकलश' सामाजिक परिवेश में व्यक्ति के अस्तित्व का तीखा भाव-बोध कराता है। 'मधुकलश' के गीतों में व्यक्ति की मस्ती का नहीं प्रत्युत उसको कभी न मिटने वाली हस्ती तथा उसके हौसले का नाद है। मधुकलश अस्तित्व वादी दर्शन का गीतमय रूपांतर है। उसके गीतों में गज़ब की गति है। यहाँ कहीं पर भी भाव-राग की गाँठ नहीं पड़ी है। कवि प्रत्येक मानसिक घात-प्रतिघात को द्रुतता, एकतानता एवं तन्मयता के साथ ध्वनित करता जाता है। व्यक्ति के निषेधात्मक भाव-बोध को जितनी शक्ति के साथ मधुकलश में व्यक्त किया गया है, उसका अन्यत्र जवाब नहीं है।

मधुकलश के गीतों में प्रतीक-रूपकादि का भावसंगत विशिष्ट प्रयोग हुआ है। सभी गीतों में सजीव चित्रों की सृष्टि मानसिक पटल पर सहज ही अंकित होती जाती है। मधुकलश में उस पार वाली दूर की कल्पना के पास जाकर, उसे देखकर उसका पर्दाफ़ाश करने का इरादा ध्वनित किया गया है तथा मानसिक घात-प्रतिघातों को रूपायित किया गया है—

आज अपने स्वप्न को मैं सच बनाना चाहता हूँ।
दूर की इस कल्पना के पास जाना चाहता हूँ।
कुछ विभा उस पार की उस पार लाना चाहता हूँ।
(मधुकलश: लहरों का निमंत्रण)

मधुकलश के गीत लम्बे होकर भी भाव तथा शिल्प के समन्वय की दृष्टि से कहीं कमजोर नहीं लगते। ध्रुव-लय-तुक-ताल की प्रत्येक चरण में नाटकीय भूमिका और भंगिमा गीतांत तक बनी रहती है। यहाँ कहीं सृजन का स्खलन हुआ नहीं प्रतीत होता। प्रत्येक गीत के ध्रुव के साथ आगे के कहीं से भी अंतरे उठाकर उन्हें बाखूबी साज़-संगीत के अनुकूल गाया जा सकता है तथा सस्वर पाठ भी किया जा सकता है। वस्तुत: बच्चन के लम्बे गीतों की यह अनूठी विशेषता होती है कि उनके चरण अपराश्रित होकर भी अपने ध्रुव-भाव केन्द्र से कहीं विशृंखलित नहीं होते। इन गीतों का प्रत्येक चरण ध्रुव-पद का सहोदर लगता है। ध्रुव के साथ अन्तरों की ऐसी रचनात्मक साँठ-गाँठ अन्य गीतकार कवियों के लम्बे गीतों में देखने को नहीं मिलती। इसके विरुद्ध अन्य गीतकार कवियों के कई गीतों की यही भयंकर दुर्बलता प्रतीत होती है। नेपाली, नरेन्द्र शर्मा तथा अंचल के अनेक गीत इसके उदाहरण हैं। आलोचकों ने मधुबाला-मधुकलश के गीतों की इस विशेषता पर ध्यान नहीं दिया जब कि मेरे विचार में इन कृतियों का इसी विशेषता के कारण खड़ी बोली के गीत-काव्य में अद्वितीय स्थान है।

संक्षेप में, विषय की दृष्टि से आदर्शवादी आलोचक इन गीतों पर कई प्रकार के आरोप लगाता है। पर मधुबाला में ध्वनित मधु अथवा मादकता का सस्ता अर्थ न लगाया जाकर, प्रतीकार्थ लेने से जीवन की तत्वगत सुखोन्मुखी चिन्ता का प्रभावपूर्ण अभिव्यंजन प्रतीत होता है। ऐन्द्रिक सुखभोग जीवन का प्रबल यथार्थ है, उसी तरह जिस तरह दुख-भोग। निश्चय ही मधुबाला में 'सुख' की कोई महान चिन्तापरक अभिव्यक्ति नहीं हुई है। किन्तु यहाँ वह जिस प्रकार से ध्वनित हुआ है, कवित्व तथा जीवन के दृष्टिकोण से सुन्दर है।

और मधुकलश का 'व्यक्तिवाद' निश्चय ही व्यक्ति के अस्तित्ववादी दर्शन का शक्तिशाली राग बनकर मुखरित हुआ है। सामाजिक मर्यादा के आतंक से आतंकित हो उसे तुच्छ बतलाकर वस्तुतः हम अपनी आत्महीनता की ग्रंथि के आप ही शिकार होने का अपराध करते हैं।

सारतः मधुबाला एवं मधुकलश के गीत व्यक्ति-जीवन की साहसिकता, महत्वाकांक्षा तथा दुर्दमनीय सुखेषणा का उन्मुक्त राग मुखरित करते हैं। इस राग के पीछे आधुनिक अभावग्रस्त व्यक्ति की मानसिक हलचलें ध्वनित होती हैं। कवि ने उसका संकेत दे दिया है—

राग के पीछे छिपा चीत्कार कह देगा किसी दिन।
हैं लिखे मधुगीत मैंने हो खड़े जीवन समर में।

(मधुकलश: 'पथभ्रष्ट' कविता)

यों बच्चन के सम्पूर्ण काव्य में रागमय अभिव्यक्ति होती रही है। सूक्ष्मतः बच्चन का काव्य जग-जीवन के अभाव, तथा उन्माद-अवसाद के भावों का ही द्योतक रहा है जिसके कारण वह रूमानी न रहकर जीता-जागता (हाड़ मांस का—पंत जी ने कहा है) प्रतीत होता है। कवि के मधुवादी काव्य के प्रति मध्यवर्गीय पीढ़ी का इसलिये सहज आकर्षक बना रहा है क्योंकि उसके हृदय में वर्जनाओं से विद्रोह करने की छटपटाहट रही और उसे वैसा न करने देने के लिये विवशता की अनेक कठोर शृंखलाएँ भी जकड़े रही हैं। यह पीढ़ी भ्रांति की लीक पर चलने और अंध विश्वासों पर जीने के विरुद्ध विद्रोह करती है। उत्तर-अस्तित्ववादी युग में समाजी जीवन के नैतिक पहलू की दृष्टि से रूढ़ निषेध बद्धमूल था। बच्चन का मधुकाव्य उस निषेध पर मुँह बिरा-बिरा कर व्यंग कसता जान पड़ता है। विशुद्ध अधुनातन रूप में कहूं तो बच्चन का मधु काव्य आहत पीढ़ी (बीट जैनरेशन) का काव्य है। भले ही आंशिक रूप में यह सत्य हो। मैं आहत पीढ़ी के विचार-दर्शन की व्याख्या यहाँ ज़रूरी नहीं समझता। सुधी पाठक उसे समझते हैं।

मेरे विचार से 'मधुकलश' में आकर वही नारज-युवकों (एंग्री यंगमैन) का काव्य हो जाता है—वही, आंशिक सत्य रूप में। लेकिन आश्चर्य जनक बात यह है कि आज से तीन दशक पहले ही बच्चन के कवि ने इस प्रकार का काव्य रच डाला था।

और एक वाक्य में कहूँ तो बच्चन का मधुकाव्य व्यक्ति की वुभुक्षा का काव्य है; तितिक्षा का क़तई नहीं।

प्रतीक रूप में हाला का प्रयोग

प्रतीक रूप में हाला का प्रयोग

हाला अर्थात् मदिरा का वर्णन हर देश और काल के काव्य में किसी न किसी रूप तथा मात्रा में होता आया है। हाँ भारतीय प्राचीन काव्य में, विशेषतः धर्म प्रधान काव्य में, वह एक सीमा तक ही हुआ है। इस प्रकार विश्वकाव्य में हालावादी काव्य का अपना पृथक महत्व एवं आनन्द है। इस सबमें विशेष महत्वपूर्ण बात यह है कि काव्य में 'हाला' का प्रयोग प्रतीक रूप में हुआ है । हाला नामधारी द्रव से मूलतः उसका सम्बन्ध नहीं है। निश्चय ही काव्य में हाला का प्रयोग किसी प्रचारात्मक दृष्टि से किया गया सोचना-समझना गलत है। प्रतीक रूप में हाला के प्रयोग का प्रयोजन काव्यानन्द का द्योतक है। जग-जीवन की आध्यात्मिक और भौतिक भावनाओं को जीवंत रूप में प्रकट करने के लिये काव्य में हाला का प्रतीक अत्यंत सशक्त तथा जनमन को प्रभावित करने वाला सिद्ध हुआ, इसमें दो मत नहीं हो सकते।

× × ×

प्राचीन हिन्दी गीत-काव्य में हाला अर्थात् मदिरा का प्रतीक रूप में प्रथम प्राणवंत प्रयोग कबीर ने आध्यात्मिक व रहस्यात्मक रूप में किया है। अन्य संत कवियों ने भी 'हाला' का प्रयोग किया है। मीरा के गीत-काव्य में हाला का प्रयोग 'प्रेम' की मुग्धावस्था के प्रकाशन की दृष्टि से हुआ है। मध्यकालीन वैष्णव कवियों ने हाला का प्रतीक गृहण नहीं किया। आगे रीतिकालीन कवियों के काव्य में इतस्ततः 'हाला' का ज़िक्र आया है, किन्तु वह साधारण कोटि का है।

खड़ी बोली काव्य में 'हाला' का प्रतीक एकदम उभर कर आता है। द्विवेदी काव्य के उत्तरचरण में हाला विषयक अनेक कविताएं कवियों ने उत्साह के साथ रची हैं। इस काल के सर्वाधिक सशक्त महाकवि मैथिलीशरण गुप्त ने खैयाम की रुबाइयों का अनुवाद प्रस्तुत किया। छायावादी कवि श्री सुमित्रानन्दन पंत ने भी 'मधुज्वाल' लिखी जिसमें खैयाम की रुबाईयों का गीत-रूपान्तर किया गया है। गीत-सृजन की दृष्टि से इससे भी महत्वपूर्ण मौलिक सृजन छायावादी कवियों, जयशंकर प्रसाद, माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा नवीन और आगे भगवतीचरण वर्मा का है। प्रसाद जी ने 'हाला' विषयक गीतमय उद्‌गार व्यक्त किए हैं। माखनलाल चतुर्वेदी ने भी अनेक स्थलों पर 'हाला' को प्रतीक रूप में ग्रहण किया है। नवीन जी तथा भगवती-चरण वर्मा तो हालावादी प्रतीकात्मक अभिव्यंजना के उन्मुक्त गायक हैं। इधर महादेवी वर्मा ने छायावादी काव्य के अन्तिम चरण और उत्तर छायावादी काव्य के आरम्भिक चरण के संधिस्थल पर ठहरकर 'हाला' के प्रतीक को उदात्त शृंगारिकता-रहस्यात्मक्ता

प्रदान की। उसमें सूफ़ियानापन एवं श्रृंगारिक भावना का अनूठा समन्वय प्रतीत होता है। निराला ने भी 'हाला' प्रतीक का प्रयोग उन्मुक्त श्रृंगार भावना को व्यक्त करने के लिए किया है। इस प्रकार पूर्व छायावादी और छायावादी कवियों ने प्रतीक रूप में हाला का प्रयोग किया है। सूक्ष्म दृष्टि से देखें तो पता चलता है कि यहाँ तक 'हाला का प्रतीक-प्रयोग अधिकतर कवि की श्रृंगारिक रुचि-रस की प्रभावपूर्ण अभिव्यक्ति करने के प्रयोजन से हुआ है। उसकी दो भंगिमाएं हैं—१. रहस्यात्मक २. भौतिक। इन दोनों भंगिमाओं की प्रधान प्रतिक्रिया प्रतीत होती है जग-जीवन के परिवेश और परिप्रेक्ष्य में मन की उन्मुक्त श्रृंगारिक प्रवृत्ति के प्रकाशन में, सामाजिक वर्जनाओं, विकलताओं, और अभावों से छुटकारा पाकर व्यक्ति के एकान्त विलास-व्यापार की भोगवादी भावनाओं की ध्वनि में, जीवन की क्षण-भंगुरता के ऊपर क्षणिक आनन्द की पुकार, चीत्कार की अभिव्यक्ति में। 'हाला' के प्रतीक ने मनुष्य की रागात्मक अनुभूति को विविध रूपों, ध्वनियों तथा विम्बों में व्यक्त होने का विशेष अवकाश प्रदान किया। पर छायावादी काव्य चूंकि प्रकृति के वायवी व्यापार का रंगीन बैलूनी प्रतीक-सा बनकर रह गया, अतः उसमें 'हाला' की ध्वनि को पैर पसारने का पर्याप्त अवकाश नहीं मिल रहा था। पर जैसा कि हमने ऊपर लिखा है, एक भूमिका तैयार हो चुकी थी। मेरी मान्यता है कि 'हाला' का प्रतीक प्रयोग खड़ी बोली काव्य में प्रारम्भ से ही जन्म पा चुका था। उत्तरछायावादी कवियों ने इसका जी भर कर पोषण किया, उसे पुष्ट बना दिया। उसके यौवन का मादक स्वर छायावाद के उत्तरार्ध के कवियों में सर्वाधिक समर्थ गीतकार कवि बच्चन ने मुखरित किया। उनके प्रतिनिधित्व में इस स्वर की संगति उनके समकालीन अन्य कई समर्थ कवियों ने की है। पर बच्चन के साथ ही पद्मकांत मालवीय ने भी हालावादी महत्वपूर्ण गीतों की सर्जना की। उनके गीत संकलनों में[1] छायावादी गीत-शिल्प से किनारा कसने की प्रवृत्ति तो लक्षित होती ही है साथ ही 'प्रकृति' के स्थान पर 'हाला' का ध्वन्यात्मक प्रयोग करके उन्होंने प्रेम तथा श्रृंगार को सहज राग के अधिक अनुकूल बना दिया। मेरा मत है कि बच्चन के हालावादी गीत-स्वरों के साथ मालवीय जी के स्वरों की क्षमता को भी परखा जाना चाहिये।

× × ×

प्रतीक रूप में हाला का मुख्यतः प्रयोग व्यक्ति की भोगवादी प्रवृत्ति के परिणाम स्वरूप हुआ है। हाला से सम्बन्धित अन्य उपकरणों, प्याला, मधुशाला और और मधुबाला, का भी प्रतीक रूप में ही प्रयोग हुआ है। व्यक्ति की उन्मुक्त भोग-वादी प्रवृत्ति और जग-समाज-धर्म की मिथ्या मर्यादाओं के बीच हुई टक्कर की और उससे उत्पन्न व्यक्ति की क्षणिक आशा-निराशा की, मानसिक प्रतिक्रियाओं की,

---

१. प्याला, प्रेमपत्र, आत्मवेदना, आत्म-विस्मृति, त्रिवेणी।
हिन्दी साहित्य कोष, भाग २, पृ० २९८

अदम्य पिपासाओं की, क्षण भर, कण भर की जैवी तृप्ति की इन गीतों में तीखी ध्वनि सुनाई पड़ती है। इस हालावादी अभिव्यंजना में खैयाम की रुबाइयों में ध्वनित वेदना का स्वर भी गूंजता प्रतीत होता है। पर मूल बात यह है कि यहाँ व्यक्ति के भोगवादी भाव की पूर्ति के लिए संघर्ष का उन्मुक्त स्वर भी ध्वनित होता गया है। खैयाम की बूढ़ी मधु-पिपासा यहाँ जवान प्रतीत होती है। अभिव्यक्ति का यही मौलिक अन्तर इस गीतकाव्य को एक नई रूमानियत प्रदान करता है और उसे दार्शनिक चिंता से मुक्त कर काव्य-रस के नवीन उल्लास से अनुप्राणित करता जान पड़ता है। यह तो ठीक है कि आलोच्य गीत काव्य में प्रयुक्त हाला का प्रतीक जग-जीवन की किसी उदात्त चिन्ता का प्रकाशन नहीं करता किन्तु उसमें यौवनोचित एक मुक्त मुध-ध्वनि का विस्फोट है जिसकी लपेट से यौवन का स्वर रिक्त भी नहीं रहा सकता। इस परिप्रेक्ष्य में 'हाला' का प्रतीक आलोच्य गीत-कव्य को एक विशेष वर्ग के लिए सदा प्रिय बने रहने की अपूर्व क्षमता और अमोघ आकषर्ण प्रदान कर गया है।

× × ×

मोटे तौर पर सामयिकता तथा मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रिया के परिवेश में हाला का प्रतीक रूप में प्रयोग इस गीतकाव्य में निम्नलिखित रूपों में प्रतीत होता है—

१. जग-जीवन की क्षणभंगुरता के प्रतीक रूप में।

२. यौवन की मस्ती व हस्ती के प्रतीक रूप में।

३. सामाजिक, धार्मिक, व राजनैतिक वर्जनाओं, पाखंडों एवं हलचलों का अतिक्रमण कर एकान्त तन्मयता तथा मानसिक प्रताड़ना के प्रतीक रूप में।

उक्त रूपों में हालावादी गीत-काव्य का सृजन हुआ है। आध्यात्मिकता अथवा उस पार की उपेक्षा का संकेत उसका प्रधान लक्षण है। 'हाला' का प्रतीक अपने तात्विक अर्थ में भौतिकवादी है। पर वहाँ उर्दू-फारसी काव्य की नियतिवादी चिंता का समावेश बना रहा है। जग-जीवन की क्षणभंगुरता के प्रतीक रूप में जिस 'हाला' की यहाँ अभिव्यक्ति की गई वह भले ही 'ब्रह्म सत्यं' की ओर इंगित न करे किन्तु अपने दार्शनिक अर्थ में वह प्रायः 'जग्नमिथ्या' के सत्य की ओर इशारा करती है। जीवन के प्याले में मस्ती की मदिरा पीने-पिलाने के घिसे-पिटे दर्शनाभास के साथ ही यहां जीव की भौतिक पिपासा का राग अत्यन्त तीव्रता से मुखरित हो उठा है।

इस काव्य में 'हाला' जीवन की क्षणभंगुरता के प्रतीक के रूप में जिस ढंग से ध्वनित की गई है वह किसी नवीनता की उपलब्धि तो नहीं मानी जा सकती किन्तु उसकी ध्वनि में यौवन के प्रणय-भोग और संघर्ष की प्रभावपूर्ण अभिव्यक्ति हुइ है। हाला, प्याला, मधुशाला, मधुबाला, साक़ी तथा रिन्द (पीने वाले) इन प्रतीक-पदों द्वारा खड़ी बोली का आलोच्य गीत काव्य जग-जीवन की क्षणभंगुरता के प्रति यद्यपि कोई नूतन स्वर न खोज सका, किन्तु इसके साथ ही उसके पीछे तत्कालीन यौवन-मन की निराशा का और उस निराशा की कटुता में जीने का, उसे भुलाने का तथा क्षण भर मस्त रखने वाला उन्मुक्त भाव-स्वर मुखरित होता गया है। नियतिवाद तथा निविढ़

निराशा के वातावरण और जग-जीवन की क्षणभंगुरता के भावों से ग्रस्त होते हुए भी हालावादी यह नवयुवक कवि-वर्ग अपने स्वरों में रूप-रंग-रस के स्वरों की झंकार देता है। यहाँ हम हाला, प्याला, मधुशाला, व साक़ीबाला के प्रतीकों की एक ऐसी स्वप्निल गीत-सृष्टि में प्रवेश करते हैं जहाँ जग-जीवन के मिथ्यातत्व का और जड़-सत्य का अहसास भी होता है और प्रयुक्त प्रतीकों के व्याज से एक भुलावे द्वारा जीव की अदम्य पिपासा का व प्रणय भावना का राग फिर-फिर गूँजता है, जिसके रस में फिर-फिर डूबने को मन करता है। अतः जग-जीवन की क्षणभंगुरता के प्रतीक रूप में भी हाला और उससे सम्बन्धित अन्य उपकरण जीवन के नकारात्मक अथवा वायवी पक्ष के समर्थन से दूर ही रहे हैं। अतः क्षणभंगुरता के प्रतीक रूप में 'हाला' का प्रयोग जीवन के क्षणिक आनन्दवादी भाव-रस की भूमिका बना देता है।

× × ×

यौवन की मस्ती, हस्ती और पस्ती के प्रतीक रूपों में हाला के प्रयोग अत्यन्त मनोरम और संशक्त बन पड़े हैं। मधुप्यास यहाँ यौवन के रूप-श्रृङ्गार की भगोवादी भावना को ध्वनित करती है। इस मदिरा के नशे में जग-जीवन की दुराशा, निराशा कटुता, असन्तोष और क्षोभ का अन्त होता प्रतीत होता है और उसके स्थान पर उल्लास का एक अनूठा संसार बसता हुआ प्रतीत होता है। यौवन की मस्ती का आयाम बढ़ते-बढ़ते जीवन की मस्ती बन जाता है और 'हाला', मधुशाला, मधुबाला का राग-रस विमुग्ध कर लेता है। यहाँ 'हाला' जीवन की अजीब पिपासा, अजीब उत्सुकता, वासना तथा रति-लिप्सा की प्रतीक-सृष्टि बनकर रसिक को विमुग्ध कर लेती है। 'हाला' से सम्बन्धित प्रत्येक उपकरण जड़ता में जैसे जीवन की अदम्य वासना की अभिव्यक्ति करने लगता है। इस नशे में भी 'हाला' की मस्ती और हस्ती सबके लिए न्यौछावर होती है—

> **"औरों के हित मेरी हस्ती औरों के हित मेरी मस्ती**
> **मैं पीती सिंचित करने को इन प्यासे प्यालों की बस्ती**
> **आनन्द उठाते ये, अपयश की भागी बनती मैं साकी।[1]**

और प्रतीक रूप में 'हाला' और उससे सम्बन्धित उपकरण (मधुबाला, मधुशाला, प्याला, सुराही और पीने वाले) सामाजिक धार्मिक, राजनैतिक विषम स्थितियों के सामयिक परिवेश के प्रति तीखी अभिव्यक्ति करते हैं। निश्चय ही आलोच्य हालावादी गीत-काव्य का यह स्वर सामयिक और मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रिया के परिवेश में अत्यन्त सशक्त सिद्ध होता है गो आलोचकों ने उसकी उपेक्षा की, उसे हेय भी कहा। यहाँ 'हाला' प्याला, मधुबाला और 'मधुशाला' के प्रतीक-उपकरण धार्मिक पाखंडों सामाजिक वर्जनाओं तथा साम्प्रदायिक भेदभावों पर आधारित तनावों पर तीखी चोट

१, मधुबाला 'सुराही' कविता: बच्चन।

करते जान पड़ते हैं। यहाँ व्यंग का सौन्दर्य निखर उठा है। यह ठीक है कि यहाँ प्राय: अनर्गलता है और असंगत व अपरिपक्व उद्गारों तथा भावावेशों का आतंक भी है, बचकानी बातें भी हैं पर जहाँ पूरी शक्ति और ईमानदारी से अभिव्यक्ति उतरी है वहाँ प्रभाव और प्रहार भी अचूक है। हाला विषयक प्रतीकों द्वारा प्रकृति के तत्व भी एकदम मांसल होकर भावना की ताल पर नाच उठते हैं। अस्तु:

× × ×

और कुल मिलाकर आलोच्य गीतकाव्य की हाला अपने प्रतीक रूप में सामान्य जनमन को एक बार तो अपने उल्लास-विषाद और मादकता की सृष्टि में बरबस खींचती है। पर यह भी सच है कि उसमें अधिक विरमे रहना सम्भव नहीं होता। कारण यह है कि वह जीवन की पूर्णता की ओर इंगित न कर केवल क्षणभंगुरता की फुलझरी-सी छुटाकर रह जाती है। कुछ इसी कारण हालावादी काव्य का सृजन व्यापक रूप में न हो सका। बच्चन ने इस दिशा में कुछ श्रेष्ठ रचनाएँ की हैं जो उनकी मधुशाला मधुबाला, और मधुकलश में संग्रहीत हैं। हाला और हाला से सम्बन्धित प्रतीकों की अभिव्यंजना की तात्विक विशेषता यह है कि यहाँ कुछ ऐसा है जो धर्मदर्शन अथवा वैराग्य भाव से ग्रस्त न होकर एकदम स्वस्थ्य है तथा जीवन के ऐन्द्रिक आह्लाद को ध्वनित करता है। मेरे विचार से हालावादी काव्य का पूर्ण विकास बच्चन के काव्य द्वारा होकर तदुपरान्त ह्रास की अवस्था को प्राप्त हो गया। यों फुटकल रूप में 'हाला' विषयक भाव-गीत उनके समकालीन अन्य कवियों ने भी लिखे हैं और अब भी लिखे जा रहे हैं। पर वे अधिकांश खोखले हैं।

प्रश्न-प्रत्रोत्तर

प्रश्न—१. आपकी जाति-कुल परम्परा का स्रोत क्या है ?

उत्तर—मेरा जन्म प्रयाग के एक कायस्थ परिवार में हुआ था। हम लोग वैसे अमोढ़ा के पांडे कहलाते हैं। अमोढ़ा बस्ती ज़िले में एक गाँव है। वहीं से हमारे पूर्वज जीविका की खोज करते हुए प्रयाग आए थे। कुछ और परिवार भी आए थे जो **प्रतापगढ़** में बस गए। हमारे सम्बन्ध उनसे अब तक बने हैं।

प्रश्न—२. आपका शुभ जन्म स्थान तथा तिथि सन् ?

उत्तर—मेरा जन्म प्रयाग में मुहल्ला चक्क में हुआ था। मेरे जन्म स्थान पर होकर जीरो रोड अब निकल गई है। जहाँ मेरी पढ़ने की बैठक थी वहीं पर बिजली का खम्भा है। मेरे पिता जी कहते थे—देखो जहाँ तुमने स्वाध्याय-साधना की थी उस पर प्रतिरात्रि प्रकाश होता है। उनके उस कथन में उस घर के प्रति मोह ही अधिक निहित है क्योंकि घर सड़क में आ जाने से वे बहुत दु:खी थे और सड़क बन जाने पर भी वे बता सकते थे कि मेरे घर के विभिन्न कोने रसोई पूजा के स्थान आदि कहाँ-कहाँ थे।

प्रश्न—३. आपके पिता जी और माता जी का शुभ नाम ? उनके स्वर्गवास का समय ? उस समय आपके परिवार में कौन-कौन लोग थे ?

उत्तर—मेरे पिता जी का नाम प्रताप नारायण था, शायद पहले नारायण ही नाम रखा गया था। स्कूल में नाम लिखाने गए थे तो मास्टर ने इस नाम को आधा बताया और पूरा नाम प्रतापनारायण धर दिया गया। पिताजी के बड़े-बूढ़े उन्हें नारायण ही कहते। मेरी माता का नाम 'सुरसती' था। यह है तो 'सरस्वती' का अपभ्रंश, पर मैं उन्हें 'सुरसती' ही मानता रहा हूँ। 'सुर' और 'सती' से मैंने कुछ मनोनुकूल अर्थ ले लिया है। 'आरती और अंगारे' की कविता में इसका संकेत है। मेरे पिता जी का देहावसान १९४१ में माता जी का १९४५ में हुआ।

शेष बातें फिर कभी !

बच्चन १५-२-६१।

प्रश्न—४. आपका स्व० श्यामा जी के साथ पाणिग्रहण संस्कार कब और किस अवस्था में हुआ ? अवस्था से मेरा आशय परिस्थितियों से है।

उत्तर—श्यामा जी से मेरा विवाह मई १९२६ में हुआ था। विवाह के समय मेरी अयस्था १८ वर्ष की और उसकी १४ वर्ष की थी। विवाह तो हमारे माता-पिता ने तै किया था, मैंने एक मित्र के कहने पर स्वीकृति दी थी। श्यामा के पिता **बाई के बाग** में रहते थे—वे हाई कोर्ट में अनुवादक के पद पर काम करते थे।

रहने वाले वे अनूपपुर के थे जो **सिराथू** तहसील में एक गाँव है। मैं एक बार अपनी सुसराल के गाँव भी गया था। पति के नाम लेने की तो शायद सारे हिन्दू समाज में प्रथा नहीं। मेरे परिवार में पत्नी का नाम लेने की भी प्रथा नहीं थी। मुझे अब तो याद नहीं कि कब कैसे हमने यह निर्णय किया कि मैं उसे **Joy** कहूँ और वह मुझे **Suffering** कहे। हम जब अकेले होते तो इसी नाम से एक दूसरे को सम्बोधित करते। मत्यु शैया पर वह मुझे उसी नाम से याद करती गई—शायद ही कोई और समझा हो कि वह क्या कह रही है। उसकी मत्यु **१६ नवम्बर** १९३६ को हुई। **वह कभी माँ नहीं बनी।**

प्रश्न—५. आपकी सबसे पहली लिखी कविता कौन सी और किस समय की **है**? क्या उस कविता के सृजन का कारण कविता-जगत की बाहरी स्थिति थी या आपने अपनी ही अन्त: प्रेरणा से उसे लिखा था ?

उत्तर—मैंने पहली कविता जिसे किसी अंश में कविता कह सकते हैं, १९२० में लिखी। एक अध्यापक के विदा-भिनन्दन में। उसकी चर्चा मैंने 'कवियों में सौम्य संत' में किसी निबन्ध में की है। वह कभी प्रकाशित नहीं की गई, केवल एक बार सुनाई गई थी; मुझे आश्चर्य हुआ कि बहुत वर्षों बाद मेरे सहपाठी को जो उस समय वकालत करता था, उसकी कुछ पंक्तियाँ याद थीं। उसकी पहली पंक्ति—

'दीन जनों के पास नहीं हैं,
मणि-मुक्ता के सुन्दर हार।"

अंतिम पंक्ति थी—

"इसीलिए हम इनमें अपना,
हृदय बाँध कर देते हैं—
इनमें—यानी फूल मालाओं में।
समाप्त करता हूँ।

बच्चन १७-२-६१।

प्रश्न ६—मेरे प्रथम प्रश्न के समाधान में आपने जो "वैसे अमोढ़ा के पाँडे" कहा **है**, इससे क्या यह समझना ठीक होगा कि आपका कायस्थ घराना होकर भी उसमें ब्राह्मण कुल की भाँति पूजा-पाठ आदि की परम्परा का अधिक परिपालन होता होगा-यानी कुल से कायस्थ पर कर्म से ब्राह्मण ! क्यों, क्या मेरा अनुमान कुछ ठीक है या नहीं ?

उत्तर—'अमोढ़ा के पाँडे' लोगों के सम्बन्ध में एक जनश्रुति हैं लम्बी-चौड़ी। **कभी मिलने पर बताऊँगा।** तुम्हें जानकर कुछ कौतूहल होगा कि राष्ट्रपति (स्वर्गीय राजेन्द्रप्रसाद जी) भी अमोढ़ा के पाँडे हैं—**इसकी चर्चा उन्होंने अपनी आत्मकथा में की है। मधुशाला के ११वें संस्करण का परिशिष्ट भी देखना।**

प्रश्न-७—मेरे दूसरे प्रश्न के अनुसार, क्या आपकी पुस्तकों में दिये 'लेखक परिचय' में दी गई आपके जन्म की तिथि व सन् सही है—२७ नवम्बर १९०७ ?

उत्तर—जन्म तिथि जो मेरे 'लेखक परिचय' में जाती है ठीक है।

प्रश्न-८—मेरे प्रश्न तीन के अनुसार, कृपया बताएँ कि आपके माताजी और पिताजी के स्वर्गवास के समय कौन-कौन परिवार में मौजूद थे ? मतलब है भाई-बहिन या अन्य। आरती और अँगारे में जैसा आपने संकेत किया है—"चार बहनों-भाइयों के बीच केवल एक मैं बाकी बचा हूँ। काल का उद्देश्य कोई पूर्ण करने को गया शायद रचा हूँ।"

उत्तर—पिताजी की मृत्यु के समय माँ, एक बहन, एक भाई मौजूद थे। बाद को माँ, फिर बहन और अन्त में भाई का देहावसान हुआ। मुझसे बड़ी केवल एक बहन थी जिसका देहावसान पिताजी के सामने हो गया था। बाकी सब मुझसे छोटे थे। उन सब बातों को लिखते-याद करते मन को बहुत दुःख होता है।

प्रश्न-९—सचमुच, नारायण और 'सुरसती' के संयोग से आप जैसे वाणी-सुत का जन्म सार्थक होना ही था। ऐसा 'आरती और अंगारे' की 'ललितपुर को नमस्कार' और "जीभ को तुमने सिखाया" रचनाओं से ध्वनित भी है। इन दोनों कविताओं तथा 'याद आते हो मुझे तुम' कविता को पढ़कर यह लगता है कि आपके संस्कारों को मधुशाला' 'मधुकलश' व मधुबाला के रंग-रस में न डूबकर भक्ति रस में डूबना चाहिए था। पर आपकी पूर्वकालीन रचनाओं में उसके प्रति उदासीनता ही नहीं, विद्रोह भी है—

'मेरे अधरों पर हो अन्तिम
वस्तु न तुलसी दल, प्याला
मेरी जिह्वा पर हो अन्तिन
वस्तु न गंगा जल हाला
मेरे शव के पीछे चलने
वालो याद इसे रखना—
'राम-नाम है सत्य' न कहना
कहना 'सच्ची मधुशाला' !
ऐसा क्यों ?

उत्तर—'मधुशाल' के प्रतीकों के पीछे बहुत कुछ है। उसके स्थूल रूप को ग्रहण करके कोई भी मेरी मानसिक स्थिति से दूर ही जा पड़ेगा।

अभी सा० हि० में पंडित राजनाथ पाँडे का एक लेख छपा है—कृति में परिवर्तन पर। उसमें मधुशाला के विषय में काफी निकटता से लिखा गया है। **उन्होंने मधुशाला के एक तत्व को तो शायद पहली बार पकड़ा है।** लेख देखना। कम से कम तुम्हें लेख रोचक लगेगा। हाँ एक तिथि उसमे गलत है। १९३० की जगह १९३३ चाहिए। उससे पूर्व मधुशाला की कोई रुबाई लिखने की स्मृति मुझे नहीं है। १९३२ का उत्तरार्ध हो सकता है।

प्रश्न-१०—निशा निमंत्रण की रचना—

"था तुम्हें मैंने रुलाया !
हाय ! मृदु इच्छा तुम्हारी !
हा ! उपेक्षा कटु हमारी !
था बहुत माँगा न तुमने किंतु वह भी दे न पाया !"—

को सारी पढ़कर ऐसा लगता है कि आपने श्यामाजी के साथ कुछ विपन्नता और कुछ अपनी उपेक्षा के कारण अपना व्यवहार अवाँछित रखा—"एक क्षण को भी सरलते क्यों समझ तुमको न पाया ?"

क्या आपके इस व्यवहार के पीछे श्यामाजी में आपकी मनोरुचि के अनुकूल कोई अभाव था—अभाव, जो आपकी रूप-रसमई भावना को न भाया हो ! क्योंकि 'निशा-निमंत्रण' में ही ६६ वीं० रचना में आपने कहा है—

"दूर न कर पाया मैं साथी सपनों का उन्माद नयन से ! —
मैंने खेल किया जीवन से !"

उत्तर—श्यामा की मृत्यु के बाद ऐसे बहुत से अवसर मुझे याद आये जब मैंने उसके मन के अनुकूल बहुत-सी बातें न की थीं। वह जीवित रहती तो शायद ये साधारण होतीं। पति-पत्नी में ऐसे बहुत से मतभेद होते हैं। उसकी मृत्यु के बाद वे छोटी-छोटी घटनायें भी बहुत दुःख दायिनी मालूम होने लगीं। उन पंक्तियों के पीछे शायद कोई विशेष घटना मेरे मन में है—पर उसे जानना कविता समझने के लिए आवश्यक नहीं।

प्रश्न ११—पिछले दिनों, ११ जनवरी १९६१ को जब श्री शिवदत्त जी तिवारी के यहाँ आप भोजन पर आये थे तब बातों ही बातों में आपने अपनी आर्थिक विपिन्नता के बारे में कहा था"—मैंने जीवन के आर्थिक अभावों से संघर्ष किया है। जब पढ़ता था तब जेबों में चने भरकर ले जाया करता था।"

क्या आप बताएँगे कि आर्थिक संकट का ऐसा कठिन समय आप पर कब से कब तक रहा ?

उत्तर—इस सम्बन्ध में टण्डन जी सम्बन्धी संस्मरण में मैंने लिखा है। उनका **अभिनन्दन ग्रन्थ देखना**। उसमें मेरा एक लेख है।

प्रश्न १२—मेरे प्रश्न ५ के उत्तर के अनुसार, आपने इस बात का समाधान नहीं दिया कि आपने प्रारम्भ में कविता का सृजन अपनी आन्तरिक प्रेरणा के आग्रह से किया या कविता-जगत की बाहरी सृजनात्मकता से प्रभावित होकर—क्योंकि मेरा ऐसा अमुभव है कि प्रायः नवोदित कवि कविता करने की शुरूआत अन्य सिद्ध कवियों के काव्य अध्ययन से प्रभावित होकर करते हैं। पर बाल्मीकि ने जिस तरह 'मा निषाद' क्रौंच वध की आन्तरिक वेदना से उमड़कर छन्द लिखा, शायद उसी प्रकार कई कवियों के अन्तर से रचना फूट पड़ सकती है। आपका इसके बारे में क्या विचार है, और इस सन्दर्भ में अपनी बात मुझे बताएँ।

उत्तर—मैंने जिस पहली कविता की चर्चा अपने पिछले पत्र में की थी वह तो मैंने अपने अध्यापकों और सहपाठियों के कहने से लिखी थी। मेरे लेखन आदि में मेरा शब्दाधिकार देखकर ही उन्होंने ऐसा अनुरोध किया होगा। अपने अभ्यास काल की कविताएँ भी मैंने अपनी अन्तः प्रेरणा से लिखी थीं, किसी कारण उन्हें नष्ट कर देना पड़ा। कविता पढ़ने और कविता सुनने का अनुराग मुझे प्रायः शुरू से था—संस्कार रूप में ही मुझे यह मिला होगा—और उसने अभिव्यक्ति को अवश्य सहायता दी होगी। ऐसा मुझे याद नहीं पड़ता कि कभी मैंने कविता इसलिए लिखी कि और लोग लिख रहे हैं या कविता इसलिए लिखें कि उससे किसी वाद को बल देना है, या हिन्दी की सेवा करनी है या किसी ऐसे ही कारण से। मैं इस तरह कहना चाहूँगा कि **शब्दों में कवि होने के पूर्व मैं जीवन में कवि बन गया था** मेरा जीवन कुछ ऐसी अनुभूतियों से टकरा चुका था, कुछ ऐसी भावनाओं से मंथित हो चुका था कि किसी प्रकार की अभिव्यक्ति उसके लिए अनिवार्य थी। मेरी प्रारम्भिक नष्ट हुई कविताएँ होतीं तो कुछ और कहानी बतातीं। छपी प्रारम्भिक रचनाओं में भी शब्दों के पीछे जीवन की अनुभूतियों की कुछ ऐसी प्रतिध्वनियाँ है जो अभिव्यक्ति की अपरिपक्वता, अनगढ़पन में भी दब नहीं सकतीं। उस समय तो मुझे झुँझलाहट होती थी कि मेरी भावनाएँ शब्द क्यों नहीं बन जाती। मैं स्वभाव से भाव-प्रवण था—**Too Sensitive**। उन्हें तो अभिव्यक्ति का कोई न कोई रूप देना ही था। शायद काव्य संस्कार से मैं उन्हें शब्दों में रूपायित करने लगा। ऐसी अभिव्यक्ति कला में ही नहीं जीवन-व्यापारों में भी हो सकती थी। प्रारम्भिक रचनाएँ पढ़ लो, फिर मैं बात करूँगा।

'नई कविता' का अंक मैं पढ़ चुका हूँ। साही का लेख उसमें पढ़ना। पंत जी ने भी उसकी तारीफ लिखी है। **कम से कम 'मधुकलश' के सम्बन्ध में उन्होंने कुछ नया कहा है।**

२५.२.६१

प्रश्न १३—आपकी भूमिकाओं में कई जगह पढ़कर ऐसा लगता है कि स्व० श्यामा जी आपकी काव्य-साधना पर अत्यन्त आस्थावान और विश्वस्त रहीं। जैसा 'मधुकलश' की भूमिका में "थुरे जाव" शब्द से लक्षित है और 'मधुशाला' के ११वें संस्करण में बेनीपुरी जी के "गोली मार देइ हैं" वाम्य से। और आपने श्यामाजी की आस्था तथा विश्वास की भावना को "आरती और अंगारे" की कविता में ध्वनित भी किया हैं—

> "बोली मुझ पर कोई ऐसी रचना करना,
> जिससे दुनियाँ के अन्दर मेरी याद रहे।"

तो क्या आप स्व० श्यामा जी के भाव-स्वभाव के विषय में कुछ बताएँगे? इसके साथ ही आपने मेरे प्रश्न १० का पूरी तरह समाधान न देकर सिर्फ यह कह कर टाल दिया कि—निशा निमन्त्रण की कविताओं के पीछे जो श्यामा जी के

प्रति उपेक्षा और अपनी भूल का भाव अभिव्यक्ति है—"उन पंक्तियों के पीछे शायद कोई विशेष घटना मेरे मन में है—पर उसे जानना कविता समझने के लिए आवश्यक नहीं।"

पर एक जीवन के कवि की जीवन-दर्शी कविता को समझने के लिए उसके मन की विशेष घटना को मेरे विचार से जानना सर्वथा ज़रूरी है, तभी न्याय हो सकेगा। कृपया संक्षेप में ही समाधान दें।

उत्तर—श्यामा का जन्म-पालन मध्यवित्त परिवार में हुआ था। उसकी शिक्षा-दीक्षा सब घर पर ही हुई थी—कुछ ग्राम में और कुछ नगर में। संस्कार सुरुचिपूर्ण सुसंस्कृत परिवार के थे। विवाह के समय वह बच्ची ही थी। पर उसने मेरे कवि को शायद सबसे पहले पहचाना। शायद वह उस संघर्ष को भी समझ गई थी जो कवि को करना पड़ता है—अपने अन्दर भी और बाहरी संसार में भी। इस कारण उसने मुझे हर प्रकार से निश्चिन्त बनाने का प्रयत्न किया। मुझ पर न कभी उसने कोई नियंत्रण रखा और न मुझसे किसी प्रकार की माँग की। अपनी बीमारी से वह लाचार थी—पैसा मैं उस पर न खर्च कर सकता था। पर मैंने उसकी जो सेवा-सश्रूषा की उससे मुझे असन्तोष नहीं था। उसकी प्रत्याशा तो मुझसे कुछ भी नहीं थी। लगभग ६ वर्ष के विवाहित जीवन में मैंने उसके लिए केवल एक साड़ी खादी की खरीद कर दी थी जिसे वह बड़े गर्व से पहनती थी। जब वह साड़ी पुरानी हो गई और पहनने काबिल न रह गयी तो उसने बड़ी हिफाजत से तह कर उसे बन्द कर दिया। यह मैंने उसके मरने के बाद देखा आभूषण के नाम पर एक दिन मैंने मज़ाक-मजाक में एक हरे नींम के तिनके से एक छल्ला बनाकर उसे दे दिया था, कहा था—यह लो अँगूठी! उसके मरने के बाद वह अँगूठी मुझे एक लकड़ी की डिबिया में बड़े जतन से रखी मिली। वह हमेशा इस बात का ध्यान रखती थी कि मेरे कवि के विकास में वह किसी प्रकार बाधा न बने। पर सच्चाई तो यह है कि मेरे कवि-शिशु को बड़े जतन से पाला-पोसा। जैसे बहुत लाड़-प्यार से लड़के बिगड़ जाते हैं शायद उसने अपने वात्सल्य की अतिशयता से उसे निरंकुश भी कर दिया—मैं तो कवि ही हूं, इसका अवश्य विश्वास लेकर में जीवन में बढ़ा, और यह मुझे श्यामा ने दिया।

"था तुम्हें मैंने रुलाया" के पीछे बहुत लम्बी कथा है—मुझे अभी उसे बताने का अवकाश भी नहीं और उसकी आवश्यकता भी नहीं। कविता स्वयं बोलती है, फिर पढ़ें।

बच्चन
४-३-६१

आपका पत्र मिल गया था। कृपया श्री 'साही' वाले लेख की पत्रिका याद करके मुझे अवश्य दे दें। पढ़ने को बेताब हूँ। अब छोटे-छोटे दो प्रश्न। इससे पहले एक बात स्पष्ट कर दूँ कि मैं जिन बातों का समाधान चाह रहा हूँ उनका उपयोग आपके रचना-कर्म के ऐतिहासिक और जीवन व्यापार के संदर्भ में सही-सही घटाने में करना

चाहूँगा। क्योंकि आपकी रचना में केवल व्यक्तित्व है जो घटना-चक्र की अनुभूतियों से निखरा-बिखरा है। इसलिए मैं आपसे प्रार्थना भी करूँगा और स्नेहाधिकार से जिद भी कि आप मेरे हर प्रश्न का (वह आपको कभी-कभी अजीब भी लग सकता है) साफ़ समाधान अवश्य दें। इससे आपके विषय में मेरा **Vision** निश्चित होगा।

प्रश्न १४—आपको अपनी बड़ी बहन जी, उनसे छोटी बहन जी और छोटे भाई साहब (शायद शालिग्राम जी) का निधन समय याद हो तो बताएँ। साथ ही बहन जी का नाम भी।

प्रश्न १५—आपने किस-किस सन् में हाई स्कूल, इण्टर, बी० ए० और एम० ए० किया। आप तो सदा बड़े शार्यनिंग रहे होंगे ?

उत्तर—मुझे आश्चर्य है मेरा पिछला पत्र नहीं मिला। उसमें मैंने कुछ विस्तार से अपनी बहनों के बारे में लिखा था। दोहराना असम्भव।

मेरी बड़ी बहन का नाम भगवानदेई था। वे मुझसे आठ वर्ष बड़ी थीं। उनका देहावसान २१ वर्ष की अवस्था में हुआ। विवाहिता थीं, एक लड़का है।

श्री शालिग्राम जी मुझसे ३।। वर्ष छोटे थे। उनका देहावसान १९५० में हुआ। शा० का पुकारने का नाम "रज्जन" था। 'टी शाला' में यही नाम प्रयुक्त।

उनसे छोटी बहन का नाम शैलकुमारी था। वे मुझसे ५-६ वर्ष छोटी थीं। उनका देहावसान सन १९४६ में हुआ। विवाहिता थीं—कोई संतान नहीं।

मैंने हाई स्कूल १९२५ में, इण्टर १९२७ में, बी० ए० १९२९ में, १९३० में प्रि० एम० ए० करके छोड़ दिया था। नमक सत्याग्रह आंदोलन के समय। श्यामा के देहावसान के बाद (१९३६) में, १९३७ जुलाई में फिर से मैंने पढ़ाई शुरू की थी। १९३८ में मैंने एम० ए० किया। १९३९ में बीटी बनारस से। दो वर्ष शोध ११ वर्ष अध्यापकी। ५२ में केंब्रिज गया। ५४ में पी० एच० डी० की।

१९२४ में हाई स्कूल में फेल हो गया था। जीवन के एक निजी दुखद प्रसंग के कारण। पंत जी कविता-मोह के कारण १९१८ में हाई स्कूल में फेल हो गये थे। तभी अल्मोड़े से बनारस पढ़ने आये थे।

भास्कर जी का फोन आया था। उन्हें दफ्तर से चेतावनी मिली है।
पंतजी अस्वस्थ होने के कारण अब २५ की रात को आ रहे हैं।

बच्चन
२३-३ ६१

प्रश्न १६—आपका कृपा पत्र मिला। पिछला पत्र डाकखाने वालों ने ही शायद हड़प लिया, मेरा दुर्भाग्य !

वस्तुतः आपके परिवार वालों की एक के बाद दूसरी मृत्यु ने आपके कवि मानस पर काफी चोट दी होगी। इस प्रकार की अनुभूतियों से आपका

काव्य पूर्ण है। पर मुझे आश्चर्य है कि श्यामा जी की मृत्यु का जितना आपने अनुभूति पूर्ण अभिव्यंजन किया है (निशा निमंत्रण, एकाँत संगीत और आकुल अन्तर में) उतना आरती और अंगारे की उत्तर भाग की कुछ कविताओं में कहीं केवल श्रद्धामय-शोक प्रकटीकरण को छोड़कर—अन्य किसी परिवार के व्यक्ति के प्रति नहीं किया। श्यामा जी के मृत्यु-शोक का कोहरा आपकी निशा-निमंत्रण, एकाँत संगीत और आकुल अंतर की रचनाओं में सीमा पर है—वेदना दुखती आँख की जलधारा के समान मूर्त होती गई है।

ऐसा क्यों ?

प्रश्न १७—पंत जी तो कवि-मोह के कारण हाई स्कूल में फेल हुए, ठीक है। पर आप हाई स्कूल में क्यों फेल हुए ? एक दिन की मुझे याद है कि आपने कहा था "...मुझे तब किसी लड़की से प्रेम हो गया था। नौबत आत्म हत्या तक आ गई थी। पर किसी (शायद हेडमास्टर) महोदय ने साहस दिया। तो आप जैसे रूप- रसमय भाव प्रवण कवि से तब कच्ची उमर में ऐसा होना कोई आश्चर्य की बात नहीं—

"कुछ अवगुन कर ही जाती है
चढ़ती बार जवानी।
यहाँ दूध का धोया कोई
हो तो आगे आए।"

प्रणय पत्रिका की इन पंक्तियों के अलावा त्रिभंगिमा में 'अमरबेली' कविता में—

"अह शुरू की......अल्हड़ और दीवानी जवानी
जान तुम पर मैं निछावर कर चुका होता कभी का।"
और "बुद्ध और नाच घर" की "शैल विहंगिनी"

कविता में भी—

भूल मुझको याद आयी
यौवन के प्रथम पागल दिनों की
एक तुमसी थी विहंगिन
मैं जिसे फुसला फँसाकर
ले गया था पींजरे में।"—

तो वह कौन थी और क्या बात रही ? जरा संक्षेप में ही सही।

इससे मैं आपके पहले रोमाँस के भाव-बोध को जानना चाहता हूँ।

आपका जीवन

प्रिय जीवन प्रकाश जी,

आपका पत्र समय से मिला। मुझे खेद है कि मेरे पिछले दिनों पत्र आपको नहीं मिले। उत्तर मैं तुरंत देता हूँ। डाक की दुर्व्यवस्था सभी जगह बढ़ती जा रही है।

इसका उत्तर मैं क्या दूँ कि श्यामा की मृत्यु की जितनी अनुभूतिपूर्ण व्यंजना

मेरे गीतों में है उतनी अन्य किसी की मृत्यु की क्यों नहीं। श्यामा मेरे जीवन में बड़े विचित्र समय में आई थी, उसके पूर्व मैं प्रेम के एक बड़े कटु अनुभव से गुज़र चुका था। इसकी प्रतिध्वनियाँ मेरी प्रारम्भिक रचनाओं में भी मिलेंगी। श्यामा का व्यक्तित्व दैवी था, इसमें मुझे संदेह नहीं। ईर्ष्या उसे छू नहीं गई थी। उदारता उसके हृदय में सबके लिए थी और मेरे लिए दोष की सीमा तक थी। उसने मेरा विश्वास पूर्णतया जीत लिया था। पत्नी से अधिक वह मेरी मित्र थी। स्वयं अस्वस्थ थी, इस कारण वह जानती थी कि वह मेरी एक बड़ी भारी चिंता बनी हुई है और फिर मेरे जीवन-संघर्ष के दिनों में जब मुझे कोई संतोषजनक जीविका भी नहीं उपलब्ध थी। इसके लिए जैसे वह अपने आपको अपराधिनी समझती थी। इसका प्रतिकार करने को ही जैसे उसने न मुझसे किसी चीज़ की माँग की, न किसी चीज़ की प्रत्याशा की, न मेरी किसी बात से कभी असन्तुष्ट हुई, न उसने मुझे किसी बात से रोका—शायद मुझ पर कुछ नियंत्रण रखती तो मैं कई अप्रिय अनुभवों से बच जाता। मैंने भी उससे कुछ नहीं छिपाया था। उससे मैं एक ही हो गया था। वह मेरी सह अनुभवी थी—"आरती और अंगारे' में किसी कविता में ये पंक्तियाँ हैं—

मानव चाहे सब दुनिया से अपना रूप छिपाए,
कहीं चाहता नग्नतना और नग्नमना रह पाए।

मैं श्यामा के आगे ऐसा ही था। मुझे याद है कभी-कभी मैं उसकी क्षमता, सहिष्णुता की सीमा के पार भी चला जाता था। उसकी वेदना की ये घड़ियाँ उसकी मृत्यु के बाद मुझे बहुत सालती रहीं।—'था तुम्हें मैंने रुलाया' गीत निशानिमन्त्रण में सम्भवतः इसी की प्रतिक्रिया है। इन्हीं कारणों से श्यामा की मृत्यु के बाद मैंने ऐसा अनुभव किया कि मेरा आधा अंग कट कर गिर गया। मुझे यह कहने में कुछ भी संकोच नही है कि मेरी मधुशाला, मधुबाला, मधुकलश मेरे पूर्ण अंग की रचनाएँ हैं—शेष सब मेरे आधे अंग की। मुझे श्यामा-सा संगी फिर नहीं मिला। एक दर्पण था जिसमें मैं अपने को देखा रहा था। श्यामा की मृत्यु से उस दर्पण पर काला परदा पड़ गया—निशा का—मैं एकांकी रह गया और बहुत अकुलाया—यही है निशा निमन्त्रण, एकाँत संगीत, आकुल अन्तर। मेरी शक्ति की चेतना! बाद को जैसे मैं अपनी शक्ति से अपरिचित हो गया। जीवन में कोई जगह खाली नहीं रहती। हर चीज़ की अपनी विशेषता है। इस पर कल्पना करना बेकार है कि श्यामा आज भी बनी होती तो मैं किस प्रकार की कविता लिखता। पर इतना मैं कह सकता हूँ कि यदि श्यामा मेरे साथ न होती तो मधुशाला, मधुबाला और मधुकलश मेरी लेखनी से नहीं उतर सकते थे। मुझे लगता है कि श्यामा के बारे में कुछ लिखकर मैं उसके प्रति न्याय नहीं कर सकता। उसका कद मधुशाला, मधुबाला, मधुकलश के पीछे खड़ी छाया से ही थोड़ा-बहुत अनुमाना जा सकता है।

अपने पहले प्रेम-प्रसंग के विषय में विस्तार से कुछ नहीं कह सकता। संकेत ऊपर भी आ गया है। उसमें जो कुछ कटु अनुभव हुआ वह इतनी तीव्रता तक

पहुँचा कि किसी प्रकार की अभिव्यक्ति मेरे लिए स्वाभाविक हो गई—शायद इसी ने मुझे कवि बनाया। हाई स्कूल शायद उसी कारण से फेल भी हुआ था। फेल होने की निराशा के साथ पिछली संघर्ष और असफलता की कटुता भी जागी और जीवन कुछ क्षण के लिए अर्थहीन लगा। उस समय कुछ भी करना असम्भव नहीं था। मैं जमुना के तट पर निःसंज्ञ घूम रहा था—यह तो मैं न कहूंगा कि आत्महत्या के विचार से—क्योंकि मैं मृत-सा ही हो गया था। इस समय **Christian college** के एक अध्यापक **Adams** ने मुझे देखा और मुझे अपने पास बुलाया। एक अपरिचित की अनायास सहानुभूति ने मुझे जीवन के प्रति आशावान बना रहने और फिर से संघर्ष करने की प्रेरणा दी। उस समय जो मैंने लिखा था वह सब नष्ट कर दिया था। पर प्रारम्भिक रचनाओं में उनकी बहुत-सी प्रतिध्वनियाँ हैं। उनमें प्रदर्शित दबे, झुके, आतंकित, असमर्थ, असन्तुष्ट, भयभीत व्यक्तित्व के प्रति मुझे दया आती है। मधु, मधु, मधु में मेरा व्यक्तित्व कितना उद्दाम, उदंड, उछृंखल, उन्मुक्त, क्राँतिकारी, निर्भीक, निर्द्वंद हो गया है। उसकी प्रतिक्रिया तो होनी ही थी नि० ए० आ० में और फिर नया व्यक्तित्व बनना था।

आशा है इन पंक्तियों से आपकी जिज्ञासा कुछ शान्त होगी।

बच्चन

५-५-६१

आपका पत्र मिला। पत्र को पढ़कर मैंने आज ही आरम्भिक रचनाएँ फिर पढ़ीं। कई नये रहस्य स्वतः बोलने लगे।

प्रश्न—१८. आपने कुछ ऐसा पहले भी लिखा और इस बार भी—

"शायद मुझपर कुछ नियन्त्रण रखती तो मैं कई अप्रिय अनुभवों से बच जाता।"—

क्या उन "अप्रिय अनुभवों" का सार-संकेत आप दे सकेंगे?

प्रश्न—१९. आप १९३२ में "पायनियर" के संवाददाता रहे फिर १९३३ में अभ्युदय के सम्पादकीय विभाग में काम किया—ऐसा श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार ने आपके बारे में जो पुस्तक लिखी है उसमें उल्लेख किया है। उधर आपके पिता जी भी कहीं काम करते ही होंगे। (कृपया लिखें कहाँ) फिर भी आपके सामने तब आर्थिक संकट इतना बड़ा रहा, जैसा कि आपने कई जगह बताया है, कारण?

प्रश्न २०—आपने अध्यापकीय जीवन कब आरम्भ किया और कब तक अध्यापन कार्य किया?

प्रश्न २१—अनायास आपने प्रयाग विश्वविद्यालय की नौकरी क्यों छोड़ दी? मेरे विचार से विदेश मन्त्रालय के काम से वहाँ का कार्य आपके व्यक्ति के लिए अधिक सारगर्भित था।

पुनश्च—दो महीने के अवकाश का आपका कहीं जाने का कार्यक्रम है या

नहीं ? कृपया इस बारे में पूरा निश्चय सूचित करें।

प्रिय जोशी जी।

पत्र के लिए धन्यवाद। उन रहस्यों पर अभी पर्दा पड़े रहना ही ठीक है।

१९३० में मेरे पिता जी की पैंशन बंद हो गई थी। मैंने कुछ दिन इलाहाबाद हाई स्कूल, कुछ दिन प्रयाग महिला विद्यापीठ और कुछ दिन पायनियर प्रेस में काम किया। ३३ में अभ्युदय में काम करता रहा। ३४ में अग्रवाल विद्यालय में पहुँच गया। मेरा यह सारा काम अस्थाई था। केवल छोटे भाई नियमित रूप से इलाहाबाद बैंक में काम करते थे और उन्हीं पर घर भर का बोझ था। घर में कई रोगी भी थे। इसके बारे में मैंने टंडन जी वाले लेख में कुछ लिखा है। मैंने ३० में पढ़ाई छोड़ी—कुछ दिन चाँद कार्यालय में काम किया था। अध्यापकी जीवन मेरा इलाहाबाद हाई स्कूल से आरम्भ हुआ—प्रयाग महिला विद्यापीठ में भी चला—फिर वह शुरू हुआ जब मैं अग्रवाल विद्यालय में आया। जुलाई ४१ से मैं इलाहाबाद विश्वविद्यालय में अध्यापक हुआ। ३६ में श्यामा की मृत्यु के बाद मैंने अग्रवाल विश्वविद्यालय छोड़ दिया था। ३७-३८ एम० ए० करने में लगे, ३८-३९ ट्रेनिंग करने में। दो वर्ष रिसर्च स्कालर रहा। ४१ से ५२ तक इलाहाबाद यूनिवर्सिटी में रहा। ५२ में केम्ब्रिज चला गया। उसके बाद से आप जानते ही हैं।

इंगलैंड से लौटने पर विश्वविद्यालय का वातावरण बहुत दूषित दिखा। फिर मैं देश की हिन्दी योजनाओं में कुछ सक्रिय सहयोग देना चाहता था। इसी समय विदेश मन्त्रालय में हिन्दी सैक्शन के लिए पंडित जी (जवाहर लाल नेहरू) ने मुझे बुला दिया। उसी समय डा० केसकर ने मुझे रेडियो में लेना चाहा। विदेश मंत्रालय के निश्चय में कुछ देरी लगी तो मैं दो मास को रेडियो में चला गया। विदेश मंत्रालय में मैंने कुछ सही परम्पराएँ डाली हैं, इसका मुझे संतोष है। अंग्रेजी तो बहुत लोग पढ़ा रहे हैं। पर यहाँ का काम शायद दूसरा इस प्रकार न कर सकता।

बच्चन

१५-५-६१

आपके आर्शीवाद से मैं दिल्ली विश्वविद्यालय में अच्छी तरह प्रवेश पा सका। अब जी लगा कर बस पढ़ते ही रहने की इच्छा बनी रहती है। गम्भीर पुस्तकों को न जाने क्यों अपनी अयोग्यता की सीमा होते हुए भी पढ़ने में रस आता है—अजाना रस !

कृपया निम्नलिखित जिज्ञासा का समाधान दें—

प्रश्न २२—आदरणीय तेजी जी से आपका विवाह कब किन हालात में और आपकी किन मानसिक हलचलों के परिणाम स्वरूप हुआ था ? श्यामा जी के अभाव-धाव तेजी जी का स्वभाव-अपनाव भर सका ? जानता हूं जिज्ञासा अत्यन्त व्यक्तिगत है किन्तु आपका व्यक्तित्व ही एक काव्य है इस लिए मुझे इस प्रकार की जिज्ञासाओं का समाधान मिलना ज़रूरी है। आरती और अंगारे की रचना में एक

स्थल पर आपने लिखा है—

"उस तिमिर की श्यामता में क्यों छिपा था तेज···" और उस तेज की धात्री 'कटारी-सा चमकता नूतन चाँद......" जिसे आपने नियति का संकेत समझ कर बस कलेजे में आँख मूंद कर धँसा ही तो लिया। व्यंग-व्यंजना में जो पीर है उसकी अभिधा आपसे चाहता हूं।

प्रिय जोशी जी,

पत्र के लिए ध०

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई और गर्व भी कि आपका नाम सबके ऊपर रहा। आपमें योग्यता है, लगन है। अवसर मिलने पर आप कुछ बड़ा काम करेंगे, इसका मुझे विश्वास है। मेरी शु० का० सदा अपने साथ समझें। अब आपके प्रश्न का उत्तर।

तेजी जी से मेरा विवाह २४ जनवरी सन् १९४२ को हुआ।

मैं उनको सर्व प्रथम बरेली में एक मित्र के यहाँ ३१ दिसम्बर १९४१ को प्रातः काल मिला। मित्र का नाम था श्री ज्ञान प्रकाश जौहरी जो उन दिनों बरेली कालेज में अँग्रेजी के अध्यापक थे।

१ जनवरी १९४२ को उन्हीं के घर पर मेरी **Engagement** या सगाई हुई। उन २४ घंटों में क्या हुआ कि हम दोनों एक दूसरे के लिए अनिवार्य लगने लगे। यह मेरे लिए भी और शायद तेजी जी के लिए भी एक रहस्य है। इसे भाग्य का दुर्लंघ्य विधान ही कहेंगे।

बरेली से वे लाहौर चली गईं और मैं इलाहाबाद चला आया। शायद १० जनवरी को मैं उन्हें लिवाने के लिए लाहौर गया और १५ जनवरी को उन्हें लेकर इलाहाबाद आया।

वे उन दिनों श्री मती जौहरी के साथ लाहौर में रहती थीं। श्री मती जौहरी उसी कालेज (फतेहचंद कालेज) में प्रिंसिपल थी जिसमें तेजी जी भी पढ़ाती थीं—**Psychlogy1** श्री मती जौहरी बड़े दिन की छुट्टियों में जब अपने पति को मिलने आईं तो छुट्टी मनाने के लिए तेजी जी भी साथ आ गईं। मैं लौटते हुए अचानक बरेली में रुक गया था। इसके बाद ही श्री मती जौहरी नें नौकरी छोड़ दी। सारे संयोग जैसे हम दोनों को मिलाने के लिए इकट्ठे हो गए थे। तेजी जी के पिता उन दिनों मीरपुर खास (सिंध) में थे। शायद वे लाहौर में होते तो उनकी ओर से कोई बाधा उपस्थित होती। यद्यपि जिस दिन मैं लाहौर से चलने वाला था उन्होंने अपनी स्वीकृत एक आदमी से भेज दी थी और इच्छा प्रकट की कि विवाह सिंध से औपचारिक रीति से हो—पर हम दोनों ने इलाहाबाद में सिविल मैरिज कराने को ही तै की। लाहौर में भी और सिंध में भी हमें विरोध की आशंका थी—बस हम दोनों इलाहाबाद चले आए और २४ जनवरी को जिला मजिस्ट्रेट मिस्टर डिक्सन ने हमारी शादी करा दी।

सतरंगिनी के बहुत से गीतों में मैंने उन क्षणों को पकड़ने का प्रयत्न किया है जो हमें साथ लाए थे। जो मैंने लिखा है उसके प्रकाश में सतरंगिनी के गीतों को फिर पढ़ेंगे तो और आनन्द आएगा।

शु० का०

बच्चन

१७-७-६१

बहुत समय से इच्छा होते हुए भी पत्र नहीं लिख सका—आपकी आज्ञा अनुसार पढ़ाई पर लगा हूँ।

कृपया निम्नलिखित जिज्ञासा का समाधान दें—

प्रश्न २३—आपने जब हिन्दी के काव्य-रचना-जगत में रुचि ली उस समय आपकी मानसिक प्रतिक्रियाएँ तत्कालीन काव्य-सृजन के प्रति क्या थीं? मेरा आशय यह है कि सन् १९२०-३० तक हिन्दी काव्य-जगत में द्विवेदी जी का काव्य—"इतिवृत्त" समाप्त होकर उसके स्थान पर छायावाद अवतरित हो रहा था—प्रसाद-पंत-निराला और फिर महादेवी के काव्य के माध्यम से। आपने उनकी रचनाओं को काव्य प्रेमी होने के कारण पढ़ते रहने में रुचि ली होगी। उसकी जो मानसिक प्रतिक्रिया आपमें हुई और जो रचनात्मक दिशा आपने ली या लेनी चाही उसके बारे में कृपया कुछ बताएँ। इस जिज्ञासा का आधार आपकी त्रिभंगिया की दो रचनाएँ हैं—

१. अंतर से याकि दिगंतर से आई पुकार—
तम आसमान पर हावी होता जाता था
मैंने उसकी ऊषा-किरणों को ललकारा
इसको तो खुद दिन का इतिहास बताएगा
थी जीत हुई किसकी और कौन हटा हारा

× × ×

२. इस तुम्हारी मौन यात्रा में मुखर मैं भी तुम्हारे साथ

प्रिय जीवन,

पत्र के लिए धन्यवाद।

कविता मेरे लिए साहित्य के रूप में नहीं आई। वह मेरे पास जीवन की अनिवार्य आवश्यकता बनकर आई—आज भी इसी रूप में मेरे पास रहती है। मेरी कविता समझने का यह मूलाधार है। मेरे पाठक भी प्रायः वही हैं जिनके लिए कविता जीवन की आवश्यकता है। मैं कक्षा में नहीं—घर में, कमरे में, खाट पर हाट पर पढ़ा जाता हूँ और मेरी पंक्तियाँ उत्तर कापियों में उद्धरत करने को नहीं रटी जातीं—वे जीवन के मार्मिक क्षणों को सजीव करने के लिए स्मृति में आपसे आप चढ़ती हैं। मुझे अपने ऊपर समालोचना या लेख देखकर इतनी प्रसन्नता नहीं होती जितनी कभी किसी ग्रामीण पाठक का पत्र पाकर, जिसमें वह मेरी कविता से मिली किसी प्रकार की प्रेरणा स्वीकार करता है। संक्षेप में मेरी धारणा है कि

कविता को जीवन से निकलना चाहिए । जीवन में पैठना चाहिए । उसमें भीगनेवालों का महत्व है, उस पर पन्ने रंगनेवालों का नहीं । यह बात और है कि कोई दोनों कर सके ।

बच्चन
२५-८-६३

आपका भेजा गया २५-८-६१ का पोस्टकार्ड मिल गया है ।

प्रश्न—२४. किसी भी कवि को पढ़ने बैठो तो उसके समालोचक उसके काव्य की किसी न किसी वाद के अन्तर्गत ही समीक्षा प्रायः करते हैं । क्या हर कवि की कविता को किसी वाद के लैंस से पढ़ना ठीक है ?

तुलसी विशिष्टाद्वैतवादी हैं, कबीर अद्वैतवादी, ये छायावादी हैं तो वे रहस्य-वादी काव्य के प्रणेता, तो ये हालावादी तो वे प्रयोगवादी-प्रगतिवादी काव्य के प्रणेता । काव्य के वादों का ऐसा आरोपण आपके विचार से कैसा है—उचित या अनुचित ?

आपका
जीवन ।

प्रिय जीवनप्रकाश जी,

२८-८-६१ के पत्र के लिए धन्यवाद !

न कवि को कविता वाद को ध्यान में रखकर लिखनी चाहिये, न पाठक को वाद को ध्यान में रखकर पढ़नी चाहिए ।

समालोचक को देश-काल-समाज से किसी कवि की संगति बिठलाने के लिए उसे किसी वाद में बाँधने की आवश्यकता पड़ सकती है । पर यह हमेशा देखा गया है कि प्रतिभावान कवि और लेखक वाद में सहज नहीं बँधते । मेरी ऐसी धारणा है कि बाद दूसरी-तीसरी-चौथी श्रेणी के कवियों के लिए उपयोगी होता है । प्रथम श्रेणी के कवि के लिए नहीं कहने का तात्पर्य है कि युग की कुछ धाराणाएँ होती हैं—कुछ लोगों को उसके साथ बहने के अतिरिक्त कोई चारा नहीं रहता, कुछ युग के साथ बहते हुए भी कुछ अपनापन रखते हैं—ये धारा के बाहर भी उतने ही रहते हैं जितने धारा के बीच ।

संक्षेप में जीवन वाद से बड़ा है और कविता टेक्सट बुक में रखने को नहीं लिखी जाती न समालोचकों की समालोचना के लिए । कविता का व्यापक क्षेत्र जीवन है—उसे जीवन से ही लेना और जीवन को ही देना है ।

शु० का०
बच्चन ।
१२-९-६१

४-६-६५

पत्रोत्तर क्रम में आपका अंतिम पत्र १२-९-६१ को मिला था और अब वर्षों

बाद फिर से वह सिलसिला जुड़ रहा है, सौभाग्य का फेरा होता रहता जीवन में।

प्रश्न—२५. अंग्रेजी-हिन्दी के किन कवियों-लेखकों ने आपको आरम्भ से प्रभावित किया ? और अब आपको कौन-कौन से कवि-लेखक प्रिय, हैं ? केवल नाम और उनकी कृति का उल्लेख मात्र करें।

श्रीमती रमा सिन्हा फेल हो गईं। लेकिन वे अक्तूबर में फिर परीक्षा देने के लिए तैयार हैं—निराश नहीं।

शुभा बड़ी हो रही है, ऊषा दुर्बल ! नेहरू जी पर आपकी इस बीच कोई लम्बी कविता या लेख वगैरा नहीं पढ़ा—क्या लिखा ही नहीं ? आप तो अधिकारी हैं उसके। दिनकर जी और शि० म० सिंह सुमन ने तो लिखा है।

श्री नरेन्द्र शर्मा का 'प्यासा निर्झर' पढ़ा होगा ? कैसी कविताएँ लगीं ?

आपके पत्र के साथ ही आदरणीय क० ला० मिश्र प्रभाकर जी का पत्र भी आया आया है, जिसमें उन्होंने मुझे लिखा है—

"बच्चन जी पर पुस्तक लिखना ठीक है। वे तो देवकोटि के मनुष्य हैं। मेरे मन में उनका बड़ा आदर है।"

शेष शुभ !
आपका
जीवन।

प्रिय जोशी जी,

पत्र मिला। समाचार ज्ञात हुए। श्रीमती (रमा) सिन्हा की असफलता के समाचार से मैं बहुत दुःखी हुआ। उनके श्रम-संघर्ष को मैं जानता हूं। मैं चाहता हूँ वे हमेशा सफल हों। यह उनके साहस और लगन के अनुरूप ही है कि वे निराश हुए बिना फिर से परीक्षा की तैयारी कर रही हैं। वे सफल हो के रहेंगी, मैं जानता हूं। मेरी तरफ से उन्हें कुछ न कहना। उन्हें संकोच होगा। ऐसे रखना जैसे मैं उनकी असफलता के विषय में भी नहीं जानता।

अब तुम्हारे प्रश्न का उत्तर—

प्रारंभ में तो मुझे अंग्रेजी के रूमानी कवि प्रिय थे। बाद को शेक्सपियर मेरा प्रिय कवि रहा। आधुनिकों में मैंने ईट्स का विशेष अध्ययन किया। हिन्दी में तुलसी पारिवारिक संस्कारों के कारण मेरे सर्वप्रिय कवि हो गये। छायावादियों में पंत को मैंने बहुत पसंद किया।

अंग्रेजी और हिन्दी में मेरा अध्ययन पर्याप्त विस्तृत है और सभी के काव्य-रस का आनन्द किसी न किसी रूप में मैंने लिया है। नई पीढ़ी के कवियों को भी जितना मैंने पढ़ा है, कम लोगों ने पढ़ा होगा। उनकी कविता के शक्ति-सौंदर्य को भी शायद मैं समझता हूँ। **Favourite** या प्रिय बनाने की उम्र जवानी होती है। अब मैं किसी को **Favourite** नहीं बना सकता। एक नये कवि की एक चीज मुझे अच्छी लगती है, दूसरी बुरी-कभी किसी बिल्कुल नये कवि की चीजें बहुत अच्छीं लगती हैं। आज भी

जो अच्छा लिखा जा रहा है उस सबसे मैं परिचित होना चाहता हूँ। ऐसे लेखक कम नहीं है जिनकी कोई चीज़ प्रकाशित हो तो मैं तुरन्त देखना चाहता हूं-नाम नहीं गिना सकता। प्राय: वे प्रसिद्ध नाम हैं।

उधर मैंने ईट्स पर एक लेख धर्मयुग के लिए लिखा है। कुछ अनुवाद भी भेजे हैं जो जुलाई में किसी समय छपेंगे।

गर्मी खूब पड़ रही है। स्वास्थ्य भी विशेष अच्छा नहीं-लिखूँ क्या ?—ऊषा और शुभा को मेरा आशीष।

बच्चन
१४-६-६५

पंतजी की "छायावाद : पुर्नमूल्यांकन" पुस्तक पढ़ चुका हूँ। उसको पढ़कर मेरी कतिपय प्रतिक्रियाएं और जिज्ञासाएँ जागी हैं।

कृपया निम्न जिज्ञासाओं का उत्तर दें—

प्रश्न २६—नयी कविता में क्या सचमुच महान कुछ भी नहीं है? क्या उसके रचनातन्त्र में इलियट तथा एज़रापाउण्ड की अप्रत्यक्ष अनुगूंज है!

प्रश्न २७—आप अपने काव्य की व्यक्तिनिष्ठता तथा एकाँतिकता के बारे में क्या सोचते हैं? पंत जी तो आप के काव्य को हाड़माँस के यथार्थ से सीमित मानते हैं।

पुनश्च—आशा है स्वास्थ्य और सुधरा होगा। मैं तो हमेशा आपको मधु-कलश का कवि-व्यक्ति देखते रहना चाहता हूँ।

आपका
जीवन

प्रिय जोशी जी,

पत्र के लिए ध०

इन दोनों प्रश्नों का उत्तर मुझे याद है मैं भेज चुका हूँ। आपको पत्र आज-कल ठीक नहीं मिलते-क्या बात है?

नयी कविता में युग-सत्य है— वह केवल अनुकरण नहीं।

मैं अपनी सारी ही कविता को जग-जीवन—काल के प्रति व्यक्ति का संघर्ष मानता हूं···पंत जी और भी जो हों उनके बारे में अपनी राय रखने के लिए स्वतन्त्र हैं।

ईट्स की कविताओं का अनुवाद पिछले ध. यु. में आया है इस अंक में मेरा लेख आ गया होगा। इस सा. हि. में भी ईट्स की कविताओं का मेरा अनुवाद आया है।

'मरकत द्वीप का स्वर' तो अभी प्रेस भी नहीं गया। सामग्री टाईप करा रहा हूँ। 'दो चट्टानें' छप रही है।

W. B. yeats and occultism छपकर तैयार है। कवर आदि छपने बाकी हैं अगस्त-सितम्बर तक प्रकाशित हो सकेगी। चि० उषा, शुभा और श्रीमती सिन्हा को मेरी याद—

—'पुनर्मूल्यांकन पढ़ चुके हों तो वापस कर दें—

बच्चन
२३-७-६५

प्रश्न २८—यदि आप थोड़े शब्दों में हिन्दी भाषा-साहित्य के भविष्य के बारे में अपनी स्वतन्त्र विचारधारा व्यक्त करें तो बड़ी कृपा होगी।

२८-५-६६

प्रिय जोशी जी,

............हिन्दी इस देश में अंग्रेज़ी से तभी होड़ ले सकेगी जब उसमें अंग्रेज़ी के जोड़ का ज्ञान-विज्ञान का साहित्य हो। हमारे ९५ प्रतिशत लेखकों को इस ओर जुट जाना चाहिए।

जीवंत साहित्य स्वाभाविक गति से बढ़ेगा।

ज्ञान-विज्ञान का साहित्य प्रयत्न-प्रोत्साहन से बढ़ाया जा सकता है।

बच्चन
सैक्टर पांच। ८६२,
रामकृष्ण पुरम, नई दिल्ली
दिनांक ६-८-६७.

प्रश्न २९—आपने पिछले दशक में लोक-गीतों की धुनों पर आधारित गीतों की रचना भी की है। इस रचना-प्रक्रिया को प्रेरित करने वाली (व्यापक परिप्रेक्ष्य में) कौन-सी प्रतिक्रिया हो सकती है? क्या ऐसे गीतों का रसास्वादन करने के लिए आधुनिक जनमानस तत्पर है? फिर इन गीतों के तंत्र में (अभिव्यक्ति में) आप किस नवीनता की कल्पना करते हैं?

प्रश्न ३०.—आपको छोड़कर खड़ी बोली में इस प्रकार की रचना करने वाले ऐसे कौन कवि हैं जिनकी उपलब्धि पर दृष्टि डाली जा सकती है?

प्रश्न ३१.—खड़ी बोली के कवि सम्मेलनों की परम्परा का सूत्रपात, कहते हैं, 'सनेही' जी द्वारा हुआ। पर कवि सम्मेलनों की भारत में परम्परा का प्रथम छोर कहाँ से मानें, यह मैंने कहीं नहीं पढ़ा। क्या आप इस बारे में मुझे कुछ दिशा-निर्देश देंगे?

प्रश्न ३२.—कवि सम्मेलनी रचनाओं ने क्या खड़ी बोली काव्य के भावशिल्प को कुछ विशिष्ट दिया हैं, या वे केवल मंच और गले की करामात तक ही सीमित हैं?

प्रश्न ३३. महत्वपूर्ण कवि सम्मेलन अब घट रहे हैं। इनके भविष्य के विषय में आपका क्या विचार है?

उत्तर की आशा में। आपके मत में अपने शोध-प्रबंध (छायावाद के उत्तरार्ध के गीतकार कवियों का विषय और शिल्प विधान) में उद्धृत करने की विनम्र अनुमति चाहता हूँ।
पुनश्च: उत्तर के साथ इस पत्र को भी वापस भेज दें।

आपका,
ह०—(जी० प्र० जोशी)
६-८-६७.

प्रिय जोशी जी,

आपका पत्र। घ०

जो पुस्तकें आप उधर ले गए थे, उन्हें लौटा दें। फिर आपको जो पुस्तक चाहिए वह मैं दे दूँगा या मँगा दूँगा।

थीसिस के लिए आपको दिशा-निर्देश की कोई आवश्यकता नहीं; आप स्वयं स्वाध्याय-चिंतन-मनन के पश्चात अपने निर्णय लें।

अब आपके प्रश्नों का उत्तर

१. सबसे पहले मैं एक व्यक्तिगत बात कहना चाहूंगा। कुछ लोक धुनें मेरे कानों में गूँज रही थीं। वे उसी समय क्यों गीतों में रूपायित होने को उभरी उस पर दूसरे सोचें। गीतों का एक नया आयाम खोजने की बात भी हो सकती है। पिछले गीत-कला के ह्रास और गीतों के विरोध से भी ऐसी बात उठ सकती है। गांवों की लय से नागरिक भाषा को और नागरिक भाषा को गांवों की लय से बांधने की कामना भी स्वाभाविक है। विशेषकर ऐसे समय में जब हम गांवों को नगरों के निकट लाना चाहते हैं। शायद नगरों की शुष्कता गांवों के रस से रसमय भी हो सके। गांवों की लयें शास्त्रीय छंदों में विविधता तो निश्चय ला सकती हैं। नए छंद से भावों के नए आयाम भी खुलते हैं। काव्य नीरस होने पर प्राय: लोक गीतों की ओर गया है। जब मैं इंग्लैंड में था तब अक्सर लोक गीतों के समारोह होते थे। केम्ब्रिज में आयोजित ऐसे समारोहों में लोक गीत गाए जाते थे और आधुनिक काव्य की दुनिया के बीच राग-रंग-रस की एक दूसरी दुनिया जन्म लेती थी। आधुनिक काव्य उससे विशेष प्रभावित गो नहीं हुआ क्योंकि आधुनिकता, वैज्ञानिकता, बौद्धिकता, नीरसता की धारा आज बड़े वेग से बह रही है। लोक गीतों का अपना तंत्र है। उससे शास्त्रीय गीत कुछ ले सकते हैं। हिन्दी में कुछ लिया भी गया है। उस तंत्र को कुछ परिष्कृत भी किया जा सकता है। किया भी गया है। लोक धुनों पर लिखे गीतों को इन बातों के प्रकाश में देखना चाहिए।

२. ऐसे लोक गीतों ने शास्त्रीय गीत, नव-गीत और कहीं-कहीं नई कविता को भी प्रभावित किया है। ध्यान से देखने पर बहुत से आधुनिक कवियों की कुछ रचनाओं में यह प्रभाव दिखाई पड़ेगा। ठाकुरप्रसाद सिंह का वंशी और वादन विशेष

रूप से देखा जा सकता है। उमाकांत मालवीय, रवीन्द्र भ्रमर, शम्भूनाथ सिंह, सर्वेश्वर यहाँ तक अज्ञेय के कुछ गीतों में यह प्रभाव मिलेगा (कांगड़ा की लोरियां)।

लोक गीतों में और शास्त्रीय गीतों में एक बड़ा भेद यह है कि लोक गीत प्राय: अपने भीतर एक कहानी लिए रहता है। मैंने लोक गीतों की उस कथा का उपयोग अपने बहुत से गीतों में किया है। इससे वे वायवी भावना नहीं रह गए।

३. किसी एक आदमी को मैं यह श्रेय न देना चाहूंगा। पहले कवि सम्मेलनों में समस्या दी जाती थी—खड़ी बोली कविता के लिए भी स्वाभाविक है कि वे ब्रज भाषा छंदों में लिखी जाती थी—कवित्त या सवैया में। खड़ी बोली में ऐसी समस्या पूर्तियों को सबसे अधिक प्रेरणा सनेही जी से मिली हो तो कोई आश्चर्य नहीं। मध्य-युगीन राजदरबारों में कवि सम्मेलन अथवा काव्य प्रतियोगिताएं (समस्यापूर्ति के आधार पर) होती थीं, वहीं से हिन्दी कवि सम्मेलन का आरंभ मान लें। खड़ी बोली आन्दोलन के साथ मुशायरों की नकल पर कवि सम्मेलन चले। मैंने ऐसे प्रारंभिक कवि सम्मेलनों की चर्चा अपने किसी निबंध में की है। समस्यापूर्ति के युग के बाद छाया-वादी युग में कवि सम्मेलन बहुत 'डल' होते थे। निराला-पंथ को लोग सुन लेते थे। उल्लास 'मधुशाला' से आया। पर उस पर मेरा अधिक कहना ठीक नहीं।

४. पढ़ने (आँखों से) के लिए और सुनाने के लिए जो कविता लिखी जायेगी उसमें भाषा में विशेषत:, परन्तु भावों में भी, अन्तर होना स्वाभाविक है। कवि सम्मे-लनी कविताओं से भाषा सरल हुई होगी, जीवन के निकट आई होगी। पर एक खतरा भी खड़ा हो गया होगा। भावों में गहराई की कमी आई होगी। भाषा का लाभ उठाते हुए भावों की गहराई बनाए रखने वाले कम लोग हुए होंगे। सामूहिक स्तर पर अभी हम सतही भावों को ही पकड़ पाते हैं। उर्दू ने मुशायरों में भावों की गहराई की परवाह नहीं की, भाषा मांज ली। हिन्दी कवि सम्मेलनों में भाव ह्रास की भूमिका देखकर अच्छे कवि उससे विरक्त हो गए। छुटभैयों ने भाषा मांजने में भी अपने को असमर्थ पाया। भाषा को मांजना, उसका परिष्कार करना कोई साधारण काम नहीं है। वे कुलंजन खाकर और चाय पीकर अपना गला साफ़ करते रहे। कहने को अथवा भाव-विचार की सम्पदा के नाम उनके पास कुछ था नहीं; तब कैसे कहने या भाषा परिष्कार करने का प्रश्न नहीं उठता। केवल आलापने से ही काम चलाना था। पर यह माध्यम की बुराई नहीं है। माध्यम कविता के विकास में बहुत उपयोगी हो सकता है बशर्ते कि उच्च प्रतिभा के लोग उसका प्रयोग करें।

५. कवि सम्मेलन तो शायद नहीं घट रहे हैं पर उच्चकोटि की प्रतिभाओं ने उनसे प्राय: पूरी तरह किनारा कस लिया है। जनता की रुचि के स्तर के उठने और उच्चकोटि के कवियों के कवि सम्मेलन में भाग लेने से यह माध्यम साहित्य के विकास में, विशेषकर काव्य के विकास में, बड़ा सशक्त सिद्ध होगा। जब तक यह स्थिति नहीं आती तब तक जनता के रुचि के स्तर को ऊपर उठाने के लिए कवि सम्मेलनों में उच्च-कोटि की समय सिद्ध कविताओं के पाठ की प्रथा डालनी चाहिए। उससे छुटभैये उखड़

जाएंगे और उच्चकोटि के कवि-कवि सम्मेलनों के प्रति आकर्षित होंगे।

आशा है मेरे उत्तरों से आपको सन्तोष होगा। आपकी प्रश्नावली साथ भेज रहा हूं।

श्रीमती (रमा) सिन्हा को और उनके बच्चों को मेरी सद्भावनाएं, शुभकामनाएं। उषा और उनकी बेटी चि० शुभा को भी। किसी दिन आकर सबको मिलना है। सिन्हा सा० तो अच्छी तरह हैं ?

मैं एक दिन बाथरूम में गिर पड़ा था जिससे पीठ में कुछ चोट आ गई थी—आज ही कई दिन बाद उठ कर कुर्सी पर बैठा हूं। शु० का०

आपका,
ह० (**बच्चन**)

६-३-६८

प्रश्न ३४—आपने लगभग तीस वर्ष अधिकांशं गीत रचे। अतः 'प्रणय पत्रिका' तक व्यापक गीत-सृजन के परिप्रेक्ष्य में कृपया 'नवगीत' सृजन के विषय-शिल्प पर बताएं कि क्या वह गीत-काव्य की किसी नई उपलब्धि का प्रतीक बन सकेगा ? मुझे तो उसकी 'नवीनता' संदिग्ध लगती है। आपका क्या विचार है ?

७-३-६८

उत्तर—नवगीत को मैं नई कविता की कोरेलेरी ही समझता हूं। न कविता की उपलब्धियों से प्रेरित हो या लाभान्वित हो गीतों को एक नया रूप का प्रयास नवगीत है। गीत का यह नया रूप निश्चित है—गीत के विकास में कड़ी। वैसे मेरी राय है कि प्रथम कोटि की प्रतिभा न नई कविता को मिली है न नवगीत को।

बच्च

रूप से देखा जा सकता है। उमाकांत मालवीय, रवीन्द्र भ्रमर, शम्भूनाथ सिंह, सर्वेश्वर यहाँ तक अज्ञेय के कुछ गीतों में यह प्रभाव मिलेगा (कांगड़ा की लोरियां)।

लोक गीतों में और शास्त्रीय गीतों में एक बड़ा भेद यह है कि लोक गीत प्राय: अपने भीतर एक कहानी लिए रहता है। मैंने लोक गीतों की उस कथा का उपयोग अपने बहुत से गीतों में किया है। इससे वे वायवी भावना नहीं रह गए।

३. किसी एक आदमी को मैं यह श्रेय न देना चाहूंगा। पहले कवि सम्मेलनों में समस्या दी जाती थी—खड़ी बोली कविता के लिए भी स्वाभाविक है कि वे ब्रज भाषा छंदों में लिखी जाती थी—कवित्त या सवैया में। खड़ी बोली में ऐसी समस्या पूर्तियों को सबसे अधिक प्रेरणा सनेही जी से मिली हो तो कोई आश्चर्य नहीं। मध्य-युगीन राजदरबारों में कवि सम्मेलन अथवा काव्य प्रतियोगिताएं (समस्यापूर्ति के आधार पर) होती थीं, वहीं से हिन्दी कवि सम्मेलन का आरंभ मान लें। खड़ी बोली आन्दोलन के साथ मुशायरों की नकल पर कवि सम्मेलन चले। मैंने ऐसे प्रारंभिक कवि सम्मेलनों की चर्चा अपने किसी निबंध में की है। समस्यापूर्ति के युग के बाद छायावादी युग में कवि सम्मेलन बहुत 'डल' होते थे। निराला-पंथ को लोग सुन लेते थे। उल्लास 'मधुशाला' से आया। पर उस पर मेरा अधिक कहना ठीक नहीं।

४. पढ़ने (आँखों से) के लिए और सुनाने के लिए जो कविता लिखी जायेगी उसमें भाषा में विशेषत:, परन्तु भावों में भी, अन्तर होना स्वाभाविक है। कवि सम्मेलनी कविताओं से भाषा सरल हुई होगी, जीवन के निकट आई होगी। पर एक खतरा भी खड़ा हो गया होगा। भावों में गहराई की कमी आई होगी। भाषा का लाभ उठाते हुए भावों की गहराई बनाए रखने वाले कम लोग हुए होंगे। सामूहिक स्तर पर अभी हम सतही भावों को ही पकड़ पाते हैं। उर्दू ने मुशायरों में भावों की गहराई की परवाह नहीं की, भाषा मांज ली। हिन्दी कवि सम्मेलनों में भाव ह्रास की भूमिका देखकर अच्छे कवि उससे विरक्त हो गए। छुटभैयों ने भाषा मांजने में भी अपने को असमर्थ पाया। भाषा को मांजना, उसका परिष्कार करना कोई साधारण काम नहीं है। वे कुलंजन खाकर और चाय पीकर अपना गला साफ़ करते रहे। कहने को अथवा भाव-विचार की सम्पदा के नाम उनके पास कुछ था नहीं; तब कैसे कहने या भाषा परिष्कार करने का प्रश्न नहीं उठता। केवल आलापने से ही काम चलाना था। पर यह माध्यम की बुराई नहीं है। माध्यम कविता के विकास में बहुत उपयोगी हो सकता है बशर्ते कि उच्च प्रतिभा के लोग उसका प्रयोग करें।

५. कवि सम्मेलन तो शायद नहीं घट रहे हैं पर उच्चकोटि की प्रतिभाओं ने उनसे प्राय: पूरी तरह किनारा कस लिया है। जनता की रुचि के स्तर के उठने और उच्चकोटि के कवियों के कवि सम्मेलन में भाग लेने से यह माध्यम साहित्य के विकास में, विशेषकर काव्य के विकास में, बड़ा सशक्त सिद्ध होगा। जब तक यह स्थिति नहीं आती तब तक जनता के रुचि के स्तर को ऊपर उठाने के लिए कवि सम्मेलनों में उच्च-कोटि की समय सिद्ध कविताओं के पाठ की प्रथा डालनी चाहिए। उससे छुटभैये उखड़

जाएंगे और उच्चकोटि के कवि-कवि सम्मेलनों के प्रति आकर्षित होंगे।

आशा है मेरे उत्तरों से आपको सन्तोष होगा। आपकी प्रश्नावली साथ भेज रहा हूं।

श्रीमती (रमा) सिन्हा को और उनके बच्चों को मेरी सद्भावनाएं, शुभकामनाएं। उषा और उनकी बेटी चि० शुभा को भी। किसी दिन आकर सबको मिलना है। सिन्हा सा० तो अच्छी तरह हैं ?

मैं एक दिन बाथरूम में गिर पड़ा था जिससे पीठ में कुछ चोट आ गई थी—आज ही कई दिन बाद उठ कर कुर्सी पर बैठा हूं। शु० का०

आपका,
ह० (**बच्चन**)

६-३-६८

प्रश्न ३४—आपने लगभग तीस वर्ष अधिकांशं गीत रचे। अतः 'प्रणय पत्रिका' तक व्यापक गीत-सृजन के परिप्रेश्य में कृपया 'नवगीत' सृजन के विषय-शिल्प पर बताएं कि क्या वह गीत-काव्य की किसी नई उपलब्धि का प्रतीक बन सकेगा ? मुझे तो उसकी 'नवीनता' संदिग्घ लगती है। आपका क्या विचार है ?

७-३-६८

उत्तर—नवगीत को मैं नई कविता की कोरेलेरी ही समझता हूं। नई कविता की उपलब्धियों से प्रेरित हो या लाभान्वित हो गीतों को एक नया रूप देने का प्रयास नवगीत है। गीत का यह नया रूप निश्चित है—गीत के विकास में एक कड़ी। वैसे मेरी राय है कि प्रथम कोटि की प्रतिभा न नई कविता को मिली है और न नवगीत को।

बच्चन